CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

8.3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-C

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

साधना और ब्रह्मानुभूति

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति • सत्साहित्यप्रकाशनट्रस्ट •

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मूल्य : ३·५०
जनवरी, १९६९

प्रकाशक
ब्र० प्रेमानन्द 'दादा'
'विपुल'
२८/१६
मालावार हिल
बम्बई–६

मुद्रक
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके, ३६/२०
ढुण्ढिराज
वाराणसी–१

सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

अत्यन्त हर्षके साथ हम 'साधना और ब्रह्मानुभूति' आपके कर-कमलोंमें समर्पित कर रहे हैं। सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्टने कुछ वर्ष पूर्व 'सत्संग साधन और फल' नामकी जो पुस्तक प्रकाशित की थी, वह पूरी-की-पूरी इसके अंतर्गत हैं। 'चरित्र निर्माण और ब्रह्मज्ञान' जो कि अभी तक ट्रस्टके द्वारा प्रकाशित नहीं थी, भी इसमें सम्मिलित कर दी गयी है। इस प्रकार यह पुस्तक साधक जिज्ञासुओंके लिए अत्यधिक उपयोगी हो गयी है। इसमें कुछ निबन्ध तो ऐसे हैं—जैसे 'अपौरुषेयताका अभिप्राय', 'स्वयंप्रकाश ब्रह्मसुख' आदि जो उच्चकोटिके जिज्ञासुओंके लिए अत्यन्त उपादेय हैं। कुछ लेख संस्मरणात्मक हैं, कुछ प्रश्नोत्तर रूप हैं और कुछ अत्यन्त रोचक एवं जीवनके उत्कर्षको चरम सीमाकी ओर ले जानेवाले हैं—जैसे, 'ब्रह्मचर्य', 'पवित्रताके प्रयोग', 'उद्दालककी साधना और समाधि' आदि।

सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्ट अपनी शक्तिके अनुसार पूरी निष्ठासे जनताकी सेवामें संलग्न है और अपनी विविध प्रवृत्तियोंके द्वारा जनमानसको पवित्र, प्रगतिशील, कर्तव्यपरायण एवं ज्ञानसम्पन्न बनाना चाहता है। हमारे प्रयत्नकी सफलता आपके सहयोगपर ही निर्भर है। हम आपसे अपेक्षा रखते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंके प्रचार-प्रसारमें तो हाथ बँटायें ही, हमारे ट्रस्टके सक्रिय सदस्य बनकर भी हमें सहयोग दें; जिससे हम आपकी अधिकाधिक सेवा कर सकें।

'मकरसंक्रान्ति'
जनवरी १९६९

—ब्र० प्रेमानन्द 'दादा'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

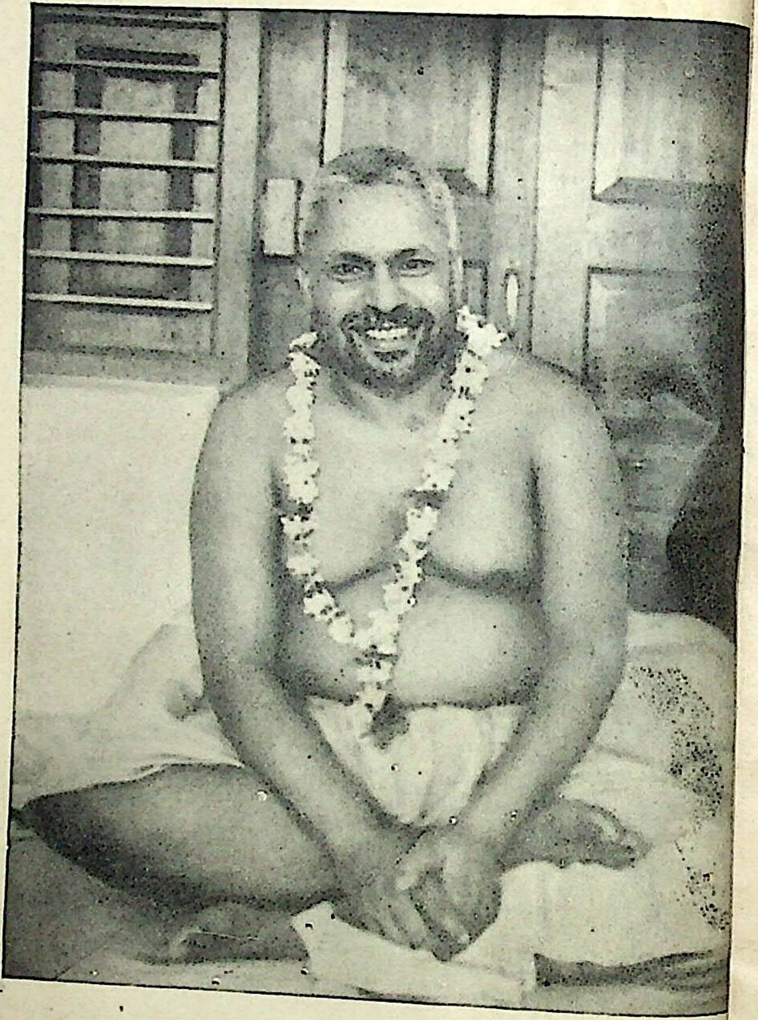

पू० पा० स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आपके ही लिए

'समयकी वेगवती धारामें सब कुछ बहा जा रहा है। दृश्यमान प्रपञ्चमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो स्थिर हो। हमारे सामने संसारमें कितने ही उत्थान-पतन और उथल-पुथल होते रहते हैं। जब हम किसी लुभावनी वस्तुमें आसक्त हो जाते हैं या डरावनी वस्तुसे द्वेष करने लगते हैं तब हमारा अन्तरङ्ग राग-द्वेषके लाल-काले रंगमें रँग जाता है। हमारा अंग-अंग रागास्पदका संग और द्वेषास्पदका भंग चाहने लगता है। उसीके आवेशमें हम अपने स्वरूपको और उसके अनुरूप स्थिति, भावना, अभ्यास और धर्मको भूल जाते हैं तथा आमूल-चूल संसारके दलदलमें निमग्न तथा संलग्न हो जाते हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि न हमें अपने स्वरूपका ज्ञान है, न पर-रूपका। न हृदयमें सद्भावना है, न जीवनमें सत्कर्म। जिसका अंग-अंग राग-रङ्ग और दुःसङ्गसे रंग गया है उसके लिए अज्ञान-निवर्तक तत्त्वज्ञानकी तो चर्चा ही क्या है। जहाँ भगवदर्चा नहीं वहाँ ब्रह्मचर्चा भी शोभाहीन है। देहावेशकी निवृत्तिके लिए देहातिरिक्त आत्माका ज्ञान आवश्यक है। वह देह नहीं, देही है। पाप-पुण्यका कर्ता है। सुख-दुःखका भोक्ता है। जीवनका आदि-अन्त यह शरीर ही नहीं है। इस शरीरके पूर्व भी जीवन था और पश्चात् भी रहेगा। आकार, आयु, शक्ति, संकल्प, प्रज्ञा, सुख-दुःख आदिमें तारतम्य भी स्पष्ट ही देखनेमें आता है। शून्य, विज्ञान, भौतिक द्रव्य, प्रकृति, परमाणु अथवा ब्रह्मरूप उपादानोंमें, चाहे वे एक हों, अनेक हों, सदृश हों, विसदृश हों, संस्काररूप बीज, जो कि पूर्वकर्मानुसार ही होते हैं, के बिना परस्पर विलक्षण, विचित्र एवं विभिन्न जातियों तथा व्यक्तियोंके शरीरकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती। इसलिए देहातिरिक्त आत्माको कर्ता, भोक्ता एवं गमनागमनशील जानकर सुखदायक संस्कार उत्पन्न करनेके लिए मनुष्य-शरीरमें धर्मनिष्ठाकी नितान्त आवश्यकता है। धर्मनिष्ठामें ही स्वभावके परिवर्तन और निर्माणकी शक्ति है और देहावेशकी निवृत्ति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

धर्मनिष्ठाके साथ ही साथ भक्तिनिष्ठाका होना भी आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य प्राणीका हृदय अत्यन्त संवेदनशील और भावुक है। वह तत्काल प्रिय-अप्रियके प्रति राग-द्वेषके वशीभूत होकर अपने हृदयमें सद्भाव या दुर्भावको स्थिर आश्रय दे देता है और दुःख भोगने लगता है। राग-द्वेष दोनोंका ही अन्तिम परिणाम जलन है; इसलिए अपने हृदयमें निरन्तर लोकोत्तर चमत्कारकारी परमेश्वरका चिन्तन करना चाहिए। इसीसे लौकिक-पारलौकिक विषयोंके प्रति वैराग्य होता है। अल्पके प्रति वैराग्य हुए विना अनन्तके प्रति जिज्ञासा, लालसा या प्रगति सम्भव नहीं। संसारकी छोटी-छोटी वस्तुओंमें लुभा जानेवाला पुरुष परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी नहीं हो सकता।

यह देखनेमें आता है कि चित्तवृत्तिको भौतिक जगत्से ऊपर उठा लेनेपर जीवनमें एक प्रकारका अभिमान उदय होता है। धर्मनिष्ठासे दुश्चरित्रताकी निवृत्ति होकर जीवनमें सच्चरित्रताको स्थान मिला। भक्तिनिष्ठासे संसार-सम्वन्धी राग-द्वेषकी निवृत्ति होकर वैराग्यकी प्राप्ति हुई। धन्य है ऐसा जीवन! दोषोंका निर्वाण हुआ, सद्गुणी स्वभावका निर्माण हुआ; परन्तु इस निर्वाण और निर्माणके ऊँचे सिंहासनपर अभिमानके रूपमें एक असुरने अपनेको आसीन कर दिया और अपनेको सम्मानका भोक्ता वना बैठा। इस असुरको जीवनके अन्तरङ्गसे निकाल बाहर करनेके लिए आध्यात्मिक रूपसे उच्चकोटिकी समाधि अपेक्षित है, भले वह ऐश्वर्यानुसन्धान करते-करते तत्पदार्थमें तन्मयता हो अथवा चित्तवृत्तियोंके प्रतिलोम परिणामसे त्वं-पदार्थमें निर्वृत्तिक स्थिति हो। यह सब कुछ हो जानेपर भी अर्थात् व्यावहारिक रूपमें अभिमान अथवा अस्मिताकी निवृत्ति हो जानेपर भी अविद्या महारानी ज्यों-की-त्यों अपने सिंहासनपर विराजमान रहकर अपने स्वच्छन्द साम्राज्यका संचालन करती रहती हैं। यहाँतक कि विवेकख्याति हो जानेपर भी द्वैत-भ्रान्तिको अपने पेटमें छिपाये

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उपयुक्त अवसरपर उसका विस्तार करनेके लिए भरी-पूरी बैठी रहती हैं और समय आनेपर कर भी देती हैं। ब्रह्मात्मैक्यबोधकी प्रचण्ड अग्निके बिना उनका भस्मीभाव नहीं हो सकता। इसलिए अन्ततोगत्वा उपनिषद्-विद्या, वेदान्त-ज्ञान अथवा ब्रह्मात्मैक्य-बोधकी शरण ग्रहण करनी पड़ती है। सम्पूर्ण साधन उसीके सहायक हैं। उसके अतिरिक्त अविद्याकी निवृत्ति नहीं हो सकती।

अभी-अभी यह बात कही गयी है कि ब्रह्मज्ञानसे अविद्याकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। ज्ञान ही साक्षात् साधन है, अविद्या-निवृत्ति ही फल है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कर्म, भक्ति अथवा योग साधन ही नहीं हैं। आप देख चुके हैं कि चरित्रकी पवित्रता और अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए वे कितने उपयोगी हैं। पदार्थ-शोधनमें भी स्वाभाविक रीतिसे क्रमशः स्थूल-सूक्ष्म भ्रान्तिकी परतोंको हटाते हैं। इन साधनोंके अनुष्ठान और अभ्यासका सर्वोत्तम लाभ तो यह है कि वे जिज्ञासुके जीवनमें सहज स्वभाव बनकर बैठ जाते हैं और ऐक्यज्ञानके द्वारा अविद्याकी निवृत्तिके अनन्तर भी व्यावहारिक ज्ञानी पुरुषको लोक-व्यवहारमें महात्मा बनाकर रखते हैं। वे बिना किसी प्रयत्नके बने रहते हैं और जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख देते हैं। उनके विना न कोई ज्ञान-सम्प्रदायका आचार्य हो सकता है और न तो सम्प्रदाय-परम्पराका संरक्षण और संवर्द्धन ही हो सकता है। जन-साधारण पवित्र, सच्चरित्र, लोकोत्तर महापुरुषके ज्ञानपर ही श्रद्धा करता है। उसके बिना ज्ञान भी श्रद्धा-भाजन नहीं होता।

इन प्रकाशित विभिन्न-निबन्धोंमें आप सत्सङ्ग, साधन और ब्रह्मानुभूति सम्बन्धी चित्र-विचित्र प्रसङ्ग प्राप्त करेंगे। इससे आपको अपने जीवन-निर्माणमें, साधन-अभ्यासमें यदि किञ्चित् भी सहायता मिली तो यह प्रयास सफल होगा।

—अखण्डानन्द सरस्वती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विषय-सूची

विषय			पृष्ठांक
१. भारतीय साधन-प्रणालीका विज्ञान स्वतन्त्र है		...	(क)
२. मोकलपुरके बाबा	...	...	१
३. श्री उड़ियाबाबाजी महाराज	...	...	१३
४. आत्मनिरीक्षण कीजिये	...	...	२७
५. दोष-निवृत्तिके उपाय	...	...	३६
६. आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर	...	...	५१
७. सिद्धान्त और जीवन	...	...	६४
८. जीवन्मुक्त	...	...	७३
९. पञ्चभूतोंकी धारणा	...	...	८४
१०. क्रिया, भावना और बोध	...	...	९१
११. अध्यात्मवादकी कसौटीपर नारीधर्म	...	...	१०१
१२. जिज्ञासु सावधान !	...	...	११९
१३. मान्यता और ज्ञान	...	...	१२३
१४. अनुभव जो हो रहा है	...	...	१२७
१५. संकल्पों और सिद्धियोंका लक्ष्य	...	...	१३७
१६. विमुखजन भजनमें कैसे लगें	...	...	१४५
१७. दुःखनिवारणकी युक्ति	...	...	१५५
१८. मधुर वेदान्त	...	...	१७०
१९. ध्यान या सन्ध्या	...	...	१८५
२०. स्वयंप्रकाश ब्रह्मसुख	...	...	२०१
२१. पवित्रताके प्रयोग	...	...	२१६
२२. ब्रह्मचर्य	...	...	२२३
२३. भीमा और नीराके पवित्र संगमपर	...	...	२४६
२४. साधनाकी एक झाँकी	...	...	२६७
२५. उद्दालककी साधना और समाधि	...	...	२७९
२६. अपौरुषेयताका अभिप्राय	...	...	२९५

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भारतीय साधन-प्रणालीका विज्ञान स्वतन्त्र है

(१)

सम्पूर्ण लौकिक एवं वैदिक संस्कृत-वाङ्मयमें चिरकालसे 'विज्ञान' शब्दका व्यवहार होता रहा है। शिल्प-नैपुण्यसे लेकर अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व-पर्यन्त-अर्थमें इसका प्रयोग मिलता है। विज्ञान ब्रह्म है, विज्ञान अन्त:करण है, विज्ञान अनुभवात्मक ज्ञान है—यह सब प्रसंग आकर-ग्रन्थोंमें देखने योग्य हैं। आज-कल लौकिक-साहित्यमें इसका प्रयोग भूत-भौतिक वस्तुओंमें अनुलोम-प्रतिलोम परिणाम, उसकी प्रक्रिया और फल आदिके सम्बन्धमें होता है। साधन-विज्ञानका अर्थ भौतिक पद्धतिसे साधनोंकी गुणवत्ता और फलवत्ताका अनुसन्धान हो तो साधन-च्युतिकी ही अत्यधिक आशंका है; क्योंकि जड़के चूडान्त वैज्ञानिक भी साधन-परायण अथवा साध्योन्मुख देखनेमें नहीं आते। इसका कारण यह है कि वे नाम रूपात्मक प्रपञ्चकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय, जड़ पदार्थसे मानते हैं—और उसीके अनुसन्धानमें संलग्न रहते हैं। उन्हें भी एकान्त, एकाग्रता, लगन, तन्मयता आदिकी अपेक्षा तो होती ही है और भोग तथा दूसरे कर्मोंसे अलग भी होना ही पड़ता है। आध्यात्मिक साधन-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रणाली चैतन्य-विज्ञानके आधारपर होती है और जड़-विज्ञान उसके सर्वथा विपरीत बहिर्मुख होता है। इसलिए पहले ही यह बात मनमें निश्चित कर लेना आवश्यक है कि हम चैतन्य या जड़ किस वस्तुको प्राप्त करनेके लिए साधनामें संलग्न हैं। लक्ष्यहीन साधना कहींका भी नहीं रखेगी।

(२)

यदि हम यह मान लेते हैं कि यह जीवन और जीव भी जड़से ही निकलते हैं और जड़में ही लीन होते हैं; तो साधनाका अधिक-से-अधिक अर्थ यह हो सकता है कि हम अधिक दिनों-तक जीयें, करें, भोगें और अपने अहंकी पूजामें लगे रहें। जीवनके पूर्व क्या है, उत्तर क्या है, अन्तर्देशमें क्या है और अन्तर्ज्ञान-स्वरूप आत्मा क्या है—इन प्रश्नोंके समाधानकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती और हम जीवनके अनेक गूढ़तम तत्त्वों तथा रहस्योंसे वञ्चित हो रह जाते हैं। यह अतीन्द्रिय तत्त्वके ज्ञानसे कतराने और मुकरनेकी प्रवृत्ति बुद्धिकी स्थूलताको सूचित करती है और अपने-आपको प्रकाशसे वञ्चित करके अन्धकारमें निक्षिप्त करती है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुषका कर्तव्य है कि वह भूत-भौतिक विज्ञानको ही सर्वस्व न मान बैठें। आत्मतत्त्व-विज्ञानके लिए भी अवश्य प्रयत्नशील हों—'न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः।'

(३)

हम अपने जीवनमें रहनेवाली उच्छृङ्खलताओंको तीन विभागोंमें बाँट सकते हैं :

(क) देहकी उच्छृङ्खलता।
(ख) मनकी उच्छृङ्खलता और
(ग) वाणीकी उच्छृङ्खलता।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

इनको नियमित न करनेका अर्थ होता है दैहिक जीवनमें डूब जाना। देहकी उच्छृङ्खलतामें कर्म और भोगकी उच्छृङ्खलता भी सम्मिलित है। शरीरसे दूसरेकी अदत्त वस्तुको ग्रहण करना, अवैध हिंसा करना और परस्त्रीसे सम्बन्ध—मुख्य रूपसे यह दैहिक कुकर्म है। रूक्षता, झूठ, चुगली और असङ्गत प्रलाप वाचिक कुकर्म हैं। दूसरेका धन हड़पनेके उपायका चिन्तन, अनिष्ट-चिन्तन और व्यर्थके अभिनिवेश मानसिक कुकर्म हैं। यदि इन तीनोंपर नियन्त्रण न किया जाय, काम-क्रोध-लोभ शरीरमें क्रियाशील होते रहें; तो इस अनियन्त्रित जीवनको जडत्व प्राप्तिके सिवाय और क्या फल मिल सकता है? यह सर्वथा युक्तियुक्त है कि अपने जीवनकी दुष्प्रवृत्तियोंको नियन्त्रित करना चाहिए। थोड़े ही दिनोंमें इससे स्पष्ट हो जाता है कि देह नियम्य है और मैं नियन्ता। मैं जड़देहसे विलक्षण इसमें कर्ता, भोक्ता, वक्ता एवं मन्ताके रूपमें जीव हूँ, शरीर नहीं। इसका अभिप्राय है कि देहसे पृथक् आत्माका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए धर्मानुष्ठान एक वैज्ञानिक प्रणाली है और इससे हमें अपने चेतन रूपके सत्त्व, महत्त्व और तत्त्वके बोधमें पर्याप्त उन्नति प्राप्त होती है? यही एक ऐसी प्रक्रिया है जो जड़भावापत्तिसे रक्षा करती है और परलोक, पुनर्जन्म, यज्ञ, श्राद्ध, होम आदिकी अर्थवत्ता एवं प्रयोजनवत्ता सिद्ध करती है।

(४)

स्वाध्याय, मौन, वाक्संयम सत्यनिष्ठासे यह अनुभव होने लगता है कि वाणी मेरी है, मैं वाणीका नहीं हूँ। निषिद्ध कर्म, भोग और संग्रहके त्यागसे स्पष्ट हो जाता है कि देह मेरा है, मैं देहका नहीं हूँ। देह और वाणीको व्यवस्थित करनेके लिए आसन, प्राणायाम, व्रत, दान, यज्ञ, नाम-जप आदि साधन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

हैं। इन साधनोंका फल गणितके हलके समान तत्काल ही समझमें आने लगता है। भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके द्वारा, भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे, भिन्न-भिन्न इन्द्रियों और सामग्रियोंसे सम्पन्न होनेवाला यज्ञ आदि भी भिन्न-भिन्न फल देनेवाला होता है। इन्द्रियाँ अनेक हैं, वस्तुएँ अनेक हैं, देवता अनेक हैं; इसलिए स्वर्गादिमें स्रक्, चन्दन, वनितादि भी अनेक हैं। यज्ञ-यागादिकी साधना भेदकी कक्षामें होती है और भेदरूप फल देती है। फलमें भेद होनेके कारण इसको मुख्य साधना नहीं माना जाता। इसमें स्थान-विशेष, काल-विशेष, द्रव्य-विशेष, देवता-विशेष, सामग्री-विशेष, मन्त्र-विशेष, अधिकारी-विशेष—विशेषोंका साम्राज्य है। इसलिए यह एकेश्वर उपासना और आत्मनिष्ठ समाधि—दोनोंकी अपेक्षा निम्नकोटिका साधन है।

(५)

अन्तःकरणसे होनेवाली साधनाओंकी भी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया होती है। वेदान्तके ग्रन्थोंमें जिसको भूतसूक्ष्म कहा गया है, सांख्यमें उसको तन्मात्रा और न्याय-वैशेषिकमें उसको परमाणु कहा गया है। वेदान्तकी रीतिसे आकाश भी सावयव है और व्याकरण-शास्त्रकी रीतिसे शब्दके भी परमाणु होते हैं। ऐसी स्थितिमें भूतसूक्ष्मसे बना हुआ हमारा अन्तःकरण जिन संस्कारोंसे युक्त रहता है, उसीके अनुसार साधनाकी आवश्यकता होती है। अन्तःकरणमें ही आकाशकी तन्मात्रासे शोक, वायुकी तन्मात्रासे काम, तेजस्की तन्मात्रासे क्रोध, जलकी तन्मात्रासे मोह और पृथ्वीकी तन्मात्रासे भयकी उत्पत्ति होती है। किसीमें किसीकी और किसीमें किसीकी प्रधानता होती है। यह न आत्माका है, न आत्मा है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंका तन्मात्राके अनुसार यह वर्गीकरण वैज्ञानिक-प्रणालीके अन्तर्गत

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ही आ सकता है। अवश्य ही यह यान्त्रिक-विज्ञान नहीं, आध्यात्मिक-विज्ञान है। वेदान्तके ग्रन्थोंमें इसका अनुसन्धान किया जा सकता है।

(६)

भक्ति-सिद्धान्तके अनुसार साधना-प्रणाली पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। पूजासे मन संसारका विस्मरण करके भगवत्स्मरण-की ओर अग्रसर होता है। आलम्बन स्थूल होनेपर भी मन स्थूल नहीं होता; क्योंकि सूक्ष्म रूपसे ईश्वर-भावना अपना काम करती रहती है। भावना मनमें ही होती है। **'भगवते अर्घः' 'भगवते पाद्यम्', 'भगवते आचमनीयम्'**—सबमें सम्मुख भगवान् हैं। शरीर, वाणी और मन—तीनों भगवान्के उद्देश्यसे क्रियाशील हैं। पूजाकी क्रिया, मन्त्रका उच्चारण और मनकी भावना—तीनों क्षण-क्षण बार-बार संसारकी स्मृतिको दबाते हैं और भगवत्-स्मृति उत्पन्न करते हैं। नाम भी क्रियात्मक होनेके साथ ही साथ अर्थ-प्रकाशक और भावनोत्पादक है। इसलिए नामजप या मन्त्रजपकी साधना भी वैज्ञानिक ही है। कई मन्त्र ऐसे होते हैं, जिनसे शरीरमें गर्मी बढ़ती है, रक्तका ऊर्ध्वाभि-सरण होता है। निरन्तर समगतिसे उच्चारित होनेके कारण प्राणको स्थिर एवं मनको एकाग्र कर देते हैं। अनेक मन्त्रोंके जपसे मुखपर भिन्न-भिन्न प्रकारके तेजोंका प्राकट्य और आकृतिमें परिवर्तन होता है। शरीरके रङ्गमें निखार, स्वरमें सौष्ठव, मूत्र-पुरीषकी अल्पता, आरोग्य, लाघव आदि गुण भी जपसे शरीरमें आते है। अपने लक्ष्यके सम्बन्धमें विवेककी जागृति होती है, आवरण-भङ्ग होता है, समाधि लगती है। अनेक मन्त्रोंके जापकका मुख देखकर बताया जा सकता है कि वे किस मन्त्रका जप करते हैं। वस्तुतः बात यह है कि नस-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नाड़ियों, रक्त, प्राणकी वृद्धि छैनी-हथौड़ेसे या आपरेशनके औजारोंसे नहीं की जा सकती। उसके लिए ध्वनिसे शरीरमें ही सूक्ष्म तरंगें उत्पन्न करके उनमें परिवर्तन किया जा सकता है। विशेष-विशेष आकृति उत्पन्न करनेके लिए विशेष-विशेष ध्वनियोंका प्रयोग किया जाता है। 'ॐ', 'राम', 'सोऽहं', 'कृष्ण', 'ह्रीं', 'क्लीं' आदि भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ शरीरके अन्दर भिन्न-भिन्न परिणाम उत्पन्न करती हैं। यह बात सर्वथा वैज्ञानिक है कि तत्त्वोंके ध्वनियुक्त कम्पनसे उत्पन्न पदार्थ ध्वनियोंके द्वारा परिवर्तित किये जा सकते हैं। सृष्टिमें कम्पन और ध्वनिसे रहित कोई पदार्थ नहीं है, इसलिए मन्त्र-जपकी साधना सर्वथा वैज्ञानिक है और अज्ञात रूपसे यह प्राणोंकी गतिका नियमन करके समाधि लगा देती है।

(७) भक्तिके आचार्य इस विषयके निरूपणमें असावधान या इससे अनभिज्ञ रहे हों ऐसी बात नहीं है। 'भक्तिरसामृत सिन्धुके' दक्षिण विभागान्तर्गत ' तृतीय लहरीमें सात्त्विक भावोंका निरूपण देखने योग्य है।

श्री रूपगोस्वामीजी महाराजने कहा है कि जब अपने प्राणधन श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाले भावोंसे साक्षात् अथवा किञ्चित् व्यवहित रूपमें चित्त आक्रान्त हो जाता है; तब उसको सत्त्व कहते हैं। ऐसे चित्तमें जो भाव उत्पन्न होते हैं उनको सात्त्विक कहते हैं। वे तीन प्रकारके होते हैं—स्निग्ध, दिग्ध और रूक्ष। जब चित्त अत्यन्त वेगशाली सत्त्वसे आक्रान्त हो जाता है, तब वह अपने-आपको प्राणोंसे मिला देता है। प्राण विकारक्रमसे शरीरको क्षुब्ध करता है। इसीसे भक्तके शरीरमें बिना उसकी जानकारीके ही स्तम्भ आदि भाव प्रकट होते हैं। जब प्राण अपनेको शरीर-स्थित पृथ्वीसे मिला देता है; तब भक्तका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शरीर स्तम्भकी तरह ज्यों-का-त्यों खड़ा रह जाता है और जब प्राण जलसे मिलता है तब आँसूकी धारा बहने लगती है। तेजसे मिलनेपर स्वेद और विवर्णता तथा आकाशसे मिलनेपर प्रलय। प्राण जब इन भूतोंसे न मिलकर अपनी प्रधानतासे रहता है; तब उसकी तीन गति होती है—मन्द, मध्यम और तीव्र। रोमाञ्च, कम्प और स्वरकी विकृति इन्हीं तीनोंसे होती हैं। यही भक्तके शरीरको बाहर-भीतरसे क्षुब्ध करते हैं और उसमें सात्त्विक भावोंकी भिन्न-भिन्न स्थितियोंको प्रकट करते हैं।

स्पष्ट है कि हमारे रसिकगण भावोंकी वैज्ञानिक स्थितिका भी ध्यान रखते थे और उसका निरूपण करते थे। इन भावोंका ऐसा ही निरूपण अति प्राचीन विद्वान् श्री हेमचन्द्र सूरिके 'काव्यानुशासन'में भी प्राप्त होता है। यहाँ केवल उदाहरणके रूपमें इसका उल्लेख किया गया है। वैसे इस प्रकारके बहुत अधिक वर्णन प्राप्त होते हैं।

(८)

योगदर्शनमें शरीरको स्थिर और मनको एकाग्र करनेके लिए जिन उपायों एवं युक्तियोंका वर्णन किया गया है वे भी वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेपर सर्वथा खरी उतरती हैं; क्योंकि अनुभवसे वे यथार्थ सिद्ध होती हैं। प्रश्न यह है कि अतीन्द्रिय वस्तुका साक्षात्कार करनेके लिए जड़ यान्त्रिक अथवा इन्द्रियोंमें ही उत्कर्ष आधान करनेवाला विज्ञान कहाँतक सहायक हो सकता है? पञ्चभूतोंके पीछे कौन है, इस विचारको तो अलग रहने दीजिये, बुद्धि और सुषुप्तिके पीछे ही कौन है, यह बात भी विज्ञानका विषय नहीं हो सकती।

शास्त्रोक्त साधन अन्तःकरणको शुद्ध करके किस युक्तिसे असत्त्वापादक और अभानापादक आवरणको दूर कर सकता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यह एक विलक्षण विद्या है। प्राचीन ऋषि-मुनियोंके सामने भी यह प्रश्न जागरूक था। योगदर्शनके व्यास-भाष्यमें यह कहा गया है कि—यद्यपि शास्त्रीय अनुमान और आचार्योपदेशके द्वारा जिस वस्तुका निरूपण होता है, वह सत्य ही होता है; परन्तु जबतक उसका अंश भी अपने अन्तःकरण और इन्द्रियोंका विषय न हो तबतक सब कुछ परोक्ष-सा ही रहता है और मोक्ष आदि सूक्ष्म वस्तुओंके सम्बन्धमें दृढ़ बुद्धिका उदय नहीं होता। इसलिए उनके द्वारा बतायी हुई वस्तुओंका ही उपोद्बलन अर्थात् समर्थन करनेके लिए किसी-न-किसी वस्तुका साक्षात्कार होना चाहिए। एक देशका भी प्रत्यक्ष हो जानेपर मोक्षपर्यन्त सम्पूर्ण सूक्ष्म विषयोंमें आस्था हो जाती है। इसीके लिए चित्त-परिकर्मका उपदेश किया जाता है। इससे अन्तःकरणमें श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधिकी निर्विघ्न प्रतिष्ठा हो जाती है। यह चित्त-परिकर्म क्या है? नासाग्रमें धारणा करनेपर दिव्य गन्धकी संवित् होती है। जिह्वाग्रमें रसकी, तालुमें रूपकी, जिह्वा-मध्यमें स्पर्शकी और जिह्वा-मूलमें शब्दकी संवित् होती है। यह थोड़े ही परिश्रमसे सम्पन्न होता है। इससे चित्त स्थिर होता है, संशय कट जाते हैं और समाधि-प्रज्ञाका उदय होता है। चन्द्र-सूर्य आदिमें संयम करनेसे भी ऐसा होता है। थोड़े ही दिनोंमें अभ्याससे जब विलक्षण दृश्य और रसका अनुभव होने लगता है; तब साधकके चित्तमें अपने आप ही दृढ़ता पाँव जमा लेती है।

अपने मनको इन्द्रियोंके द्वारा बाहर न निकलने देकर हृदय कमलपर ही स्थिर कीजिये। वहीं बुद्धि सत्त्वका अनुभव होगा। वह अत्यन्त प्रकाशमान और आकाशके समान प्रथमान है। उसमें स्पष्ट स्थिति हो जानेपर सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, मणिके रूपमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मन:प्रवृत्ति विकल्पमान होती है। वैसी स्थितिमें चित्त निस्तरंग महोदधिके समान शान्त, अनन्त, अस्मितामात्र हो जाता है। इस अवस्थामें स्पष्ट अनुभव होगा कि संसारके शोक और दुःख मेरा स्पर्श नहीं कर सकते। अभ्यासके इस प्रत्यक्ष फलका अनुभव होनेपर दूसरे भी अननुभूत विषयोंकी ओर साधक अग्रसर हो सकता है।

(i) आसन यदि स्थिर न होता हो तो भूत और भविष्यके कृत एवं कर्तव्योंको भुलाकर अपने फणपर पृथ्वी धारण किये हुए शेषनागका ध्यान कीजिये। आसन स्थिर करनेका यह चमत्कारी प्रयोग है।

(ii) आप अपनी आँखकी पुतलियोंको बिना जोर लगाये जहाँकी तहाँ स्थिर छोड़ दीजिये। ध्यान रखिये वे चञ्चल न हों। आपका मन स्थिर हो जायगा।

(iii) मुँह बन्द रखिये; परन्तु दाँत छू न जाय। जीभ न ऊपर लगे और न नीचे। मुखाकाशमें उसकी नोक खड़ी कर दीजिए। आपका मन स्थिर हो जायगा।

हमारा कहनेका अभिप्राय यह है कि आप साधनके मार्गमें एक-दो कदम चलें और फिर भी आपको चमत्कार न मालूम पड़े तो पूछिये कि क्या बात है? सभी साधनोंका एक विज्ञान है; परन्तु वह यन्त्रके द्वारा साधित होनेपर आपके जीवनमें फलप्रद नहीं होगा। कम्प्यूटरके गणितसे बाधित द्वैतभ्रम आपके भ्रमको निवृत्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता।

(९)

योगदर्शनमें मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाके रूपमें चित्तको प्रसन्न करनेके जिन साधनोंका उल्लेख किया गया है, वे सर्वथा व्यवहार-विज्ञानके अनुरूप हैं। जैनोंका 'त्रिरत्न' और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

बौद्धोंका 'पञ्चशील' भी उसी कक्षाके हैं। श्री रामानुजाचार्यके 'साधन-सप्तक' और श्री शंकराचार्यके 'साधन-चतुष्टय' भी अपने-अपने लक्ष्यके अनुरूप ही हैं। उपनिषद्, गीता, भागवत आदिमें भक्तोंके जो लक्षण बताये गये हैं, वे कहीं भी सामाजिक या भौतिक मनोविज्ञानके विपरीत नहीं हैं। कौन है ऐसा सृष्टिमें जो कह दे कि भक्तके अद्वेष्टा आदि लक्षण वैज्ञानिक नहीं हैं या शंकराचार्यके साधन-चतुष्टय आत्म-साक्षात्कारके अनुरूप नहीं हैं। जब लक्षण लक्ष्यको, साधन साध्यको, प्रमाण प्रमेयको ठीक-ठीक दिखा रहा है; तो उसके अवैज्ञानिक होनेकी शङ्का ही कहाँ रहती है?

(१०)

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि परमात्मा ही जीवके शरीरमें प्रविष्ट होकर वाणी, कर्म, गति, विसर्ग, घ्राण, रस, दृक्, स्पर्श, श्रुति, सङ्कल्प, विज्ञान, अभिमान, सूत्रात्मा आदिके रूपमें प्रकट होता है। जैसे बीज भिन्न-भिन्न खेतोंमें पड़कर अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार विकसित होते हैं; वैसे ही संसारकी सब वस्तुएँ विकसित हो रही हैं। यह देखनेमें अनेक रूप है; परन्तु वस्तुतः एक रूप है। कार्य-कारण, प्रमेय-प्रमाण अथवा ज्ञान-ज्ञेयके जितने भी भेद प्रतीत होते हैं; वे सब-के-सब सापेक्ष हैं। उनके सम्बन्धका ग्रहण पहले होता है, फिर उनके भेदकी प्रतीति होती है। उपासकोंका कहना है कि विश्व सापेक्ष है और ईश्वर निरपेक्ष। वेदान्तियोंका कहना है कि जीव-ईश्वरका भेद भी सापेक्ष ही है। भेदमात्र अध्यस्त है। अधिष्ठानके ज्ञानसे वह बाधित हो जाता है। भेदाभावोपलक्षित अधिष्ठान ही प्रत्यगात्मा है। यह बात सर्वथा सत्य है कि उत्पत्ति-विनाश-शील अनेक रूप, नामरूपात्मक प्रपञ्च अपने अत्यन्ताभावके अधिष्ठानमें ही कल्पित हैं। जो अद्वय तत्त्व प्रपञ्चाभावसे उपलक्षित है वही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अप्रपञ्च कल्पनाके अभावसे भी उपलक्षित है। इससे परमार्थ सत्ताके स्वरूपका संकेत मिलता है। वह असत्यविरोधी सत्य नहीं है, जड़विरोधी ज्ञान नहीं है, सान्त विरोधी अनन्त नहीं है और परिच्छेद-विरोधी ब्रह्म नहीं है। वह अपनेमें अध्यस्त भेदमात्रका अविरोधी है। वह विरोधीका विरोधी अविरोधी नहीं, उसका भी अविरोधी है। इसलिए ब्रह्ममें सत्य और मिथ्या-का भी द्वन्द्व अथवा सापेक्षता नहीं है। श्रुतिने स्पष्ट कहा है—

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥

जिसने मतिके अविषयरूपसे परमात्माको पहचान लिया; उसने सचमुच पहचान लिया। जिसने ऐसा समझा कि मैंने पहचान लिया, उसने नहीं पहचाना। जिन्हें ब्रह्म-विज्ञानका अभिमान है, ब्रह्म उनके विज्ञानका विषय नहीं है। जिन्होंने अनुभव कर लिया कि ब्रह्म-विज्ञानका विषय नहीं है; उन्होंने वस्तुतः ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त कर लिया। ज्ञान और ज्ञेयका अथवा ज्ञाता और ज्ञेयका भेद बाधित हो जाना ही वस्तुतः ब्रह्मविज्ञान है; परन्तु वह भेद और अभेदकी सापेक्षताके संघर्षसे बाधित नहीं होता, प्रत्युत अधिष्ठान ज्ञानसे ही बाधित होता है।

(११)

अद्वैत-वेदान्तमें मिथ्या शब्दका अर्थ दो प्रकारसे मानते हैं—अपह्नव और अनिर्वचनीयता। पहलेका अर्थ है सर्वथा प्रतीत न होना और दूसरेका अर्थ है प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः न होना। मिथ्या शब्दकी इसी द्व्यर्थकताके कारण द्वैतवादियोंसे मतभेद हो गया है। द्वैतवादियोंका कहना है कि या तो तुम प्रपञ्चको ब्रह्मवत् सत्य स्वीकार करो या तो आकाश-कुसुमके समान असत्य। त्रिकालाबाधित सत्त्व अथवा त्रिकाला-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सत्त्व। यह बीचमें अनिर्वचनीयता क्या बला है ? अद्वैतवादी इस नियमको नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि एक तृतीय कक्षा भी हो सकती है। त्रिकालाबाध्य सत्ता ब्रह्म है। त्रिकालमें अप्रतीयमानतारूप असत्ता आकाश-कुसुममें है और उन दोनों प्रकारके सत्त्व-असत्त्वका अभाव शुक्ति-रजतमें है। प्रपञ्च आकाश-कुसुमके समान नितान्त असत् नहीं है और ब्रह्मके समान नितान्त सत् भी नहीं है। प्रपञ्चका व्यावहारिक सत्त्व है।

विचार करके देखें तो इस प्रसङ्गमें अद्वैतवादी और द्वैत-वादियोंमें कोई विशेष मतभेदका कारण नहीं है, क्योंकि द्वैत-वादियोंके मतमें प्रपञ्च ईश्वर सापेक्ष है; परन्तु ईश्वर प्रपञ्च-निरपेक्ष है। अवश्य ही प्रपञ्च ईश्वरकी अपेक्षासे न्यून-सत्ताक है; क्योंकि प्रपञ्चका उत्पत्ति-विनाश है। उनके मतमें भी प्रथम सत्य ईश्वर द्वितीय सत्य प्रपंच—ऐसा मानना पड़ेगा। इस प्रकार प्रपञ्चमें सत्यका किंचित् अवमूल्यन अवश्य हो गया है। दो नम्बरका सत्य वास्तविक सत्य नहीं होता। किञ्चिन्न्यूनसत्ता-कत्व ही तो अनिर्वचनीयत्व है, फिर मतभेद किस बातका ?

हमारा कहना यह है कि अपने-अपने स्थानपर बैठकर जिसने साध्यको जिस रूपमें देखा है और उसकी उपलब्धिके लिए अनुभवपूर्वक जिस साधनका निश्चय किया है, वह सर्वथा युक्तियुक्त- एवं वैज्ञानिक ही है। प्राचीन कालमें भी प्रवृत्तिविज्ञान, मनोविज्ञान, आलय-विज्ञान और ब्रह्मविज्ञान आदिकी दृष्टिसे साधन-साध्यके सम्बन्धका निर्णय होता रहा है। और वह ठीक है।

अवश्य ही यन्त्र-विज्ञान, भूत-भौतिक विज्ञान या चित्त-चैत्त विज्ञान साधन-विज्ञान नहीं है। साधनाका एक स्वतन्त्र विज्ञान है।' विज्ञानकी शाखाओंमें इसका भी समावेश होना चाहिए और शास्त्रोक्त-पद्धतिसे इसका अनुसन्धान होना चाहिए। ●

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

साधना और ब्रह्मानुभूति

मोकलपुरके बाबा

मैं केवल एक अर्थमें भाग्यवान् हूँ। जबसे होश सँभाला तबसे मैं किसी-न-किसी सन्तकी छत्रच्छायामें ही रहता आया हूँ। सन्तोंकी मुझपर कृपा रही है। उन्होंने मुझे अपना समझा है। आज जिस सन्तके सम्बन्धमें मैं लिखने जा रहा हूँ उनका मुझपर बड़ा स्नेह रहा है और मैं बहुत दिनोंतक उनके सम्पर्कमें रहा हूँ। यह ठीक है कि मैं उनके संगसे बहुत अधिक लाभ नहीं उठा सका, फिर भी मेरे हृदयमें उनकी जो पवित्र स्मृति है, वह एक-न-एक दिन मुझे पवित्र बना देगी, इसमें संदेह नहीं।

सन् ३० के लगभगकी बात है। मैंने सुना, काशीमें ६-७ कोसकी दूरीपर गंगाकिनारे एक सिद्धपुरुष रहते हैं, उनकी कुटिया जिस स्थानपर है, उसे गंगाजी चारों ओरसे घेरे रहती हैं। वे किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। कोई दुखिया रुग्ण उनके पास आता है तो उसके लिए कुछ खर-पात उठाकर दे देते हैं और वह भला चंगा हो जाता है। यद्यपि उन दिनों मेरे मनमें सिद्धियोंके प्रति कोई आस्था नहीं थी, फिर भी उनकी सिद्धियोंकी बात सुनकर मैं आकर्षित हुआ। और अपने एक मित्रके साथ दर्शनार्थ यात्रा की। पहली बार वे अपनी कुटियापर नहीं मिले। कई गाँवोंमें घूमनेके बाद गंगाकिनारे एकान्त स्थानमें बैठे हुए वे मिले। उनकी बातोंसे मालूम हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कि वे हमारी परेशानी देख रहे थे और हमें दर्शन देनेके लिए ही वहाँ ठहर गये थे। उन्होंने ग्राम्य भाषामें हमसे कहा—'भगवान्की लीला बड़ी विलक्षण है। देखो! इस शरीरको कहाँसे कहाँ लाकर पटक दिया। तुम्हें भी न जाने कितना घुमाकर मेरे पास पहुँचाया। क्या तुम सीधे मेरे पास नहीं आ सकते थे?' इसमें भी कुछ रहस्य होगा—इसमें भी उनकी कुछ लीला होगी! उस दिन वहीं कुछ किसान दही लेकर आ गये और बाबाने हम दोनोंको खूब दही खिलाया। यह उनका पहला स्वागत था। उन्होंने कहा—'अच्छा अब जाओ, कभी फिर मिलेंगे।'

दूसरी बार हम तीन मित्र गये। रास्तेमें मेरे मनमें अनेकों प्रकारके विचार उठ रहे थे। मैं सोचता जा रहा था कि मुझे सिद्धियोंकी आवश्यकता है नहीं और बाबा उपदेश करते नहीं, तो फिर उनके पास जानेकी मुझे क्या आवश्यकता है? परन्तु यह सोचनेके समय भी बाबाका ज्योतिर्मय मुखमण्डल और सौम्य स्वभाव मेरी आँखोंके सामने नाच जाता। मैं किसी दिव्य आकर्षणसे खिंचा हुआ-सा उनकी ओर चल रहा था।

इस बार बाबाने जाते ही उपदेश शुरू किया। उन्होंने कहा—'तुम भगवान्को निराकार मानो तो निराकार, साकार मानो तो साकार। निराकारके संकल्पसे एक बूँद जलकी सृष्टि हुई अथवा साकारके पसीनेसे एक बूँद जल निकला। उसीसे सारे संसारकी सृष्टि हुई। उसे कोई 'मूल प्रकृति' कहते हैं, कोई 'कारणवारि' कहते हैं और मैं 'गंगाजी' कहता हूँ। वह जल स्वयं कफ है, उसमें जो गति है वह वात है और उसका धक्का ही पित्त है। इन्हीं तीनों धातुओंसे इस सृष्टिका निर्माण हुआ है। वास्तवमें तो यह सब नामरूप गंगाजीके ही हैं।'

● ● ●

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'गंगाजीमें ही घास और मांस दोनोंकी सृष्टि हो रही है। गंगाजी ही मिट्टीसे घास बनती हैं और घास, वनस्पति, ओषधियोंके द्वारा मांस बनता है। मांसमय सब शरीर हैं, मांस गलकर मिट्टी बन जाता है और मिट्टी पुनः घासके रूपमें परिणत हो जाती है। यह क्रम बहुत दिनोंसे चल रहा है, यह सब गंगाजीमें गंगाजी ही बनती हैं और वह 'बाँगर' अलग बैठकर यह सब खेल देखता रहता है।' बाबाजी प्रायः ईश्वरको 'बाँगर' कहा करते थे। वे इसकी व्याख्या भी करते थे। कहते थे—'जो अपने-आपमें अपने-आप ही संतुष्ट है उसे उतनी उपाधि बनानेकी क्या आवश्यकता थी? बिना मतलब इतना जंजाल बढ़ा लेना उसका बाँगरपन है।' वे हँसकर पूछते—'क्या मेरा बाँगर कहना अनुचित है? यह सब जो कुछ दीख रहा है सब गंगाजी ही हैं, ये भिन्नताएँ गंगाजीकी बनायी हुई हैं। इन्हें गंगाजीसे पृथक् देखना अज्ञान है। हम सब गंगाजीमें ही पैदा होते हैं, गंगाजीमें ही रहते हैं, खेलते-खाते हैं। गंगाजीकी गोदमें सो जाते हैं—समा जाते हैं। तुम गंगाजीको सोचो, गंगाजीको जानो, फिर अपनेको जान जाओगे और सबको जान जाओगे।

'रोज देखते हो, पञ्चभूतोंकी सृष्टि कैसे होती है? तुम एक आसनपर शान्त बैठे हो। मैं इसे आकाशका रूपक देता हूँ। अब तुम किसी अनिवार्य कारणसे दौड़ पड़ो। इसे हम वायु कहेंगे, दौड़नेसे जो गर्मी होगी वह अग्नि है। गर्मीसे जो पसीना होगा वह जल है और जल जमकर मैल बन जायगा—मिट्टी बन जायगा। यह तुम्हारा रोजमर्राका अनुभव है। परन्तु तुम कभी सोचते नहीं, ऊपर-ही-ऊपर तैरते रहते हो। देखो तो सही, तुम सारी सृष्टिका रहस्य चुटकी बजाते-बजाते समझ जाओगे।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

उनके उपदेशकी भाषा विलक्षण ही होती थी। गाँवकी गँवार भाषामें ऊँचे-से-ऊँचे तत्त्वकी बात कह डालते थे। उनकी भाषाके व्याकरणमें मध्यम और उत्तम पुरुषके लिए स्थान नहीं था, केवल अन्य पुरुषका प्रयोग करते थे। कभी कोई बात जोर देकर कहनी होती तो खड़ी भाषा भी बोल जाते थे। परन्तु वही अन्य पुरुष वहाँ भी रहता था, 'मैं करता है, तुम बोलता है' ऐसा ही प्रयोग करते थे। वास्तवमें उनके लिए संसारके सब क्रिया-कलाप, कर्ता,-भोक्ता अन्य हो गये थे अथवा आत्मा हो गये थे जहाँ केवल एक ही प्रकारसे बोला जा सकता था।

हम लोग बार-बार उनके पास जाते रहे और वे हरबार प्रायः कुछ-न-कुछ उपदेश करते रहे। कभी हमारे सिरपर फूल चढ़ाकर हाथ जोड़ते तो कभी इतना तिरस्कार करते कि एक क्षण भी कुटियापर बैठनेके लिए स्थान न मिलता। हम ऐसा अनुभव करते कि उनका हमपर अपार स्नेह है।

कभी-कभी वहाँ बैठे-बैठे मनमें भोजनकी बात आ जाती और यदि वह वस्तु उस ऋतुमें मिलने योग्य न होती तो भी कोई-न-कोई लेकर उसी समय आ जाता और वह हमें मिल जाती। यह मेरा निजी अनुभव है।

एक बार बाबाने कहा—'तुम लोग बार-बार मेरे पास आते हो, मैं भी तुम्हारे यहाँ चलूँगा।' दिन निश्चित हो गया, नावपर सवार होकर बाबा हमारे यहाँ आये और लगभग एक महीनेतक बराबर वहीं गंगातटपर रहे। हम सब भी रातदिन प्रायः वहीं रहते। हजार-हजार नर-नारियोंकी भीड़ होती, बाबा हँस-हँसकर घूमते और सबकी मनोकामना पूरी करते। उपदेशोंका तो ताँता लग गया था। कहते—'इस बार मैं बका-

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सुर होकर आया हूँ, मुझसे चाहे जितना बकवा लो।' बड़े-बड़े विद्वान्, जमींदार, रईस आते, बाबाका सबके साथ समान व्यवहार होता। कोई फल-फूल लाकर रख जाता तो तुरन्त दर्शनार्थियोंमें बाँट दिया जाता। वे कहा करते थे—'आत्मा या परमात्मा जो कुछ है सो तो है ही, उसे पाना नहीं है। सोचो, यदि प्रयत्न करके बन्धन काटा जाय तो फिर बन्धन हो जायगा। यदि साधन करके संसारको मिटाया जाय तो वह फिर पैदा हो जायगा। जब कुछ नहीं था तो इतना प्रपञ्च फैल गया, जब तुम कुछ करोगे तब तो कभी मिटाये न मिटेगा। इसका बखेड़ा और भी बढ़ जायगा। केवल जो तुमने अज्ञानवश संसारका बन्धन बना रक्खा है उसे ज्ञानके द्वारा काट डालो। अज्ञानका ध्वंस होते ही ज्ञान भी अनावश्यक हो जायगा। और तब तुम जान जाओगे कि बिना बन्धनके ही मैं अपनेको बद्ध मान रहा था। संसार और बन्धन तुम्हारी कल्पनाके भूत हैं। इन्हें रखकर चाहे इनसे डरते रहो, चाहे मुक्त हो जाओ।'

'भगवान् किसीसे दूर थोड़े ही हैं। वे सबके अपने हैं, सबको गोदमें लिये हुए हैं और सबकी गोदमें बैठे हुए हैं। जब तक तुम उन्हें पहचानोगे नहीं, उनसे अनजान बने रहोगे, तब तक उनके पास रहनेपर भी तुम उन्हें नहीं पा सकोगे। जब जान लोगे तब देखोगे कि वे प्रतिदिन नहीं, प्रतिक्षण हजारों रूप धारण करके तुम्हारे पास आते हैं और तुमसे खेलते हैं। क्या तुम भगवान्को पानेके लिए किसी घोर जंगल या पर्वतपर जाना चाहते हो? यदि तुम उन्हें यहाँ नहीं पहचानोगे तो वहाँ पहचान लोगे इसकी कल्पना कैसे की जाय? पहले हृदयके मन्दिरमें उनका दर्शन करो, पीछे सब उनका हृदय ही हो जायगा।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'भगवान्‌को आत्मसमर्पण करना चाहिए। परन्तु क्या यह आत्मा भगवान्‌को समर्पित नहीं है? सम्पूर्ण प्रकृति, सम्पूर्ण प्रकृतिके विकार और सम्पूर्ण जीव भगवान्‌को समर्पित हैं। उनकी इच्छा, उनकी शक्ति और उनकी प्रेरणाके बिना एक तिनका भी नहीं हिल सकता। सब उन्हींके नचाये नाच रहे हैं। तब आत्मसमर्पणका अर्थ क्या है? बस, आत्मसमर्पणका इतना ही अर्थ है कि मैं असमर्पित हूँ—इस भावनाको समूल उखाड़ फेंका जाय। नाचते तो हैं भगवान्‌के नचाये, परन्तु मानते हैं कि हम स्वतन्त्रतासे नाच रहे हैं। इस मान्यताको नष्ट करना होगा। यह मान्यता संसारके स्वरूपपर—अपने जीवनके स्वरूपपर विचार न करनेके कारण है। इसको समझे बिना निस्तार नहीं हो सकता। चाहे यह बात सद्गुरुसे समझी जाय या भगवान् स्वयं समझायें।'

इस बार जो उपदेश बाबाने दिये थे वे किसी भी आध्यात्मिक साधकके लिए पूर्ण थे। न यहाँ उन बातोंके लिए स्थान ही है और न मुझे वे सब बातें पूर्णतः स्मरण ही हैं। उन दिनों वहाँ बहुत-सी आश्चर्यजनक घटनाएँ भी घटीं। मेरे गाँवके पासके ही मेरे एक मित्र जो अभी जीवित और स्वस्थ हैं, उन दिनों पागल हो गये थे। लोग उन्हें पकड़कर ले आये और बाबाके सामने आते ही पाँच मिनटमें वे स्वस्थ हो गये। यह मेरी आँखों देखी घटना है। एक दिन अवर्षण होनेके कारण बहुत लोगोंने हठ करके बाबाको घाममें बैठा दिया और कहा कि जबतक वर्षा न होगी उठने नहीं देंगे। हम लोगोंने उनसे बहुत कुछ कहा, रोकनेकी चेष्टा की; परन्तु हमारी एक न चली। बाबा भी बैठ गये। एक घण्टेमें ही सारे आकाशमें बादल छा गये और घमासान वर्षा हुई। एक दिन मुझसे कुछ अपराध हो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

गया था। उस बातको मेरे सिवा और कोई नहीं जानता था। जब मैं बाबाके सामने आया उन्होंने खोलकर सब बातें कह दीं और मुझे तुरन्त गंगास्नान करके अघमर्षण करनेके लिए भेज दिया।

वे मोकलपुरमें ४० वर्षोंसे रहते थे। परन्तु किसीको पता नहीं रहा कि ये किस जातिके हैं? कहाँके रहनेवाले हैं? इनका आश्रम कहाँ हैं और नाम क्या है? जब बाबा मेरे गाँवके पास गंगातटपर ठहरे हुए थे तब हमारी जातिके एक प्रतिष्ठित वैद्य और दो-तीन शास्त्रियोंने उनसे यह बात जाननेका बड़ा आग्रह किया। बात यह थी कि मैं था ब्राह्मण, ये लोग यह नहीं देख सकते थे कि मैं किसी अब्राह्मणकी सेवा करूँ। परन्तु बाबाकी जातिपाँतिका पता तो था नहीं, लोग तरह-तरहकी बातें करते थे। हमलोगोंने भी आग्रह किया कि बाबा अपने जीवनकी कुछ बातें बतायें।

बाबाने कहा—'इस विशाल सृष्टिमें एक व्यक्तिके जीवनका क्या महत्त्व है? रोज अगणित कीड़े-पतंगे पैदा होते हैं और मर जाते हैं। कईके तो एक ही दिनमें कई जन्म हो जाते हैं। वैसा ही एक कीड़ा मैं भी हूँ। मेरा जन्म और जीवन कोई वस्तु नहीं। मेरी कोई जाति-पाँति नहीं; मैं भगवान्का हूं, सब भगवान्के हैं, जो सबकी जाति-पाँति है वही मेरी भी है। सबकी एक जाति है सबकी एक पाँति है। मुझे ब्राह्मण-क्षत्रिय बनकर क्या करना है? जो तुम्हारी मौज हो समझो।' परन्तु इतनेसे किसीको संन्तोष नहीं हुआ। बहुत-से लोग पीछे पड़ गये। बाबाने हँसते हुए कहा—'अच्छा भाई आज यही सही, सुन लो इस कीड़ेकी जीवनी। यद्यपि शास्त्रोंमें 'आत्मचरितं न प्रकाश-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

येत्' कहकर ऐसा करनेका निषेध है तथापि जब तुम लोग यही सुनना चाहते हो तो सुनो।' बाबा बोलने लगे।

'विन्ध्याचल और प्रयागके बीचमें किसी गाँवमें मेरे माँ-बापकी जन्मभूमि थी। मेरे पिता सीधे और भगवद्भक्त थे। घरवालोंने उन्हें हिस्सा नहीं दिया, पागल समझकर घरसे निकाल दिया। मेरी माँ भी उन्हींके साथ चल पड़ीं। वे विन्ध्याचलकी धर्मशालामें रहते और भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करते। ब्राह्मण होनेके कारण वे किसीकी नौकरी करना ठीक नहीं समझते थे। कुछ दिनोंके बाद विन्ध्याचलकी धर्मशालामें ही मेरा जन्म हुआ। बारह वर्षतक उन्होंने भीख माँग-माँगकर मुझे पाला और फिर वे दोनों एक साथ ही इस संसारसे चल बसे। सांसारिक दृष्टिसे मैं अकेला—अनाथ हो गया। भगवान्के अतिरिक्त मेरा कोई और रक्षक नहीं रह गया। भीखसे पला होनेपर भी मैं भीख माँगना बुरा समझता था। विन्ध्याचलमें बहुत-से यात्री आते, मैं उनकी गठरी ढोकर पहुँचा देता, वे मुझे कुछ दे देते थे। इस प्रकार वर्षों बीत गये। एक दिन मैंने देखा कि साधुओंकी एक जमात काँवरमें जल भरकर रामेश्वरकी ओर जा रही है। उन दिनों रेल थी नहीं, सब पैदल ही जाते थे। मेरे मनमें भी इच्छा हुई कि चलूँ, रामेश्वर दर्शन कर आऊँ। परिवारका मोह तो था ही नहीं, लौटने-न-लौटनेका प्रश्न क्यों उठता? मैंने भी एक काँवर गंगाजल लिया और उनके साथ चल पड़ा।'

'उनके साथ रामेश्वर आदि तीर्थोंमें वर्षोंतक घूमता रहा। एक बार नर्मदाकी परिक्रमा करते समय एक वृद्ध ब्रह्मचारीके दर्शन हुए। उन्होंने मुझे कृपा करके अपने पास रख लिया और विद्याध्ययनके साथ ही योगाभ्यास प्रारंभ कराया। मैंने

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

थोड़े ही दिनोंमें कुछ हिन्दी और संस्कृतकी योग्यता प्राप्त कर ली। निरन्तर जप होने लगा। विचारकी प्रवृत्ति बढ़ी और एकान्तमें मेरी वृत्तियाँ निरुद्ध रहने लगीं। सोलह वर्षतक अभ्यास करनेके पश्चात् श्री ब्रह्मचारीजीने मुझे विचरण करनेकी आज्ञा दे दी। मैं भारतवर्षके प्रायः समस्त तीर्थोंमें घूम आया। इस यात्रामें मुझे अनेकों प्रकारके अनुभव हुए। पापी-पुण्यात्मा, दुरात्मा-महात्मा, देवता-दानव—सभी प्रकारके लोग मिले। सबसे मैंने कुछ-न-कुछ सीखा। एक बार मुझे भगवती गंगाके दर्शन हुए; तबसे मैं पागल-सा हो गया और दिन-रात गंगा-गंगा चिल्लाता रहता। शरीरपर कपड़े हैं कि नहीं इस बातकी मुझे सुधि नहीं रहती। ऐसा मालूम होता कि आद्याशक्ति जगन्माता भगवती गंगा ही हैं। मैं गंगाके किनारे स्मरण-ध्यानमें मस्त हो गया, और उन्हींकी शरणमें विचरने लगा।'

'मोकलपुरका स्थान मुझे बहुत अच्छा लगा। वह चारो ओरसे गंगाके गर्भमें है। मुझे अपनी माँकी गोदमें ही रहना पसन्द आया और मैं चालीस-पचास वर्षोंसे मोकलपुरमें ही रह रहा हूँ। यहाँ आनेपर सन्त कच्चा बाबाकी मुझपर बड़ी कृपा हुई और अब मैं जैसा हूँ, जो हूँ, तुम लोगोंके सामने हूँ। भगवान्‌की सृष्टिमें जैसे अनेकों प्राणी हैं वैसे ही एक मैं भी हूँ। जब तुम ऊँची चौकीपर बैठा देते हो तब मैं उसपर बैठ जाता हूँ। नहीं तो नीचे पड़ा रहता हूँ। मेरा अनुभव क्या है यह सब भगवान्‌की ही लीला है, भगवान्‌की ही कृपा है। और सब भगवान् ही भगवान् हैं।'

जब भीड़ अधिक बढ़ने लगी तब प्रायः बाबा जंगलमें भाग जाते थे और घण्टों विचरते रहते। बादमें तो भीड़से घबड़ा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कर वे हमारे यहाँसे चले ही गये। अस्सी वर्षके लगभग अवस्था होनेपर भी उनके शरीरमें इतना बल था कि बड़े-बड़े नौजवान लड़के दौड़कर उन्हें छू नहीं सकते थे। उनका जीवन इतना नियमित था कि बिना घड़ीके ही सब काम समयसे होते रहते थे। शौच होकर वे विष्ठाको मिट्टीसे ढँक देते थे। दोनों समय स्नान करते और जिधरसे हवा आती उधर ही बैठते। किसीके शरीरकी हवा अपने शरीरमें नहीं लगने देते थे। कोई बीमार आता तो उसकी चिकित्सा भी विलक्षण ही करते। कह देते कि अमुक-अमुक पाँच पेड़ोंको प्रणाम कर लो, अच्छे हो जाओगे। अमुक देवताकी सात बार परिक्रमा कर लो और अपने पुरोहितको ठूँस-ठूँसकर खिला दो, तुम्हारा रोग भाग जायगा। किसीको कह देते पाप तो तुमने किया है, भोगेगा कौन ?

एक मास्टर साहब अभी जीवित हैं। उन्हें दमाका इतना भयंकर रोग था कि वे बोल नहीं सकते थे। शरीर सूख गया था। चलने-फिरनेकी शक्ति नहीं थी। एक दिन वे किसी प्रकार बाबाके पास गये। बाबाने कहा कि 'अमरूद खाओ।' वे डर गये, कांपने लगे। बाबाने बलात् दो सेर अमरूद खिला दिये और उसके ऊपर बहुत-सा दही खिलाकर डंडा लेकर उठे कि यहाँसे डेढ़ कोस तक दौड़ते हुए जाओ नहीं तो तुम्हारे जानकी खैर नहीं है। उसी दिनसे उनका दमाका रोग भाग गया, वे आज भी स्वस्थ और एक स्कूलके मास्टर हैं और बाबाके गुण गाते रहते हैं। ऐसे अनेकों प्राणियोंका कल्याण बाबाके द्वारा हुआ है।

एक बार बाबा हमारे यहाँ और आये। इस बारका आना अन्तिम आना था, फिर दूसरी बार आनेका मौका नहीं मिला। बाबा बार-बार मुझसे कहा करते थे कि उपदेशक नहीं बनना। मैंने एक पुस्तक लिखी थी संस्कृतमें। दो-ढाई सौ श्लोक

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

थे, उसका नाम था 'तत्त्वरसायन'। बाबाकी आँख उसपर पड़ी। बाबा ने कहा—'इतने ग्रन्थ पड़े हैं उन्हें पढ़नेवाला कोई नहीं, अब यह नया भार क्यों बढ़ा रहे हो ? तुम्हें कागज काला करनेका शौक तो नहीं है ?' मैंने वह पुस्तक गंगाजीमें डाल दी और निश्चय किया कि अब कभी न लिखूँगा। परन्तु मेरे निश्चयसे क्या होता है ? निश्चय तो किसी दूसरेका काम करता है। कौन जानता था कि मुझे ही बाबाके संस्मरण लिखने पड़ेंगे।

बाबाके पास बड़े-बड़े नेता जैसे कि मालवीयजी, बड़े-बड़े विद्वान् जैसे कि कविराज गोपीनाथजी और बड़े-बड़े राजा-रईस दर्शनोंके लिए आया करते थे। सन् १९३७ के दिसम्बरकी बात है, बाबाने कहा—'एक यज्ञ होगा, पाँच दिनतक लगातार हवन होता रहेगा। बीचमें चाहे कोई भी विघ्न पड़ जाय, यज्ञ बन्द न होगा। यज्ञमें जो बचेगा वह हिन्दू विश्वविद्यालय काशीको दान दे दिया जायगा और यदि मैं मर जाऊँगा तो कच्चा बाबाकी समाधिके पास ही मेरी समाधि दे दी जायगी। यज्ञ प्रारम्भ हुआ, उसके दूसरे दिन बाबा सो गये और फिर नहीं उठे।

अन्तिम दिनोंमें बाबा संकीर्तनपर बड़ा जोर देते थे। जालूपुर परगनेके लोगोंको इकट्ठा करके कीर्तन करवाते थे और परिक्रमा भी करवाते थे। वे कहते थे कि कलियुगके जीवोंसे ध्यान-समाधि तो बननेकी नहीं, केवल भगवान्के नामके आश्रयसे ही वे कल्याण-साधन कर सकते हैं। वे श्री कच्चाबाबाको विश्वनाथस्वरूप मानते थे और कच्चाबाबाने एक बार कहा था कि ये मुझसे तनिक भी कम नहीं हैं। संतोंमें बड़ा-छोटा होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है, उनको लीला वही जान सकते हैं।

काशीके एक प्रसिद्ध सन्तने, जिनपर हम सभी श्रद्धा विश्वास रखते हैं, कहा था कि 'मोकलपुरके बाबा कारक पुरुष हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

इनके कारण संसारमें बड़ी शान्ति और सुखका विस्तार हो रहा है। काशीके ईशान कोणपर रहकर वे काशीकी रक्षा करते हैं। मैंने यहाँ उनकी बातोंका भावमात्र ही लिखा है। काशीके सन्तोंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। बाबाके शब्द मुझे ठीक स्मरण नहीं हैं। यह मैंने देखा था कि कोई कहीं दुःखी होता तो बाबा इसके लिए व्याकुल हो उठते थे। दैवी शक्तियोंसे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था और हर जगहकी सूचना उन्हें मिलती रहती थी। जिन दिनों मैं भूत, प्रेत और पितर योनियोंपर विश्वास नहीं करता था; बाबाने अपने जीवनकी कई घटनाएँ बतलाकर मुझे समझाया था। सन् १९१६ में जब गंगाजीमें भयानक बाढ़ आनेवाली थी, उन्होंने दो-तीन दिन पहले ही गांववालोंको बाढ़के क्षेत्रसे अलग कर दिया था। जब बिहारका भूकम्प आया था तब उन्होंने लोगोंसे कह-कहकर चन्दा भिजवाया था। बाढ़के बारेमें पूछनेपर उन्होंने मुझसे कहा था 'श्रीगंगाजी आकर स्वयं श्रीमुखसे मुझसे कह गयी थीं।' उनके हृदयमें अपार करुणा थी। जीवोंपर स्वाभाविक कृपा थी और यही सन्तोंका विशेष गुण है। यद्यपि उनकी कृपा हम लोगोंपर निरन्तर बरस रही है तथापि वे हमपर और भी विशेष कृपा करके ऐसी योग्यता प्रदान करें कि हम शुद्धान्तःकरण होकर उनकी कृपाका अधिकाधिक लाभ उठायें और उनकी छत्रच्छायाका निरन्तर अनुभव कर सकें।

संत स्वयं भगवान् हैं। सन्त भगवान्से भी बड़े हैं।
बोलो सन्त भगवान्की जय![1]

---

१. यह लेख सन् १९२७-२८ के लगभग लिखा गया था।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

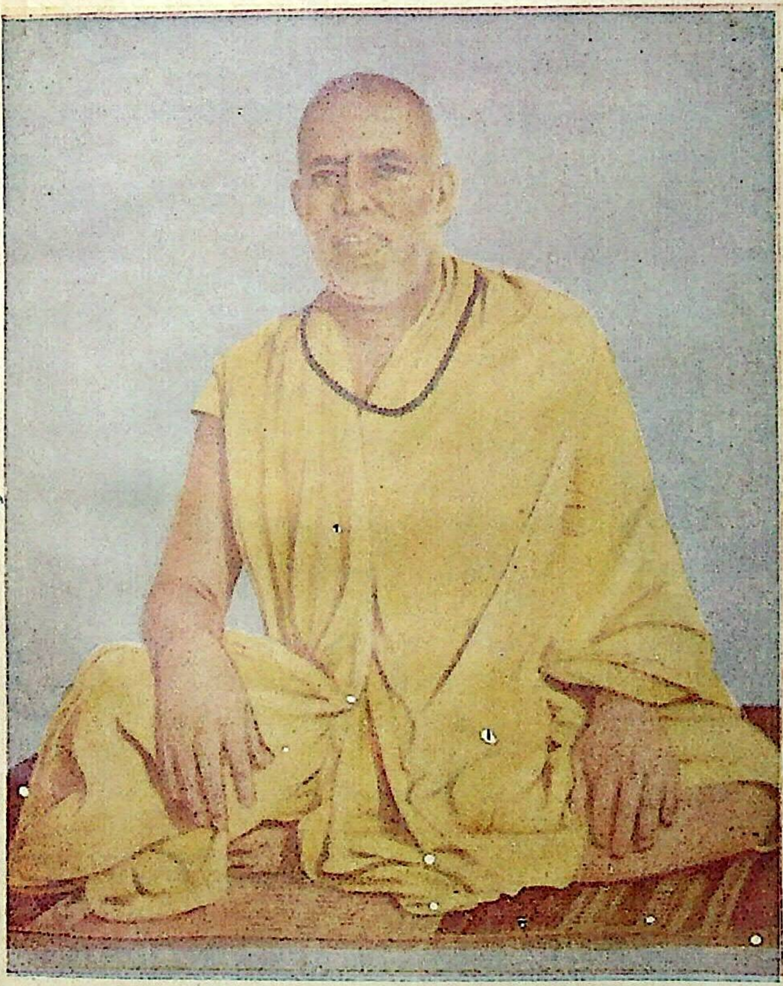

ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री उड़ियाबाबाजी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्री उड़ियाबाबाजी महाराज

(१)

स्वयंप्रकाश सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूप ब्रह्म ही संपूर्ण नाम-रूपात्मक प्रपंचके रूपमें प्रतिभात हो रहा है। वह स्वयं ही विषय और विषयीके द्विविध रूपमें विवर्तमान होकर भी अपने अद्वितीय निर्विकार स्वरूपमें ही प्रतिष्ठित है। इस अनिर्वचनीय विश्वमें जो लौकिक, पारलौकिक अथवा अलौकिक दिव्य चमत्कार चमक रहे हैं इनसे उसकी एकरस अनुभवस्वरूप अद्वितीयतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। विश्वके एक-एक कणमें विराजमान अगणित वैचित्र्य एवं परस्पर विलक्षणताएँ उसके निर्निमित्त भेदरहित अभय आदि स्वातन्त्र्यका ही उद्घोष करती हैं। निखिल वेद्य पदार्थ अपने परम स्वरूपकी एकता, अधिष्ठानता एवं चिन्मात्रतासे ही उद्भासित हैं। वह परम-स्वरूप भी प्रत्यक् चैतन्यसे भिन्न होनेपर तो अनुभाव्य, जड़ एवं विकारी सिद्ध होगा। तथा उस अविनाशी सत्से भिन्न होनेपर यह प्रत्यक् चैतन्य भी क्षणिक एवं विनश्वर हो जायगा। अतः परमार्थ सत्ता एवं प्रत्यक् चैतन्यका भेद अनुभवविरुद्ध है। इस भेदरहित उपलब्धिका एकमात्र द्वार है वह महापुरुष जो ऐक्यबोधकी प्रचंड ज्वालामें अविद्या और उसके विलासको भस्मसात् कर चुका है।

कहना न होगा कि हमारे महाराजश्री ऐसे ही जीवन्मुक्त महापुरुष थे। प्रत्यक्ष दर्शनके पूर्व भी सत्सङ्गियों द्वारा उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

महिमा सुनकर तथा 'कल्याण' में उनके उपदेश पढ़कर मेरे हृदयमें उनके प्रति एक महान् आकर्षण था। परन्तु उनके दर्शनका सौभाग्य तो तब प्राप्त हुआ जब वे स्वयं कृपा करके प्रयागराज पधारे। उन दिनों मैं कथाके अतिरिक्त और कुछ नहीं बोलता था। कथामें ही उस चलते-फिरते ब्रह्मका दर्शन करनेके अनन्तर सायंकालीन सत्सङ्गमें मैंने उनसे प्रश्न किया— 'पुनर्जन्म किस वस्तुका होता है ?'

मैंने अपने मनमें यह सोचा था कि वे वेदान्तियों और वेदान्तग्रन्थोंमें प्रसिद्ध यह उत्तर देंगे कि 'सत्रह तत्त्वोंवाले लिङ्ग शरीरका ही पुनर्जन्म होता है। साथ ही कहेंगे कि मनुष्य इस जन्ममें जो सुख-दुःखरूप फल भोग रहा है इससे पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंकी सिद्धि होती है तथा इस जन्ममें किये जानेवाले कर्मोंके फल अभी देखनेमें नहीं आते, इसलिए आगामी जन्मकी सिद्धि होती है। ऐसा न मानने पर अकृता[1]-भ्यागम और कृतविप्रणाश[2]—दो दोषोंकी प्राप्ति होगी तथा ईश्वरमें पक्षपात और निर्दयताके दोषोंका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। अतः पुनर्जन्म अवश्य स्वीकार करना चाहिए।' इसके पश्चात् पूछनेके लिए मन ही मन यह सोच रखा था कि लिङ्ग शरीरका ही जन्म होता है तो हुआ करे, मैं तो द्रष्टा हूँ, उससे मेरा क्या सम्बन्ध ? मैं (आत्मा) तो द्रष्टा हूँ, इसलिए मेरे लिए तो पुनर्जन्मके निवारणका प्रयत्न करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह सब तो मेरा मनोराज्य था। उनका उत्तर था अश्रुतपूर्व। उन्होंने कहा—'विचार पुनर्जन्मके

---

१. विना किये कर्मके फलकी प्राप्ति।
२. किये हुए कर्मके फलका नाश।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

निषेधके लिए किया जाता है; सिद्धिके लिए नहीं।' इतना कहकर वे हँसने लगे। मैं इस अतर्कित उत्तरपर आश्चर्यचकित रह गया। बात कितनी सीधी-सादी किन्तु मर्मस्पर्शी है। अविद्यासे सिद्ध वस्तुकी उपपत्तिके लिए विचारकी क्या आवश्यकता है? उसकी तो निवृत्तिका ही प्रयत्न करना चाहिए।

(२)

उन्हीं दिनोंकी बात है, भूसीके सुप्रसिद्ध संत ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीके यहाँ एकवर्षीय नामयज्ञकी पूर्णाहुतिका समारोह था। मैं भी साधकरूपमें इस यज्ञका एक होता था। महाराजश्रीके तत्त्वावधानमें इस महोत्सवका आयोजन हुआ था। अन्तमें प्रयाग पंचक्रोशीकी परिक्रमा हुई। बाबाके एक निज जन थे ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी। निजजन क्या, भक्तोंकी भावनाके अनुसार तो वे बाबाके पुत्र ही थे। बाबामें भक्तोंका शंकरभाव था और ब्रह्मचारीजीको वे साक्षात् गणेश ही मानते थे। आकृति-प्रकृतिसे भी वे गणेशजी ही जान पड़ते थे। अधिकतर इसी नामसे उनकी प्रसिद्धि भी थी। एक दिन उनसे कुछ परमार्थ-चर्चा होने लगी। गणेशजीने पूछा—'भगवान् कृष्णके उपासक विविध रूपोंमें उनकी उपासना करते हैं। कोई बाल रूपमें, कोई किशोर रूपमें, कोई गोपीवल्लभ रूपमें और कोई पार्थसारथिके रूपमें। इन सबको क्या एक ही कृष्णके दर्शन होते हैं?'

मैं—एक ही कृष्णके दर्शन क्यों होंगे? भक्तके भावभेदके अनुसार श्रीकृष्ण भी अनेक होंगे।

गणेशजी—ऐसा कैसे हो सकता है? इस प्रकार तो अनेक ईश्वर सिद्ध होंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मैं—ईश्वर तो एक ही है। परन्तु भगवान्‌का साकार विग्रह तो भक्तकी भावनाके अधीन है। वे भक्तके भगवान् हैं। इसीसे तो भावुक भक्त वृन्दावनविहारी, मथुरानाथ और द्वारकाधीशको अलग-अलग मानते हैं।

इस प्रकार कुछ देर हम दोनोंका परस्पर विचार-विनिमय होता रहा। गणेशजीका कथन था कि एक ही कृष्ण भक्तोंकी भावनाके अनुसार विभिन्न रूपोंमें दर्शन देते हैं और मैं कहता था कि परमार्थ-तत्त्वमें ईश्वरता तो आरोपित ही है और ईश्वरका व्यक्तित्व तो भक्तकी भावनाके अधीन है। अतः भक्तोंके भावभेदके अनुसार वे सब अलग-अलग हैं। फिर यही प्रश्न हमने श्रीमहाराजजीसे किया। उन्होंने कहा,—"अरे ! प्रत्येक भक्तके कृष्ण अलग-अलग हैं। यही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक भक्त भी जब-जब दर्शन करता है—उसे नवीन कृष्णका ही साक्षात्कार होता है; क्योंकि दृष्टि ही सृष्टि है। प्रत्येक दृश्य हमारी वृत्तिका ही तो विलास है। भगवद्दर्शन भी क्या बिना वृत्तिके ही होता है। अतः भक्त जब-जब भगवदाकार वृत्ति करता है उसे नवीन भगवन्मूर्तिका ही दर्शन होता है। भगवान् तो एक भी हैं और अनेक भी। स्वरूपतः वे एक हैं और भक्तोंके लिए अनेक।

(३)

हमारे महाराजश्री तत्त्वनिष्ठ नहीं, स्वयं तत्त्व ही थे। उनकी वाणी तत्त्वज्ञकी नहीं, स्वयं तत्त्वकी ही वाणी होती थी। वे उसीकी भाषामें बोलते थे। इन्हीं दिनोंकी बात है। 'कल्याण' का वेदान्ताङ्क प्रकाशित होनेवाला था। उसके लिए आपके उपदेशोंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे कल्याणपरिवारके कुछ सदस्य आये हुए थे। उनके तथा अन्यान्य जिज्ञासुओंके साथ

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आपका वेदान्तविषयक सत्सङ्ग चलता था। उसमें मैं भी सम्मिलित होता था। एक दिन मैंने पूछा—'महाराज जी! आत्मा तो अपना स्वरूप ही है। अत: वह अपनेसे कभी परोक्ष हो ही नहीं सकता। फिर आत्माका परोक्ष-ज्ञान कैसे ?'

मैं तो समझता था कि आप कहेंगे, 'ज्ञान सर्वदा अपरोक्ष ही होता है।' परन्तु आपने बड़ा ही चमत्कारपूर्ण उत्तर दिया। बोले—'ज्ञान अपरोक्ष भी नहीं है रे! जो स्वयं है उसका क्या परोक्ष और क्या अपरोक्ष ? केवल जिज्ञासुओंका भ्रम मिटानेके लिए ही परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञानकी कल्पना की जाती है।' मैं सुनकर चकित रह गया। मैंने इस प्रकारका खुला उत्तर पहले कभी नहीं सुना था। यद्यपि उस समय मुझे दृढ़ निश्चय था कि मैं तत्त्वज्ञानी हूँ। इसी प्रकार एक बार जब मैंने पूछा—'महाराजजी! जीवन्मुक्ति श्रेष्ठ है या विदेहमुक्ति ? तो आप बोले, 'भैया! इनका संकल्प ही अमङ्गल है।' ऐसी थी आपकी तत्त्वदृष्टि।

(४)

मैं पूर्वाश्रममें और संन्यास लेनेके पश्चात् भी अनेकों वर्ष श्रीमहाराजजीकी सन्निधिमें रहा हूँ। वे मुझे नित्य नये ही जान पड़ते थे। उनका अनुग्रह क्षण-क्षणमें प्रकट होता रहता था। वर्षों बीत जानेपर भी उनकी गूढ़ोक्तियोंको सुनकर आश्चर्य होता था। हम ज्यों-ज्यों उनके निकट सम्पर्कमें आते थे त्यों-त्यों उनका स्वरूप और भी आश्चर्यमयं प्रतीत होता था। श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मतत्त्वके विषयमें जो आश्चर्यरूपताकी बात कही है वह उनके तो व्यक्तित्वके विषयमें ही चरितार्थ होती थी :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
कारण कि वे अपने व्यक्तित्वको सर्वथा मिटा चुके थे। अब जो चरम और परम तत्त्व निषेधावधिरूपसे अवशिष्ट था वह भक्तोंकी भावनासे व्यक्तित्वके रूपमें भासता था। स्वयं अपनी दृष्टिमें तो वे सर्वातीत अथवा सर्वस्वरूप ही थे।

किसी जिज्ञासुने पूछा—'भगवन्! आप ब्रह्म हैं?'

श्रीमहाराजजी—'क्या तू ब्रह्मको आँखोंसे देखकर पूछ रहा है?'

जिज्ञासु—'तब क्या आप ज्ञानी हैं?'

श्रीमहाराजजी—'ज्ञान होनेपर भी क्या ज्ञानका अभिमानी कोई धर्मी रहता है?'

जिज्ञासु—'तब क्या आप अज्ञानी हैं?'

श्रीमहाराजजी—'बावले हो। क्या अज्ञान कभी दृष्टि आया है?'

जिज्ञासु—'तब आप कौन हैं?'

श्रीमहाराजजी—'तुम जितना देख रहे हो उसीके विषयमें पूछो। तुम मुझे काम करता देखते हो। बस, मैं चराचरका सेवक हूँ।'

हम लोगोंको ऐसे उत्तरका अनुमान ही नहीं था। जिज्ञासु मन श्रद्धासे झुक गया। उसने मन ही मन कहा, चराचरके सेवक तो भगवान् ही हैं अथवा वे सन्त हैं जो उनसे एक हो चुके हैं।

(५)

श्रीमुनिलालजी आदि कुछ भक्त आपकी जीवनी लिखना चाहते थे। परन्तु आपके अलौकिक चरित्रका चित्रण कैसे कि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जाय यह उनकी समझमें नहीं आता था। एक दिन किसीने आपसे पूछा—'प्रभो! सन्तोंकी जीवनी कैसे लिखनी चाहिए ?' आप बोले—'सन्तोंकी जीवनी कागज़पर नहीं, दिलपर लिखनी चाहिए।' सचमुच सन्तोंकी जीवनी कागज़पर लिखनेकी वस्तु है ही नहीं। सन्तका जीवन तो सत्तत्त्वका जीवन है। वह अमर और एकरस है। उसका अविर्भाव हृदयमें ही होता है। जो सन्तके जीवनकी एक हलकी-सी झाँकी पा लेता है वह स्वयं सन्त हो जाता है।

(६)

महाराजजीके सामने मैंने उनके आश्रममें बहुत दिनों तक श्रीमद्भागवत आदि सद्ग्रन्थोंकी कथा कही है। एक दिन किसी प्रसङ्गवश मैंने कहा—'जीव अपनेको भगवान्‌का भोग्य समझने लगे—इसीका नाम भक्ति है। भक्तकी दृष्टि अपने सुखपर कभी नहीं होती। वह तो सर्वदा अपने प्रियतमको ही सुख प्रदान करना चाहता है।' कथा समाप्त होनेपर सायंकालमें जब मैं आश्रमकी छतपर आपके सत्सङ्गमें गया तो इसी प्रसङ्गको लेकर चर्चा चली। आप बोले—'भैया! जीवका परम प्रेमास्पद तो अपना आत्मा ही है। वह भ्रमसे भले ही किसी अन्यको अपना प्रियतम माने। जीव चेतन है, अतः वह कभी किसीका भोग्य या दृश्य नहीं हो सकता। वस्तुतः वही सबका भोक्ता या द्रष्टा है। जो जीव विषयका भोक्ता होता है उसे 'संसारी' कहते हैं और जो भगवान्‌का भोक्ता होता है वह 'भक्त' कहलाता है। इसी प्रकार समाधिका भोक्ता 'योगी' कहा जाता है और जो भोक्ता एवं भोग्यका बाध कर देता है वह 'ज्ञानी' है। 'मैं भगवान्‌का भोग्य हूँ' इस भावनामें जो दिव्य एवं अलौकिक रस है भक्त उसका भोक्ता ही है। 'मैं भोग्य हूँ' यह भावना तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उसकी भोग्य ही है। अतः 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति (बृ० उ० २-४-५)' यह श्रुति समानरूपसे सभी जीवोंके स्वभावका निर्देश करती है।'

(७)

श्रीमहाराजजी जिन लोगोंके साथ वेदान्तचर्चा करते थे उनसे ब्रह्माभ्यासकी बात प्रायः कहा करते थे। उनका कथन था कि तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी निरन्तर ब्रह्माभ्यासमें तत्पर रहना चाहिए। परन्तु मेरी बुद्धि इस बातको स्वीकार नहीं करती थी। भला, जो कर्ता, कार्य, करण सभीसे अतीत सर्वाधिष्ठानभूत स्वयंप्रकाश प्रत्यक् चैतन्यमें परिनिष्ठित है उस तत्त्ववेत्ताके लिए किसी भी प्रकारके साध्य-साधनकी बात कैसे कही जा सकती है? जिसमें कर्तृत्व ही नहीं उसके लिए किस कर्तव्यका विधान किया जा सकता है? अतः एक दिन मैंने एकान्तमें पूछा—'महाराजजी! तत्त्वज्ञके लिए तो शास्त्र किसी भी कर्त्तव्यका विधान नहीं करता। फिर आप ब्रह्माभ्यासका प्रतिपादन किस दृष्टिसे करते हैं?' आप बोले—भैया! ये लोग कुछ जानते तो हैं नहीं। अभ्यास भी छोड़ देंगे तो साधनहीन हो जायँगे। मैं इसीलिए ब्रह्माभ्यासपर जोर देता हूँ; जिससे साधनमें लगे रहनेसे इनकी निरन्तर अपने लक्ष्यकी ओर प्रगति होती रहे।' मैंने पूछा—'ब्रह्माभ्यासका स्वरूप क्या है?' आप बोले—'ब्रह्म क्या अभ्यासकी वस्तु है? अरे! सब प्रकारके अभ्यासोंका निषेध ही ब्रह्माभ्यास है। मैं किसी भावनात्मक अभ्यासकी बात थोड़े ही कहता हूँ।'

(८)

एक बार मैंने पूछा—'महाराजजी! ध्यान किसका करना चाहिए?'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आप बोले, अपना।

मैं—'अपना' से क्या आशय ? क्या अपने आत्माका ?

आप—आत्मा क्या किसीका ध्येय हो सकता है ? मेरा आशय है—अपने शरीरका।

मैं—शरीरका ध्यान करनेसे क्या लाभ होगा ? ध्याता जिसका ध्यान करता है अन्तमें उससे उसका तादात्म्य हो जाता है। अतः शरीरका ध्यान करनेसे तो शरीरसे ही तादात्म्य होगा।

आप—तादात्म्य तो तब होता है जब ध्येयमें उपादेय बुद्धि होती है। मैं उपादेय बुद्धि रखकर शरीरका ध्यान करनेकी बात नहीं करता। यदि उपादेय बुद्धि न रखकर शरीरका ध्यान किया जायगा तो वह इसी प्रकार अपनेसे पृथक् भासेगा जैसे घट-द्रष्टासे घट। इस प्रकार अपनेसे शरीरका पार्थक्य अनुभव होनेसे तो असङ्गता ही बढ़ेगी।

(९)

श्रीभोलेबाबाजी एक सुप्रसिद्ध वेदान्तनिष्ठ सन्त थे। जब उनका देहावसान हुआ तो मैंने श्रीमहाराजजीसे पूछा—'क्या श्रीभोलेबाबाजीकी मुक्ति हो गयी होगी ?' आप बोले—'मुक्ति क्या मरनेसे होती है ? जो मुक्त है वह तो सर्वदा ही मुक्त है। जीना-मरना तो स्वप्नके समान केवल प्रतीतिमात्र है।'

(१०)

मैंने गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें बहुत कुछ पढ़ा-लिखा था और सोचा-समझा भी था; परन्तु इस सम्बन्धमें महाराजश्रीने जो बात बतायी वह उसके पहले मेरी बुद्धिमें इतनी स्पष्ट नहीं थी। उन्होंने कहा कि अधिकारीको भगवत्प्राप्ति अथवा परमार्थ-तत्त्वका साक्षात्कार करनेके लिए स्वयं पूर्णता ही आकारविशेषके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

रूपमें साधकके हृदयमें आविर्भूत होती है। बाहरका आकार तो केवल निमित्तमात्र ही होता है। सम्बन्ध सर्वथा मानसिक वस्तु है और वह मानसमूर्तिके साथ होता है। इसलिए बाह्य गुरुमूर्तिके मरने, बिछुड़ने या संसारी लोगोंकी दृष्टिसे पतित हो जानेसे भी उन बातोंका सम्बन्ध अपनी मानसी मूर्तिके साथ किञ्चित् भी नहीं होता। अपनी वासनाके अनुसार जितनी भी स्वप्नवत् सृष्टियाँ बनेंगी, जन्म-जन्मान्तर होंगे, अन्तस्तलके गम्भीर प्रदेशमें विराजमान यह गुरुदेव भी बार-बार अपने शिष्यके साथ जन्म लेते रहेंगे। साधकके हृदयमें विराजमान जो गुरुमूर्ति है वह तबतक उसीमें रहेगी जबतक ग्रन्थिभेद होकर अन्त:करण बाधित नहीं हो जाता अथवा प्रतिभास नाश होकर विदेह मुक्ति नहीं हो जाती। इसीको यों कह सकते हैं कि यदि किसी साधक को एक बार ठीक-ठीक गुरुदेवकी प्राप्ति हो गयी तो वे दोनों सर्वदाके लिए परस्पर बँध गये। दोनों साथ ही मुक्त होंगे। शिष्यकी मुक्ति हुए बिना उसके हृदयमें विराजमान गुरुदेवकी भी मुक्ति नहीं हो सकती।

कहना नहीं होगा कि उनके इस उपदेशके पूर्व इस सम्बन्धमें मेरी जानकारी इतनी स्पष्ट नहीं थी और तब मुझे उन महात्माके वचनोंके अर्थका साक्षात्कार हुआ; जिन्होंने अपने एक शिष्यसे कहा था कि 'बेटा जबतक तू मुक्त नहीं होगा, मैं मुक्ति स्वीकार नहीं करूँगा।'

(११)

महापुरुष साधकके जीवनमें बाह्यरूपसे ही पथ-प्रदर्शन नहीं करते, वे उसकी अन्तश्चेतनामें आविर्भूत होकर भी समय-समय पर आवश्यक स्फूर्ति प्रदान करते रहते हैं। इसीसे साधकोंको जिन संतोंसे आध्यात्मिक सम्बन्ध हो जाता है वे कभी-कभी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

स्वप्न और ध्यानादिके समय भी प्रकट होकर उन्हें पथ प्रदर्शित करते रहते हैं। श्रीमहाराजजीके भक्तोंसे ऐसे स्वप्न सम्बन्धी सैकड़ों अनुभव सुने गये हैं।

मेरी यद्यपि स्वप्नोंमें कोई विशेष आस्था नहीं थी, तथापि दो-तीन बार मुझे भी उनके विषयमें बड़े विचित्र स्वप्न देखनेमें आये। एक बार तो मैंने उन्हें श्रीकृष्णके समान कटि-काछिनी और मुकुट आदि धारण किये देखा। दूसरी बार ऐसा हुआ कि मेरे पितामहजीने कुछ भूमि खरीदी थी। उसका जब हम उपयोग करने लगे तो उसमें प्रेतोंने कुछ बाधा उपस्थित की। उस समय मैंने स्वप्नमें देखा कि श्रीमहाराजजी उसी स्थानपर एक चबूतरेपर बैठे हैं और कह रहे हैं कि—'तुम इस भूमिको जोत-बो सकते हो, परन्तु इसकी पैदावारको अपने काममें मत लाना, उसे धर्मार्थ लगा देना।' हमने ऐसा ही किया और फिर कोई उपद्रव नहीं हुआ।

तीसरी बार एक बड़ा ही विलक्षण स्वप्न देखा। मैंने स्वप्नमें भी अपनेको उसी कुटीमें देखा जिसमें कि मैं सोया हुआ था। वहाँ दो तख्त पड़े देखे। उनमेंसे एकपर मैं लेटा हुआ हूँ और दूसरेपर श्रीमहाराजजी आकर लेट गये। फिर देखा कि वे दोनों तख्त मिलकर एक हो गये हैं और महाराजश्री मेरा आलिंगन किये हुए हैं। उस आलिंगनके द्वारा मैं मानो उनसे अभिन्न हो गया हूँ। उस अवस्थामें मुझे वे ही दीखते थे, अपना आप मानो लुप्त हो गया था। इस प्रकार स्वप्नमें मुझे उनसे अभिन्नताका अनुभव हुआ। उसके कुछ काल पश्चात् आपका निर्वाण हुआ। निर्वाणोत्सव समाप्त होनेपर मैं अपने कुछ साथियों-सहित गोवर्धनकी परिक्रमाको गया। सब साथी मुझसे बिछुड़ गये। उस समय स्वयं ही मेरे मनमें कुछ मनो-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

राज्य होने लगा। मैंने देखा—सामनेसे श्रीमहाराजजी आ रहे हैं। उन्होंने मुझे आलिंगन किया है और मैं उनसे अभिन्न हो गया हूँ। कुछ देर यह स्थिति रही। फिर मैं सचेत हो गया और थोड़ी देरमें ही मेरे साथी भी मिल गये।

(१२)

ऐसा था हमारे महाराजश्रीका अलौकिक स्वरूप। उनके विचारका उत्कर्ष, चित्तकी समाधि, जीवनकी प्रेममयता और रहनीकी सादगी पास रहकर देखने योग्य थी। भक्तलोग उनको सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् मानते थे। बहुतोंके तो वे गुरुदेव ही नहीं, इष्टदेव भी थे।

एक दिनकी बात है। अभी मैं संन्यासी नहीं हुआ था। रात्रिके समय आश्रमकी छतपर लेटा हुआ था। मेरे पास थे संन्यासी मित्र स्वामी निर्मलदासजी। हम दोनोंने निश्चय किया कि कहीं एकान्तमें चलकर दोनों साथ-साथ रहें। प्रातःकाल चार बजे हम दोनों वेदान्तके सत्सङ्गमें श्रीमहाराजजीके पास गये। आप बोले—'शान्तनु ! तुम दोनोंका साथ रहना ठीक नहीं है।' मैंने मन ही मन सोचा—'क्या महाराजजीने हमारी बात जान ली है ? यदि ऐसी बात है तो इस समय ही ये मुझे खानेके लिए कोई चीज दें, तब मैं समझूँगा कि ये मेरे मनकी बात जान गये हैं।' तुरन्त आपने एक सेवकको पुकार कर कहा, 'भैया ! शान्तनुको इस समय भूख लगी है। कुछ लाओ तो।' सेवक कुछ सामग्री ले आया और मुझे प्रसादमें बहुत-से केले और पेड़े मिले। मैं लज्जा और संकोचसे दब गया। क्या प्रातःकाल चार बजेका समय भी भोजनके लिए उपयुक्त है ? श्रीमहाराजजीके विषयमें ऐसी एक नहीं अनेकों घटनाएँ जीवनमें देखी और सुनी हैं। परन्तु सिद्धियोंकी बातको न तो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वे महत्त्व देते थे और न मेरी दृष्टिमें ही उनका विशेष महत्त्व है। वे तो अधिकतर ऐसी बातोंको स्वीकार भी नहीं करते थे। हमारी दृष्टिमें तो उनका सबसे बड़ा चमत्कार यह भी था कि वे सभीसे प्रेम करते थे, सभीको अपना मानते थे और हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि उनकी सबसे अधिक कृपा उसीपर है। यद्यपि उनके समीपवर्ती लोगोंकी रुचि, स्वभाव, साधन एवं विचारोंमें बहुत अधिक भेद था, तथापि वे सभीको अपने जान पड़ते थे। वे भक्तके लिए भक्त, ज्ञानीके लिए ज्ञानी, कर्मीके लिए कर्मी और योगियोंके लिए योगी थे। श्रीरामभक्त उन्हें रामरूपमें देखते थे, श्रीकृष्णभक्त कृष्ण-रूपमें और शैवोंको उन्होंने शिवरूपमें दर्शन दिये थे। सौ-दो-सौ मीलपर रहनेवाले भक्तोंने भी समय-समयपर ऐसा अनुभव किया कि श्रीमहाराजजीने प्रकट होकर उनके यहाँ भोग लगाया। भक्तोंपर कोई आपत्ति-विपत्ति आ पड़ती तो वे उनके एकमात्र सहायक होते थे। मैं एक बार कर्णवासमें बीमार पड़ गया था। उस समय महाराज रातभर नहीं सोये, मेरे ही आस-पास चक्कर काटते रहे।

निरभिमानताकी तो वे मूर्ति ही थे। '**सबहि मानप्रद आपु अमानी।**' आप सर्वदा पैदल ही यात्रा करते थे। रास्तेमें जब कोई आगे चलता दिखायी देता और कोई भक्त उससे रास्ता छोड़नेके लिए कहनेको आगे बढ़ता तो आप उसे डाँट देते अथवा उसके कहनेसे पहले ही रास्ता काटकर आगे निकल जाते। इस बातका आप बहुत ध्यान रखते थे कि किसीको तनिक भी कष्ट न पहुँचने पाये। यदि आश्रममें कहीं गन्दगी दीख जाती या वर्तन जूठे पड़े होते तो किसीसे कुछ भी न कह कर स्वयं ही झाड़ू लगाने या वर्तन माँजनेके लिए दौड़ पड़ते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उनकी सभीके प्रति समदृष्टि थी। किसीको भूखा वे देख नहीं सकते थे। कई बार समागत व्यक्तिको भोजन कराकर वे स्वयं भूखे रह जाते। अच्छा भोजन उनसे किया ही नहीं जाता था। खीर-पूड़ी दूध-मिठाई और फल आदिमें उनकी स्वाभाविक ही अरुचि थी। स्वयं तो सबको भोजन करा देनेके पश्चात् ही खाते थे। दूरवाले तो समझते थे कि ये गुरु हैं, पुजते हैं, मौज रहते हैं; परन्तु निकटवाले जानते थे कि वे एक-एककी पूजा ही लगे रहते हैं; सबकी पूजा ही करते हैं। पासमें एक कौड़ी नहीं रखते थे और कभी किसीसे कुछ माँगते नहीं थे। कभी-कभी तो विना कुछ ओढ़े-बिछाये पृथ्वीपर ही सो जाते थे। सचमुच वैराग्यकी तो वे मूर्ति ही थे।

साधनकालमें आप कभी लेटकर नहीं सोते थे। पीछे भी कभी आपको दो-तीन घण्टेसे अधिक सोते हुए किसीने नहीं देखा। अपनी निन्दा सुनकर आपको प्रसन्नता होती थी और जो निन्दा करता उसे अपने समीप रखकर सबसे अधिक उसीका आदर सत्कार करते थे। दूसरोंके साथ सम्वन्ध निभाना आप खूब जानते थे। जिससे जिस प्रकार पहले दिन मिले उसके साथ जीवनभर वैसा ही वर्ताव किया। किसीको बुलाना या हटाना तो आप जानते ही नहीं थे। ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसने आपके जीवनमें कभी किसी विकारकी छाया भी देखी हो। आपके मुखमण्डलपर सर्वदा प्रसन्नता खेलती थी, रोम-रोम उत्साहसे फड़कता था और आपकी चालमें अद्भुत मस्ती थी। वह ज्ञान, प्रेम और आनन्दकी मूर्ति अब कहाँ देखनेको मिलेगी!

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आत्मनिरीक्षण कीजिये

हमारी मनोवृत्तियोंको विचार करनेका व्यसन है। वे कुछ-न-कुछ सोचा ही करती हैं। चाहे कोई प्रयोजन हो या न हो वे अपने काममें लगी रहती हैं। साधारण लोग उनपर दृष्टि नहीं करते; परन्तु साधक उनकी विशेष निगरानी रखते हैं। रखनी भी चाहिए। बाह्य क्रियाएँ भी मनकी शक्तिसे ही होती हैं। जिसने तनको उच्छृङ्खल छोड़ दिया है, जिसकी मनोवृत्तयोंका व्यर्थ अपव्यय होता है, वह संसारका भी कोई ठोस काम नहीं कर सकता। भगवान्के राज्यमें—ज्योतिर्मय लोकमें अथवा उच्चतम अध्यात्ममें तो उसका प्रवेश ही कैसे हो सकता है ? कोई भी काम करना हो, पहले मनोवृत्तियोंको नियंत्रित करना होगा, उसे अभिलषित दिशामें, एक ओर लगाना होगा। बिखरी हुई शक्तियोंसे हम कोई काम पूरा करनेकी आशा कैसे कर सकते हैं ?

जो लोग आत्मतत्त्व अथवा भगवान्के चिन्तनमें लगे रहते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कुछ कहना ही नहीं है। हमें विचार करना है—अपने सम्बन्धमें और अपनी वर्तमान वृत्तियोंके सम्बन्धमें। हमें सबसे पहले यह बात देखनी चाहिए कि हम अपने बारेमें कितना सोचते हैं और दूसरोंके बारेमें कितना ? हमें यह बात जान लेनी चाहिए कि जबतक हम अपनेको नहीं पहचान लेंगे तबतक और किसीको ठीक-ठीक नहीं पहचान सकेंगे। विभिन्नता होनेपर भी सबकी प्रकृति, सबका उपादान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

एक है। परन्तु उस एककी पहचान तो होनी ही चाहिए। उसे जानने, समझने, पहचानने और अनुभव करनेके लिए सबसे सुन्दर, सबसे निरापद, सबसे अनुकूल और सबसे निकट अपना ही शरीर, अपना ही मन और अपनी ही अन्तरात्मा है। अपनी प्रकृति और अपने मनके उपादानोंको तत्त्वतः समझ लिया जाय तो फिर दूसरेका समझना बाकी नहीं रहता। यह एक रहस्य है, जो कभी-न-कभी प्रत्येक विचारकके सामने उपस्थित होता ही है।

यदि हम अपने सम्बन्धमें नहीं सोच पाते या कम सोच पाते हैं और दूसरोंके सम्बन्धमें सोचना ही पड़ता है, तो हमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए—वह यह कि दूसरोंका विचार करते समय हम उनके गुणोंको देखते हैं या दोषोंको। दोष तो दूसरोंपर विचार करना भी है; परन्तु दूसरोंका दोष देखना तो महान् दोष है। जिस वस्तुका चिन्तन होता है, हृदयपर उसके संस्कार पड़ते हैं और धीरे-धीरे वे दोष हमारे अन्दर आने लगते हैं। चाहे पहले उनका रूप बहुत ही सूक्ष्म हो और वे न जान पड़ें, तथापि एक-न-एक दिन वे बढ़कर तरङ्गसे समुद्र हो जाते हैं। वास्तवमें तो हमारे अन्दर इतने दोष हैं कि हमें दूसरोंके दोषोंपर विचार करनेका, दृष्टि डालनेका अवसर ही नहीं मिलना चाहिए। किसीके दोष देखनेका हमें क्या अधिकार है? हम किसीके दोषोंपर विचार करनेवाले न्यायाधीश तो हैं नहीं। इसके विपरीत गुणोंके चिन्तनसे हमारे अन्दर गुणोंका विकास होता है, पवित्रता आती है, प्रसन्नता मिलती है और शान्तिका अनुभव होता है। आजकल जो संसारमें अधिक उद्वेग तथा अशान्तिके दर्शन होते हैं, उनके कारणोंमें परदोषदर्शनका मुख्य स्थान है।

• • •

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अपने संबंधमें विचार करते समय सावधान रहना चाहिए कि कहीं हम अपने गुणोंका चिन्तन करके अभिमानकी वृद्धि तो नहीं कर रहे हैं ? अपने एक-एक दोषोंको जानकर, ढूँढ़कर उन्हें निकाल फेंकना चाहिए। अपने दोषोंकी ओरसे प्रायः हमारी आंखें वन्द ही रहती हैं। दूसरोंका तनिक-सा दोष भी सूझ जाता है; परन्तु अपना बड़ा-सा दोष भी नहीं सूझता। हमें अपनी ओर, अपने दोषोंकी ओर थोड़ी गम्भीरता और कड़ाईके साथ देखना चाहिए। दोषोंके रहनेके दो कारण हैं—एक तो उन्हें न जानना और दूसरा उनमें आसक्ति। ये दोष हैं, इतना जानते ही वे निकल भागते हैं, यदि हम उन्हें फिर बुलाकर अपनेमें आश्रय नहीं देते। वस्तुतः आश्रय देना भी उनके अज्ञानसे ही होता है। हमें जब मालूम हो जाता है कि हमारे घरमें साँप है या हमारे भोजनमें विष है तब हम साँपको निकाल डालते हैं अथवा उस भोजनको छोड़ देते हैं। घरके स्वामीको सजग देखकर चोर स्वयं ही भाग जाता है, हमें केवल चोरोंको चोर जानना चाहिए और सजग होना चाहिए। शरीरके दोषोंको जान लें, उनसे आसक्ति छोड़ दें। बस, हम पवित्र हो जायँगे।

हमारी पवित्रताकी परीक्षा तो तब होती है, जब हम एकान्तमें बैठते हैं। व्याख्यानसे, अच्छी-अच्छी बातोंसे या सुन्दर लिखनेसे हमारी पवित्रताका पता नहीं चल सकता। एकान्तमें जन-शून्य स्थानमें जहाँ परमात्माके अतिरिक्त हमें और कोई देखनेवाला न हो वहाँ हमारा मन हमारे सामने आता है। उस समय हम जानते हैं कि ईश्वर, धर्म और सदाचारके प्रति हम कितना श्रद्धाविश्वास रखते हैं। हमारी धारणा तो यहाँ तक है कि हम चाहे जितने जप-तप, पूजा-पाठ, आसन-प्राणायामादि करते हों, परन्तु जब तक एकान्तमें पाप-चिन्तन होता है, तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तक सच्ची आस्तिकताका जन्म ही नहीं हुआ है और न तो साधनका प्रारम्भ ही। पाप-वृत्तियोंकी निवृत्ति बिना, साधनाकी प्रवृत्ति ही नहीं होती।

प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनों दो वस्तु नहीं हैं। असुन्दर और अपवित्रकी ओरसे निवृत्त होना ही होगा। मनकी प्रवृत्ति स्वभावतः विषयोंकी ओर है। उसे क्रमशः निवृत्त करना होगा। पापसे निवृत्ति पुण्यमें स्थिति है। और पाप-पुण्यसे निवृत्ति आत्मामें, भगवान्में स्थिति है। धीरे-धीरे वृत्तियोंको वाह्यसे संकुचित करके अन्तरमें स्थित करना होगा। यदि हम निवृत्तिसे चिढ़ेंगे तो इसका यह अर्थ होगा कि अभी हम साधनाका स्वरूप समझते ही नहीं। दूसरेसे निवृत्त होकर 'स्व' में, अपने वास्तविक 'स्व' भगवान्में प्रतिष्ठित होना ही साधनोंका सम्पूर्ण अर्थ है। वृत्ति और वृत्तियोंसे पृथक् पदार्थोंमें प्रवृत्ति पतनका कारण है। इसलिए भगवान्की ओर प्रवृत्त होना—जाना नहीं है, उनकी ओर निवृत्त होना—लौटना है। आज हमारी आत्मा अपनेको भूलकर वृत्तियों, इन्द्रियों और क्रियाओंके द्वारा वाहर प्रवृत्त हो रही है, जा रही है। उधरसे निवृत्त होना होगा—लौटना होगा। प्रवृत्ति मार्गका अर्थ है—पुण्यमें स्थिति। वह एक प्रकारसे पापोंसे निवृत्तिका ही नामान्तर है। महात्माओंकी निवृत्ति दूसरी वस्तु है। वह महात्माओंके ही कामकी है।

एकान्तमें बैठनेपर पापवृत्तियाँ नहीं उठतीं, तो भी साधनमें एक वहुत वड़ी अड़चन आती है। वह है भूत अथवा भविष्यकी चिन्ता। 'मैंने यह अच्छा किया, यह बुरा किया'—इस प्रकार भूतकी बातें बार-बार मनमें आने लगती हैं। उनसे सम्बन्ध रखनेवाली वहुत-सी वस्तुओं और व्यक्तियोंका स्मरण

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हो आता है और फिर उन्हींमें हम उलझ जाते हैं। अपने किये हुए अच्छे कामोंका स्मरण आना तो अभिमानजनक है ही; परन्तु उस समय बुरे कामोंका स्मरण आना भी घातक है। हमें चाहिए कि उन्हें याद करके उनपर पश्चात्ताप और उनको पुनः न करनेका संकल्प करनेके लिए दूसरा समय निकालें। अब तो वे हो चुके हैं। वर्तमान समयको ठीक-ठीक भगवान्के—आत्माके चिन्तनमें वितायें। भविष्यके सम्बन्धमें बुरे संकल्पोंकी तो बात ही क्या है, अच्छे संकल्प भी न करें। उनके लिए दूसरा समय रखना ही ठीक है। क्या पता वह समय आये या न आये ? पूरी शक्ति लगाकर इस क्षणका सदुपयोग करना चाहिए। हम विचार करेंगे तो देखेंगे कि दो क्षणोंका संधि-काल इतना सूक्ष्म है कि भूत और भविष्यकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर यदि हम उसमें स्थित होते हैं तो वास्तवमें सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं।

हम सन्तोंका संग करते हैं, साधन करते हैं; परन्तु हमारी आँखें देखती ही नहीं। सारे शास्त्र पढ़ लिये; परन्तु भीतरका शास्त्र पढ़ा ही नहीं, इसका क्या कारण है ? क्या हम केवल बिना मनकी कुछ क्रियाओंसे भगवान्को पाना चाहते हैं ? यह केवल भ्रम है। मन घूमा करे इधर-उधर विषयोंमें, बुद्धि रुपये ठन-ठनाया करे और भगवान् हमें मिल जायँ, यह मनोरञ्जनकी बात है। अभी डांटकर मनको अन्तर्मुख करना होगा। बाह्य दृश्योंको छोड़कर या उनके अन्दर-भीतरके दृश्य, भगवान्की लीला अथवा आत्माका विलास देखना होगा। सत्संगका फल है—अन्तर्दृष्टि। अन्तर्दृष्टि ही सच्चा भजन है। यह आँखें खुली रखनेपर भी वह रह सकती है, इसके लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। हम जहाँ हैं, बैठे हैं, खड़े हैं, उसी अवस्थामें अन्तर्दृष्टि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्राप्त हो सकती है। जिन देखी-सुनी वस्तुओंकी ओर मन जा
है, उनकी अनित्यतापर विचार किया जाय। वृत्तियाँ जि
प्रलोभनोंकी ओर झुकती हैं, उन्हें उखाड़ फेंका जाय। क
पहरा रहे इन वृत्तियोंपर। देहके सम्बन्धी, देह, प्राण, इन्द्रि
मन और बुद्धि—इन सबकी ओरसे वृत्तियोंको मोड़कर अप
आपमें ही रक्खा जाय। साक्षित्व बना रहे। एक क्षण भी
निरीक्षणसे च्युत न हों। मन कभी मनमानी न करने पाये
यह केवल सावधानीसे हो जायगा। और सब उपाय केवल
सावधानीके, जागरणके लिए हैं। सावधानी ही अन्तर्दृष्टि है।

प्रश्न होता है—यह दृष्टि टिके कहाँ? इसका त्राटक कह
लगाया जाय? इस प्रश्नका सीधा उत्तर यह है कि हृदयमें ही
इसे स्थिर किया जाय। वृत्तियाँ अपनेसे स्थूल पदार्थको ही
ग्रहण कर पाती हैं। अपने अन्दर रहनेवाले अपनेसे सूक्ष्मतम
वस्तुको ग्रहण करनेमें वे सर्वथा असमर्थ हैं। वे स्वयं जड़ हैं
उनका विषय जड़ है। वे जो कुछ सोचती-विचारती हैं, व
सब जड़ है, उन्हींके द्वारा पैदा किया हुआ है, उन्हींके द्वार
सुरक्षित है और उनके न रहनेपर रहता भी नहीं। ऐसी अव
स्थामें इन्हें कहाँ लगाया जाय? जहाँ ये लगेंगी वह जड़ है
जो इनके विचारमें आ जायगा वह जड़ है, ये जितना आकलन
कर लेंगी, वह जड़ है। इन्हें कहीं न लगाया जाय। इनका
विषय अनित्य है, मिथ्या है और जो इनसे परे है, उसमें इनकी
गति ही नहीं है। विषयमें जायँ नहीं, और अपनेसे परे वाले
तत्त्वमें प्रवेश कर नहीं सकतीं, तब इनकी क्या गति होगी?
ये मर जायँगी। ये स्वयं जड़, अनित्य और मिथ्या हैं
वास्तवमें इनका अस्तित्व है ही नहीं। इनका सबीज नाश है
आत्मा, परमात्मा अथवा भगवान्की प्राप्ति है।

● ● ●

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हमारे अन्दर वड़ी दुर्बलता है। इन वृत्तियोंसे हमारा वड़ा मोह हो गया है। कम-से-कम इस समय तो हम ऐसा ही मानते हैं। इसीका नाम अज्ञान है। यदि हम वृत्तियोंकी रक्षाका मोह छोड़ दें तो अभी-अभी हम अपनी स्वरूपस्थितिका अनुभव करने लगें। सूक्ष्म-दृष्टिसे देखनेपर हम अनुभव करेंगे कि हम कुछ-न-कुछ वचा रखना चाहते हैं। यही 'वचाने' की वृत्ति साक्षात्कारकी विघातक है। इसका नाम है काम। इसके नष्ट होते ही काम वन जाता है। श्रुतियोंने स्पष्ट घोषणा की है—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते॥

यह कामना अपने स्वरूपको न जाननेके कारण है। हम जानते नहीं, समझते नहीं कि हमारा स्वरूप इतना बड़ा, इतना सत्य, इतना सुन्दर और सतृप्त है कि हमें और किसी वस्तुकी सर्वथा आवश्यकता ही नहीं हैं। भगवान् पूर्ण हैं, उनके पानेपर कुछ पाना शेष नहीं रहता। हिरण्यगर्भ भी अपने अन्तर्भूत हो जाता है। तव हम और कुछ क्यों चाहते हैं ?

भगवत्प्राप्तिके समय या उसके पश्चात्के लिए भी हम कुछ वचा रखना क्यों चाहते हैं ? यही तो अज्ञानका स्वरूप है। विचार करके देखें हम ऐसी कोई वस्तु अवश्य चाहते हैं—जो वृत्तियोंका विषय है अथवा वृत्तिरूप है। यही प्रतिबन्धक है आत्मसाक्षात्कार अथवा भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें। प्रारब्ध, अदृष्ट आदिकी कल्पना भी इसी दुर्वलताके कारण हुई है। इसीसे वेदान्तके कई ऊँचे ग्रन्थोंमें महाप्रलयके चिन्तनकी बड़ी महिमा वतायी है। छोड़ दें अपनेसे अतिरिक्तका मोह, मोड़ लें उनकी ओरसे दृष्टि, और फोड़ दें उनकी सत्ताका मिथ्या भांड, फिर तो आत्मा ही आत्मा है, भगवान् ही भगवान् हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हम किससे प्रेम करते हैं ? इसी शरीरसे, इन्हीं इन्द्रियों और इन्हीं प्राणोंसे। हम चाहते हैं कि इसी कलुषित शरीर, मन और प्राणोंसे भगवान्को प्राप्त करें। इनके नष्ट होनेपर भगवान् मिलेंगे, इस बातकी कभी कल्पना ही नहीं होती; इनके नष्ट होनेकी बातसे हम थर्रा उठते हैं; काँप जाते हैं। क्या हम भगवान् या आत्माकी अपेक्षा इनसे अधिक प्रेम करते हैं ? क्या हम आत्मा या भगवान्की उपलब्धिके लिए इनका बलिदान कर सकते हैं ? बलिदान करनेकी बात नहीं है। बात तो इन्हें अनन्त, चित्, अमृत और आनन्दसे एक कर देनेकी है। परन्तु क्या हम इसके लिए तैयार हैं ? बातोंसे तैयार हैं, देखा-देखी तैयार हैं; परन्तु वास्तवमें तो वैसे तत्त्वकी जानकारी अथवा उसपर हमारा विश्वास ही नहीं है।

हमें सबसे पहले आवश्यकता है विश्वासकी। शास्त्रोंमें, सन्तोंमें, धर्ममें और भगवान्में विश्वास होना चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए। विश्वासके बिना एक पग भी हम आगे नहीं बढ़ सकते। तब विश्वास कैसे प्राप्त हो ? इसका एक उपाय है। हम अपने जीवनके सम्बन्धमें सोचें, इसीके सम्बन्धमें विचार करें। जिन्होंने अपने जीवनका रहस्य समझ लिया है, उनकी सङ्गति करें। हम देखेंगे कि हमारी अबतककी चेष्टाएँ जो कि अपने जीवनको समझे बिना हो रही थीं सर्वथा बाह्य और अधिकांश व्यर्थ थीं। जब हम अपने शरीरको अव्यवस्थित एवं रोग और मृत्युके समीप पायेंगे, जब हम अपनी इन्द्रियोंको उच्छृंखल और आज्ञाका उल्लंघन करनेवाली तथा विनाशोन्मुख पायेंगे, जब हम अपने मन, बुद्धि और अन्तःकरणको अस्थिर, निरुद्देश्य, निश्चयहीन तथा निकटतम वस्तुके सम्बन्धमें अज्ञान एवं दुःख-शोकसे अभिभूत पायेंगे, तब स्वभावतः उनके निदान

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चिकित्सा और ओषधियोंकी जिज्ञासा होगी—उन दोषोंसे मुमुक्षा होगी, तब हम सन्तोंका, धर्मोंका, शास्त्रोंका और भगवान्का विश्वास करेंगे और सच्चे सुख एवं शान्तिका लाभ करेंगे। शान्तिके लिए विश्वास और विश्वासके लिए अपनोंका एवं अपने आपके निरीक्षण-परीक्षणकी आवश्यकता है।

चाहे जैसे हो, एक-न-एक दिन हमें बाध्य होकर विश्वास करना पड़ेगा। बाहरकी ओरसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंको, मनोवृत्तियोंको समेटकर अन्तस्तलमें, आत्मामें, परमात्मामें स्थापित करना ही होगा। विलम्ब करनेसे क्या लाभ? इसी समय एक वार अन्तस्तलकी ओर वृत्तियोंको मोड़कर देखें तो सही। कितना समय यों ही जाता है, पाँच-दस मिनट प्रतिदिन ऐसे ही बितायें। मेरा विश्वास है कि यदि प्रतिदिन कुछ समयतक ऐसा किया जाय, अपने सम्बन्धमें सोच-विचारकर अन्तर्मुख होनेकी चेष्टा की जाय तो वह समय शीघ्र ही आ जायेगा, जब हम धर्म एवं परमात्माका सान्निध्य अनुभव करने लगेंगे। क्या हम ऐसा कर सकते हैं?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दोष-निवृत्तिके उपाय

जिज्ञासु : महाराज ! कोई ऐसा उपाय बताइये कि मेरा हृदय शुद्ध हो जाय, मेरे सब दोष मिट जायँ, और मैं निरन्तर भगवान्‌के भजनमें लगा रहूँ।

महात्मा : भैया ! हृदय शुद्ध होना, दोषोंका मिटना और भजनका होना ये तीन बातें नहीं हैं। जितना भजन होता है उतने ही दोष मिटते हैं और उतना ही हृदय शुद्ध होता है। फिर तो अधिकाधिक भजन बढ़ने लगता है। तुम इनका उपाय पूछते हो ! पर मैं तुमसे ही पूछता हूँ, क्या तुम्हें दोष दोषरूपसे मालूम पड़ते हैं ?

जिज्ञासु : भगवन् ! शास्त्रोंमें जिन्हें दोष बताया है, सन्त लोग जिन्हें दोष कहते हैं—जैसे झूठ बोलना, क्रोध करना, हिंसा करना, आदि इन्हें तो मैं दोषरूपसे जानता ही हूँ। फिर भी वही काम कर बैठता हूँ।

महात्मा : भैया ! जानना दो प्रकारका होता है, एक तो ऊपर-ऊपरका और दूसरा आन्तरिक। हम दूसरोंसे सुनकर देखादेखी जो कुछ जानते हैं वह केवल ऊपर-ऊपरका ज्ञान है। देखो न, सभी जानते हैं कि झूठ बोलना पाप है, झूठ बोलनेमें हानि है—ऐसी बातें कहते-सुनते हैं; परन्तु हृदयसे झूठपर आस्था रखते हैं। कोई मामला सामने आया तो ऐसा विश्वास कर लेते हैं कि "झूठ बोलनेसे हमारा लाभ होगा और सच बोलनेसे हानि। यदि उनके हृदयमें सत्यकी महिमा बैठ गयी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

होती तो वे सत्यसे ही लाभकी आशा रखते, असत्यसे हानि-ही-हानि समझते; परन्तु बात ठीक उलटी है। केवल वाणीसे कहने और कानसे सुननेका नाम दोषको दोष जानना नहीं है।

मान लो, तुम यहाँ छप्परके नीचे बैठे हो। अब यदि ऊपरसे एक साँप तुम्हारी गोदमें गिरे तो तुम किसीसे पूछने जाओगे या सोच-विचार करोगे कि इसे क्या करूँ ? तुम दोनोंमेंसे एक काम भी नहीं करोगे। एक क्षणका विलम्ब किये विना उसे अपनी गोदसे झटककर फेंक दोगे। ऐसा क्यों होगा ? इसका एक ही उत्तर है। तुम जानते हो कि साँप मुझे काट खायेगा, साँपसे मेरी हानि है। ऐसे ही झूठ बोलने आदि दोषोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए। यदि यह ज्ञान हो जाय, यह धारणा दृढ़ हो जाय कि ये दोष हैं, इनसे मेरे स्वार्थकी हानि है, इनके फल-स्वरूप मुझे नरकमें जाना पड़ेगा, परमात्मा अप्रसन्न होंगे तो जान बूझकर एक क्षणके लिए भी दोषोंको नहीं अपनाओगे। यदि अनजानमें कभी दोष आजायेंगे तो तुम्हें बड़ा दुःख होगा, पश्चात्ताप होगा और फिर कभी न आयें इसके लिए सावधान हो जाओगे। इसलिए दोषोंको मिटानेका यह उपाय है कि उन्हें दोषरूपसे पहचाना जाय। यह निश्चय किया जाय कि इनसे हमारी हानि-ही-हानि है, वास्तवमें हम दोषोंको दोष न जानकर, उन्हें न पहचानकर इनमें आसक्त हो गये हैं और बाहर नहीं तो भीतर-ही-भीतर उन्हें अपनाये हुए हैं। उन्हें पहचानो और छोड़ो। सच्चाईके साथ छोड़ते ही वे भाग जायँगे और फिर कभी नहीं आयेंगे।

जिज्ञासु : महाराज ! दोषोंका स्वरूप क्या है, और उनकी आत्यन्तिक निवृत्ति कैसे होती है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

महात्मा : आत्माको, भगवान्‌को भूलकर-छोड़कर और कहीं दृष्टिका जाना, किसी दूसरी सत्ताका प्रतीत होना और प्रतीत करानेवाली वृत्तिका रहना ही दोषका मूलस्वरूप है। हम जहाँ जितना अधिक परमात्मासे दूर रहते हैं, वहाँ उतना ही अधिक दोष है। व्यवहारमें दोष और गुणकी परिभाषा अपेक्षासे ही होती है। जो काम करते हुए हम अन्तर्मुख होते हैं, भगवान्‌की ओर बढ़ते हैं वह गुण है और जिस कामको करते हुए हम परमात्मासे दूर होते हैं वह दोष है। जप, तप, पूजा, पाठ, ध्यान, स्तोत्र भगवान्‌की याद दिलाते हैं इसलिए वे गुण हैं। काम, क्रोध, लोभ, प्रमाद, आलस्य आदि दुर्गुण परमात्माको भुला देनेवाले हैं इसलिए वे दोष हैं। भगवान्‌ने, संतोंने, शास्त्रोंने जिन्हें गुण कहा है वे गुण है; क्योंकि इनके साथ भगवान्‌का सम्बन्ध है और उनको अपनानेसे भगवान्‌की स्मृति बढ़ती है। अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्तिसे अपनी बुद्धिसे गुण समझकर जो काम किया जायगा उसमें अभिमान हो सकता है, भ्रम हो सकता है और इसीसे वह भगवान्‌के सम्बन्धसे शून्य भी हो सकता है। सम्बन्ध न होनेके कारण वह हमें भगवान्‌का स्मरण नहीं करायेगा और यही उसके दोष होनेका कारण है। एक स्थितिमें शास्त्र-विरुद्ध लोगोंको दुःख देनेवाली क्रिया और उसके संकल्प दोष हैं तो दूसरी स्थितिमें पुण्यकी क्रिया और उसके संकल्प भी दोष हैं। क्योंकि संसारके सम्बन्धमें कोई संकल्प न करके भगवान्‌का स्मरण करते रहना ही सर्वोत्तम है। एक स्थिति ऐसी भी आती है जब स्मरण करनेवाला और स्मरण करनेका विषय अलग नहीं रहता। उस समय स्मरणक्रियाका बोध होना भी दोष ही है। संक्षेपसे कहें तो यही कहना होगा कि परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ देखा-सुना, सोचा-समझा जाता है

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वह सब दोष है और एक-न-एक दिन उस सबका परित्याग करना ही होगा।

अब प्रश्न यह है कि दोषकी आत्यन्तिक निवृत्ति कैसे हो, इसका ठीक-ठीक उत्तर तो यही है कि आत्मतत्त्वका अपरोक्ष साक्षात्कार हुए बिना जिसमें कि स्वसत्ताके अतिरिक्त और दूसरी कोई सत्ता ही नहीं रहती अथवा उस भगवत्प्रेम बिना, जिसमें केवल प्रेम-ही-प्रेम, भगवान्-ही-भगवान् रहते हैं, दोषोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो ही नहीं सकती। बीजरूपसे, संस्काररूपसे अथवा कारणरूपसे वे कहीं-न-कहीं छिपे ही रहेंगे। इसलिए उस तत्त्वज्ञान अथवा भगवत्प्रेमको प्राप्त करनेकी ही प्राणपणसे चेष्टा करनी चाहिए, जिससे कि सम्पूर्ण दोषोंकी सर्वदाके लिए आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाय। जबतक वह स्थिति प्राप्त नहीं होती तबतक यथाशक्ति दोषोंके संकल्प और विचारोंको दबाते हुए उनके दोषत्वका चिन्तन करते हुए, सतोंके बतलाये हुए पवित्र कर्म जप-तप आदि और पवित्र भावना, सर्वभूतहित, भगवत्स्मरण आदि करते रहना चाहिए। धीरे-धीरे वह दिन भी आयेगा जब सब दोष नष्ट हो जायेंगे।

जिज्ञासु : भगवन्! दोषोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति तो तत्त्वज्ञान अथवा परम प्रेम प्राप्त होनेपर होगी, यह बात समझमें आ गयी; परन्तु उसका प्राप्त होना अपने वशकी बात नहीं है, भगवत्कृपासे ही हो सकता है। व्यवहारमें जो कई बार स्थूल पाप बन जाते हैं उनकी निवृत्ति कैसे हो? जैसे क्रोध ही है, तनिक-तनिक-सी बातपर आजाता है, इसे कैसे दबाया जाय?

महात्मा : भैया! सच्ची बात तो यही है कि बिना भगवत्कृपाके कुछ नहीं होता; परन्तु भगवत्कृपा अनुभव करनेके लिए भी तो अपनी ओरसे चेष्टा होनी चाहिए। यह चेष्टा भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उनकी कृपासे होती है। तुम क्रोधकी बात कहते हो तो सुनो, कुछ क्रोधकी ही चर्चा की जाय। पहले क्रोधका निदान जानना चाहिए। क्रोध क्यों होता है? जब हमारे मनमें किसी वस्तुकी कामना रहती है। किसी वस्तुका लालच रहता है तभी क्रोध होता है। काम और तृष्णा ये क्रोधके माँ-बाप हैं। सम्मान स्थिति, धन आदि वस्तुओंको पानेकी इच्छा हो और वे न मिलें कम मिलें तब क्रोध आता है, जो उनके मिलनेमें अड़चन डालता है उसपर। चाहे बाहरसे न जान पड़े; परन्तु सोचनेपर मालूम होगा कि बिना कामनाके क्रोध आता ही नहीं। जिसकी कामना जितनी शिथिल होगी उसे उतना ही कम क्रोध आयेगा और कामनाएँ होती हैं आत्माके अतिरिक्त, भगवान्के अतिरिक्त और वस्तु दीखनेसे, यह दीखना होता है अज्ञानसे। इस प्रकार अज्ञानसे काम और कामसे क्रोध होता है। जड़ मिट जाय तब तो शाखा-पल्लवकी कोई चर्चा ही न रहे; परन्तु जबतक जड़ नहीं मिटती तबतक व्यवहारमें क्रोध न आये इसके लिए कुछ नियम बनाने चाहिए।

१. ऐसी कोई इच्छा ही न की जाय जिसके भंग हो जानेपर क्रोध आनेकी सम्भावना हो।

२. जो होता है, भगवान्की इच्छा अथवा प्रारब्धसे होता है, भगवान्की इच्छा सर्वथा मंगलमयी है, प्रारब्धके अनुसार कर्मोंका फल भोगना अनिवार्य है, ऐसी भावना करके सांसारिक हर्ष-विषादके निमित्तोंसे प्रभावित न होना।

३. क्रोधका निमित्त आनेपर मौन लेकर राम-राम जपने लगना या वहाँसे हटकर कीर्तन करने लगना।

४. मुँह, हाथ, पैर, आँख धोकर थोड़ा ठंढा जल पी लेना, कुल्ले करना।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

५. किसी दूसरे काममें लग जाना।

६. क्रोध आ जानेपर यथाशक्ति उसे दबा लेने और प्रकट न होने देनेकी चेष्टा तथा प्रकट हो जानेपर हार्दिक पश्चात्ताप।

७. क्रोधके दोषोंका चिन्तन—'क्रोध आगके समान है, पहले जहाँ पैदा होता है उसीको जलाता है, पीछे दूसरेको स्पर्श करता है' इत्यादि।

८. क्रोध आनेपर प्रायश्चित्त करना। उपवास, नित्यकी अपेक्षा दस-पाँच मालाओंका अधिक जप। किसी दूरके देवालयमें पैदल जाकर भगवान्‌का दर्शन इत्यादि परिस्थितिके अनुसार।

९. प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही भगवान्‌के आश्रयसे यह संकल्प करना कि आज मैं अपने सामने आनेवालोंमें भगवान्‌का दर्शन करूँगा और चाहे जैसी परिस्थिति आजाय क्रोध नहीं करूँगा।

१०. एकान्तमें आर्तस्वरसे, सच्चे हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करना कि हे प्रभो! मुझे क्रोधसे बचाओ।

११. जिसपर क्रोध आजाय, उसके सामने बड़ी नम्रतासे, सचाईके साथ क्षमा माँगना।

१२. कम-से-कम प्रतिदिन दस मिनट इस बातका चिन्तन करना कि सबके रूपमें भगवान् ही प्रकट हैं, सबके हृदयमें भगवान् ही विराजमान हैं। इस प्रकारकी भावनासे समत्वकी वृद्धि होगी, भगवान्‌का ध्यान होने लगेगा, राग-द्वेष कम हो जायेंगे और किसीपर सहज ही क्रोध नहीं आयेगा।

जिज्ञासु : भगवन्! भगवान्‌का ध्यान ठीक-ठीक नहीं लगता। वृत्तियाँ इधर-उधर संसारमें भटकने लगती हैं। ऐसा मालूम होता है कि उन्हें भगवान्‌में कुछ रस नहीं आता, क्या करूँ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

महात्मा : बहुत जन्मोंसे और इस जन्ममें भी संसार
वस्तुओंमें प्रियबुद्धि हो रही है। अनेकों वस्तुओंको रमणी
समझ चुके हो और अब भी समझते हो, इसीसे उनकी ओ
वृत्तियाँ खिंच जाती हैं। कई बार तो ऐसा मालूम होता है
मन यों ही ऊटपटांग भटकता है; परन्तु ऐसी बात नहीं है
जन्म-जन्मकी आसक्ति उसके साथ लगी हुई है, वह न जा
किस जन्मके सम्बन्धीको ढूँढ़ता है और उसके पास जाता है
इसलिए भगवान्‌का ध्यान चाहनेवालोंको जगत्‌की वस्तुओं
विरक्त होना चाहिए। ऐसा अनुभव होना चाहिए कि
संसार एक महासमुद्र है, इसमें विषयोंका जल भरा हुआ है
यह प्राणी हमें खा जानेवाले बड़े-बड़े मगर, सूँस आदि हैं औ
मैं इस भयंकर जलमें डूब रहा हूँ। तैरना न जाननेवाले
आदमी जैसे जलमें डूबने लगे, घबड़ा जाय, निकलनेके लि
व्याकुल हो उठे, हाथ-पैर पीटने लगे, वैसी ही दशा जब
सागरमें डूबनेवाले प्राणीके जीवनमें भी आजाय, वह छटपटा
लगे इससे त्राण पानेके लिए, तब इस संसारसागरकी धार
बहती हुई किसी वस्तुके प्रति उसका राग नहीं होता। कई दिनों
भूखा सिंह जितने उत्साह और शक्तिके साथ अपने सामने
शिकारपर टूट पड़ता है उतने ही उत्साह, साहस और शक्ति
साथ वह प्राणी भगवान्‌के ध्यानका रस लेनेके लिए टूट पड़
है, दूसरी ओर उसकी आँखें जाती ही नहीं। वास्तवमें त
सच्चा ध्यान होता है। जबतक हमारे हृदयमें इन वस्तुओं
अच्छी होनेकी धारणा बँधी हुई है, तबतक हमारा मन पू
रूपसे भगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन नहीं हो सकता। तुम जगत्
दुःखरूप क्षणभंगुर और असत्य समझ लो। इनमें जो
प्रियता, रमणीयता प्रतीत होती है, उसे नष्ट कर डालो,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

केवल भगवानके चिन्तनका ही रसास्वादन करनेके लिए अन्तर्मुख हो जाओ। तुम्हारे मनका भटकना बन्द हो जायेगा, ध्यान लगेगा।

जिज्ञासु : भगवन्! ध्यान करनेके समय तो भगवान्का चिन्तन करना ही चाहिए; परंतु सर्वदा ध्यान ही तो नहीं होता। व्यवहारके समय इस जगत्पर किस प्रकार दृष्टि डाली जाय?

महात्मा : भैया! तुमने कहा कि ध्यान सर्वदा नहीं हो सकता—यह कहना ठीक नहीं है। ध्यान सर्वदा हो सकता है और ऐसा हो सकता है कि उसमें 'सर्वदा'का ही लोप हो जाय; परन्तु यदि व्यवहारमें जाना ही पड़े तो भगवान्को साथ लेकर ही जाना चाहिए। किसीसे बात करनी हो तो इतनी कोमलतासे करो मानो भगवान्से ही बात कर रहे हो। तुम अपनी युक्तियों और वक्तृत्वकलाकी ओर दृष्टि मत रक्खो। यह भी मत देखो कि तुम्हारी बातका उसपर क्या असर पड़ रहा है; परन्तु यह अवश्य देखते रहो कि तुम भगवान्के कितने निकट होकर बोल रहे हो। तुम्हारी बातोंकी सुन्दरता मधुर होनेमें या दूसरोंको मोहित करनेमें नहीं है। उसकी सच्ची सुन्दरता है भगवान्का स्पर्श करते हुए निकलनेमें। मैं साक्षात् भगवान्से ही बात कर रहा हूँ, अथवा जिससे बात कर रहा हूँ उसके हृदयमें भगवान् हैं—यह बात ध्यानमें रहनी चाहिए। एकान्तमें भी भगवान्की मधुर सन्निधिका, उनके कोमल करोंके सुखमय स्पर्शका अनुभव करते रहना चाहिए।

व्यवहारकी एक दृष्टि और है। क्या तुमने कभी कोई चित्रशाला देखी है? एक चित्रशालामें अनेकों रंग, रूप और रसके चित्र टँगे रहते हैं। कोई अत्यन्त करुणाजनक होता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

तो कोई अत्यन्त हास्यजनक, कहीं आमूल-चूल शृङ्गार र
है तो कहीं बीभत्स, कहीं शान्त तो कहीं रौद्र और भयान
दर्शक सब चित्रोंको देखता है, सबके भाव ग्रहण करता है,
रसोंसे मनोरञ्जन करता है; परन्तु उन चित्रोंको चित्र
समझता है। एक क्षण उन्हें देखकर हँस सकता है या रो सक
है; परन्तु वह हँसना और रोना दोनों ही उसके मनोरञ्
हैं और रसका अनुभव करानेवाले हैं। वह इस चित्रशाला
निकलता है तो किसी चित्रको लेकर नहीं निकलता, चि
कारकी प्रशंसा करता निकल आता है।

यह संसार भी एक चित्रशाला है। इसमें अनेकों प्रका
दृश्य आते हैं—कोई हँसनेके, कोई रोनेके; परन्तु यह हँस
और रोना दोनों ही किसीको सुखी करनेके लिए ही
बुद्धिमान् दर्शक इन्हें देखकर प्रसन्न होता है, किसी भा
आसक्त नहीं होता और इस चित्रशालाको देखकर चित्र
रचयिता भगवान्का स्मरण करके आनन्दविभोर होता है
करुणा, बीभत्स, रौद्र, शृङ्गार सबमें एक-सा रसका अनु
करता है। व्यवहारमें सभी वस्तुओंको भगवान्की बनायी
भगवान्से सम्बन्धित और भगवान्की कला समझकर प्रस
होना चाहिए और सभी परिस्थितियोंमें उनका स्मरण क
हुए आनन्दमें ही मग्न रहना चाहिए।

जिज्ञासु : भगवन्! व्यवहारमें न चाहनेपर भी चि
आजाती है और जब चिन्ता आजाती है तब सब कुछ
जाता है तथा पहले कुछ भजन होता भी रहे तो बन्द हो
है, यह चिन्ता कैसे मिटे?

महात्मा : चिन्ता किस बातकी है? शरीर और शरी
सम्बन्धियोंको लेकर चिन्ताएँ आती हैं। अमुक वस्तु

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चाहिए या मेरे कुटुम्बीको चाहिए। वह कैसे मिले, कहाँ मिले? लौकिक चिन्ताका यही स्वरूप है। पारलौकिक चिन्ता अन्तः-करणको लेकर होती है। सार बात यह है कि अपने पास कुछ संग्रह होता है तो उसकी रक्षाकी चिन्ता होती है। थोड़ा हो तो और करनेकी चिंन्ता होती है। चिन्ता छूटनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि अपने पास आन्तरिक और बाह्य किसी प्रकारका भी संग्रह न हो। वास्तवमें संग्रह आन्तरिक ही होता है, बाह्य नहीं। मनसे जिस वस्तुको पकड़ लिया कि 'यह मेरी है' वही बाह्य संग्रहके रूपमें बन गयी। मनसे किसी वस्तुको अपनी न माने, चाहे शरीरके आसपास बहुत-सी वस्तुएँ रक्खी हों। शरीरको भी अपना न माने। और तो क्या, मनको भी अपना न माने एवं आत्मा भी जिसका अंश है, जिसका अपना है, जो है उसको वही रहने दें, उसमें भी अहंकृतिका भाव न आने दें। वास्तवमें यह शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा सब-के-सब भगवान्के हैं। जो इनके सम्बन्धी प्रतीत होते हैं, वे भी भगवान्के ही हैं, फिर इनके या उनके साथ अपनापन क्यों रक्खा जाय? यह ममता ही चिन्ताकी जननी है। ममता नष्ट होनेपर चिन्ता भी नष्ट हो जाती है।

क्या तुम्हें भगवान्पर विश्वास नहीं है? उनके देखते-देखते उनके अन्दर जब कि सब कुछ वही हैं, कहीं कुछ अन्याय हो सकता है? तुम्हारी कोई हानि हो सकती है? तुम्हारा कोई कुछ चुरा सकता है? सोलहों आने झूठी बात है। अभी भग-वान्पर तुम्हारा विश्वास ही नहीं हुआ। वे जो कुछ करें उसीमें संतुष्ट रहना चाहिए। योगक्षेमकी चिन्ता न करके निरन्तर उन्हींका चिन्तन करना चाहिए। क्या हम शरीर और शरीरके सम्बन्धियोंको इतना महत्त्व देते हैं कि उनके लिए भगवान्का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

चिन्तन छोड़ दिया जाय ? यदि ऐसी बात है तो समझना चाहिए कि अभी हमारी साधनाका प्रारम्भ ही नहीं हुआ है। साधना प्रारम्भ होते ही भगवत्स्मरण और भजनमें रस आने लगता है और उसके सामने त्रिलोकीका राज्य भी तुच्छ हो जाता है। फिर चिन्ता किस बातकी, निरन्तर भजन करते चलो।

जिज्ञासु : भगवन् ! भगवान्पर विश्वास होता है; परन्तु कभी-कभी चेष्टा करके रोकनेपर भी चिन्ताएँ आ घेरती हैं, उन्हें कैसे मिटाया ?

महात्मा : बस, भगवान्की प्रार्थना करो। सच्चे हृदयसे उन्हें अपने आपको सौंप दो, उनकी शरण हो जाओ। वे जो करें होने दो, जो-जो करायें करो। अपनी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ उनके चरणोंपर चढ़ा दो। देखो तो, तुम्हारे सामने अनेकों वेश धारण करके वे आते हैं, तुम्हें अपनाना चाहते हैं और तुम उनकी ओरसे मुँह मोड़कर विषयोंकी ओर लगे हुए हो। देखो, कितना सुन्दर मुख है, कितनी मधुर मुस्कान है, कैसी प्रेमभरी चितवन है, कितना कोमल स्वभाव है ? तुमपर दया करके अपनी लम्बी-लम्बी भुजाएँ फैलाकर तुम्हें अपने हृदयसे लगा लेना चाहते हैं। त्रिलोकीके एकमात्र स्वामी तुम्हारी बराबरी परम हितैषी मित्र होकर निरन्तर तुम्हारे साथ रहना चाहते हैं और तुम उन्हें रखना नहीं चाहते ! यह तुम्हारा कितना दुर्भाग्य है ! अरे भाई ! यह जीवन व्यर्थ जा रहा है, उनके चरणोंपर सिर रखकर इसे सफल करो और अपना सारा भार उनपर डाल दो; डालनेकी आवश्यकता नहीं, जीवन और भारको भी याद करनेकी आवश्यकता नहीं, तुम केवल कह दो, सच्चे हृदयसे कह दो कि 'मैं तुम्हारा हूँ,' वे तुम्हें अपनाये हुए

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हैं, कहते ही हृदयसे अपना लेंगे। उनका मधुर स्पर्श पाकर कृतकृत्य हो जाओगे।

सच्चा समर्पण होनेपर चिन्ताएँ नहीं आतीं। यदि आती हैं तो समर्पणमें कुछ कमी है अथवा भगवान्‌की ओरसे वे चिन्ताएँ आती हैं और समर्पित भक्तके मनमें वे चिन्ताके समान नहीं मालूम होतीं, उन्हें भी वह भगवत्स्वरूप ही देखता है। यदि चिन्ताएँ आती हैं तो पुनः-पुनः भगवान्‌को समर्पित करना चाहिए। उनसे कहना चाहिए कि 'हे प्रभो! इस सारे जगत्‌के सञ्चालक आप हैं, आप लीला-लीलामें ही इसका सञ्चालन करते हैं और ये मेरे प्राण आदि जो कुछ हैं—सब संसारके ही अन्तर्गत हैं। मेरे इन कल-पुर्जोंको और मुझे सञ्चालित करनेमें आपको कोई विशेष परिश्रम तो करना नहीं पड़ता और वास्तवमें तो आप ही इन्हें चलाते हैं। ऐसी स्थितिमें मेरे मनमें जो यह अहंकार हो जाता है कि मैं अपना जिम्मेवार हूँ, इसको नष्ट कर दीजिये और हर तरहसे मुझे अपना लीजिये।' इस प्रकार सच्चे हृदयसे प्रार्थना करते-करते एक-न-एक दिन वे अपना ही लेंगे, फिर चिन्ताएँ नहीं होंगी। समर्पण जितना ऊँचा और सच्चा होता है चिन्ताएँ उतनी ही कम होती हैं।

जिज्ञासु : महाराज! समर्पण तो एक ही बार होता है, फिर बार-बार समर्पणके संकल्प दुहरानेकी क्या आवश्यकता?

महात्मा : बात तो सच्ची है, समर्पण केवल एक बार होता है; परन्तु समर्पण उस वस्तुका किया जाता है जो अपनी होती है, अपने अधीन होती है और जिसके बारेमें हम जानते हैं कि इसके समर्पणमें कोई अड़चन नहीं है; परन्तु यहाँ तो जो समर्पण करना है वह हमारे अधीन नहीं है। हमारी इन्द्रियाँ उच्छृङ्खल हैं, हमारा मन मनमानी करता रहता है, हमारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

बुद्धि अनेकमुखी है, और हम क्या हैं इस बातका पता नहीं फिर इनका समर्पण कैसे किया जा सकता है ? यह हाथमें तो है नहीं कि जब चाहा दूसरेको दे दिया। जो वार समर्पण होता है, सच्चा समर्पण होता है। वह इन वश में कर लेनेके बाद होता है अथवा लेनेवाला बलात्कार इन्हें ले ले तब होता है। जबतक ये हमारे अधीन नहीं और हम समर्पण करना चाहते हैं तबतक प्रतिदिन नहीं प्रतिक्षण इन्हें भगवान्‌को समर्पित करते रहना चाहिए। इनके प्रति ममता हो, अहंकार हो, तभी सोचना चाहिए कि ये तो प्रभुके हैं, इन्हें मैं प्रभुको समर्पित कर चुका हूँ, फिर मेरे हैं, ऐसा भाव क्यों हुआ ? तुरन्त उस भावको मिटा देना चाहिए। हम संसारमें सच्चा बननेका दावा करते हैं, अपनेको सत्यवादी कहलाते हैं; परन्तु भगवान्‌के सामने रोज बोलते हैं कि 'प्रभु, हम तुम्हारे हैं, हमारी सब वस्तुएँ तुम्हारी हैं।' कितनी लज्जा और दुःखकी बात है ? जब अपनेपनका भाव उठे तभी अन्तस्तलमें घोर दुःख होना चाहिए और तुरन्त सब कुछ भगवान्‌के चरणोंपर चढ़ा देना चाहिए !

मान लो, तुम्हारे पास एक बदमाश घोड़ा है, उसे तुमने किसीको दान कर दिया या बेच दिया। वह घोड़ा अपने नये मालिकके घर नहीं रहता, बार-बार तुम्हारे पास भाग आता है। अब तुम्हारा कर्तव्य क्या है ? तुम उसे अपना मान कर उसपर सवारी करोगे या आते ही उसके पास पहुँचा दोगे ? तुम्हारी साधुता इसीमें है कि उस घोड़ेके साथ तनिक भी ममताका होना बेईमानी समझकर उसे तुरन्त उसके नये मालिकके पास पहुँचा दो। वह जबतक तुम्हारे पास आता है, अपने नये मालिकसे हिलमिल न जाय, तबतक बार-बार उसे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पास पहुँचाते रहो। यह मन भी बदमाश घोड़ेसे कम नहीं है। समर्पण कर दो इसको भगवान्‌के चरणकमलोंपर। इसे और कहीं जाने ही मत दो। भगवान्‌के चरण भी इतने रसीले हैं कि एक बार वहाँका रस जिस मनको प्राप्त हो जाता है वह फिर वहाँसे हटता ही नहीं!

जिज्ञासु : भगवन्! यह बात तो समझमें आती है कि इस बातका निरन्तर स्मरण रहना चाहिए कि मैं और यह सब संसार भगवान्‌का है; परन्तु यह बात निरन्तर स्मरण रहती नहीं, भूल जाया करती है। कैसे स्मरण रक्खा जाय?

महात्मा : निरन्तर स्मरण रखना चाहिए, यह बात हृदयकी गहराईमें बैठ जाय तो स्मरणके अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगेगा। वास्तवमें तो लोगोंको स्मरणकी सच्ची आवश्यकताका अनुभव ही कम होता है। क्योंकि जिन सांसारिक पदार्थोंकी आवश्यकताका अत्यन्त अनुभव होता है उनके लिए हम प्राणपणसे चेष्टा करते हैं न? भूख लगनेपर अन्नके लिए क्या-क्या नहीं करते? प्यास लगनेपर पानीके लिए किसका दरवाजा नहीं खटखटाते? इसी प्रकार स्मरणकी आवश्यकता होनेपर हम स्मरणके लिए भी निरन्तर लगे रहते हैं।

संसारमें जितने साधन हैं जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थयात्रा, सत्संग, अनेकों प्रकारके योग-यज्ञ आदि सब-के-सब भगवान्‌के स्मरणके लिए हैं। भगवान्‌का दर्शन भी भगवान्‌के स्मरणके लिए है। और तो क्या कैवल्य मोक्ष और जगत्‌के मिथ्यात्वका वर्णन भी इसीलिए है कि वृत्तियां असत्‌की ओरसे सर्वथा हट जायँ और निरन्तर भगवान्‌के स्मरणमें लगी रहें। भगवान्‌का दर्शन हो जानेपर जगत्‌की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

निरन्तर स्मरण होता रहता है। स्मरणके लिए भक्ति है। वास्तवमें भगवान्‌का स्मरण ही स्मरण है।

देश, काल, पात्र, शक्ति, आयु, अवस्था आदिपर विचार करके शास्त्रों और सन्तोंने एक मतसे यह निर्णय दिया है कि वर्तमान समयमें नाम-जपसे बढ़कर भगवत्स्मरणके लिए और कोई दूसरा साधन नहीं है। नामका उच्चारण हो, नामका गान हो, नामका श्रवण हो और नामका अध्ययन हो। नामका ही ध्यान और नामका ही ज्ञान हो। नाम स्वयं भगवान् है, नाम स्मरणरूप है और नाम ही परम पुरुषार्थ है। आओ, हम दोनों भी सच्चे हृदयसे भगवान्‌का नाम गायें। बातें बहुत हो चुकीं, सबका सार यही है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यही सब दोषोंका मिटना है, यही अन्तःकरणकी शुद्धि है और वास्तवमें यही भगवद्भजन है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता—मन स्थिर कैसे हो ?

उत्तरदाता—स्थिरताके सम्बन्धमें आपकी क्या धारणा है ?

प्र०—लक्ष्यमें मनकी एकतानता ही स्थिरता है।

उ०—लक्ष्य क्या है ? स्थिर या अस्थिर।

प्र०—आप क्या कहना चाहते हैं, स्पष्ट कीजिये।

उ०—अभिप्राय यह है कि यदि आपका लक्ष्य स्थिर होगा, तो उसमें मन भी स्थिर हो जायगा। यदि आपका लक्ष्य ही अस्थिर हुआ तो मनकी स्थिरता असम्भव है।

प्र०—तब क्या आप कहना चाहते हैं कि जागतिक लक्ष्य होनेपर मन स्थिर हो ही नहीं सकता ?

उ०—स्थिर हो सकता है, परन्तु कुछ क्षणोंके लिए। इसका कारण यह है कि स्थूल वस्तुओंकी आयु मनसे कम है; मनके विशाल जीवनमें स्थूल वस्तुओंका अनेकों बार उदय और अस्त (विलय) होता है, इसलिए मनको सच्ची तृप्ति नहीं मिल सकती, उसे हटना ही पड़ेगा। यदि लक्ष्य स्थिर हुआ अर्थात् अविनाशी परमात्मा ही मनका लक्ष्य हुआ तब मन स्थिर हो सकता है। रसकी उत्पत्ति स्थायीभावसे होती है। और स्थायी-भाव अस्थायी वस्तुओंमें हो नहीं सकता।

प्र०—परमात्मामें मन स्थिर कैसे हो ?

उ०—मनको स्थिर करनेके लिए पहले मनका स्वरूप समझ लेना चाहिए। मनमें पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं, यों भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कह सकते हैं कि पाँच प्रकारकी वृत्तियोंका पुञ्ज ही मन है। वे वृत्तियाँ हैं प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। इनके अतिरिक्त मनकी और कोई स्थिति नहीं होती। ये वृत्तियाँ दो प्रकारकी होती हैं—क्लिष्ट और अक्लिष्ट, अर्थात् धर्मानुकूल और धर्मप्रतिकूल। धर्मप्रतिकूल वृत्तियोंकी स्थिरता तो असम्भव ही है; क्योंकि वहाँ चिन्ता, भय, शोक, मोह, उद्वेग, और अशान्ति आदि दोष सर्वदा रहते हैं। धर्मानुकूल वृत्तियोंके द्वारा स्थिरता सम्पन्न होती है।

प्र०—धर्मानुकूल वृत्तियोंके द्वारा स्थिरता कैसे होती है ?

उ०—चञ्चलता क्यों होती है यह समझ लेनेपर स्थिरताका हेतु समझमें आता है। चञ्चलता होती है कामनाओंके कारण धर्मानुकूल वृत्तिसे कामनाएँ नियन्त्रित हो जाती हैं और मन स्थिर होने लगता है। जो जितना ही निष्काम है, उसका मन उतना ही स्थिर है।

प्र०—स्थिरता एक ही प्रकारकी है या अनेक प्रकारकी ?

उ०—यद्यपि वास्तविक स्थिरता एक ही प्रकारकी है तथापि दृष्टिभेदसे उसके अनेकों प्रकार हो जाते हैं। योगी लोग सब प्रकारकी वृत्तियोंको रोककर एक निरोधाकार वृत्तिकी स्थापना करना चाहते हैं। इसके लिए वे हठयोग, लययोग आदिके साधन भी करते हैं। परन्तु निरोधाकार वृत्ति भी एक वृत्ति ही है, इसलिए उस समय भी मन किसी-न-किसी सूत्रमें रहता ही है। वह समाधि फिर टूटती है और व्यवहारमें उतरनेपर उनके मनमें चञ्चलता आ जाती है। भक्तलोग किसी भी वृत्तिका निरोध नहीं करते, वे स्मृतिवृत्तिको प्रधानता देते हैं और समस्त वृत्तियोंको स्मृतिके अनुकूल बना लेते हैं। उनके प्रमाण स्मरणके लिए हैं, उनकी निद्रा स्मरणके लिए है और उनके समस्त

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

संकल्प-विकल्प स्मरणके लिए हैं। समस्त वृत्तियोंका उद्देश्य एक हो जानेके कारण वे मनकी चञ्चलतामें भी स्थिरताका अनुभव करते हैं और उनकी स्मृति अखण्डरूपसे चलती रहती है। ज्ञानी लोग स्वरूप-दृष्टिसे वृत्तियों और उनके कार्योंसे तटस्थ हो जाते हैं, उन्हें शरीर और मनकी कोई भी स्थिति अपेक्षित नहीं होती, वे स्वस्वरूपमें सर्वदा स्थिर ही रहते हैं। इनकी स्वरूपसमाधि सहज समाधि होती है और लोगोंकी दृष्टिमें उनके शरीर और मनके चञ्चल होनेपर भी वे स्थिर ही रहते हैं। योगीकी स्थिरता एकवृत्तिक है, भक्तकी स्थिरता अनेकवृत्तिक है और ज्ञानीकी स्थिरता निर्वृत्तिक है। इनमेंसे जिस स्थिरताकी अपेक्षा होती है उनके लिए पृथक्-पृथक् साधन करने पड़ते हैं। इस प्रकार स्थिरताके एकत्वमें भी अनेकत्व है और अपनी-अपनी दृष्टिसे सबको सब सर्वोत्तम मालूम पड़ती है।

प्र०—ये सब प्रकारकी स्थिरताएँ क्रियासाध्य ही हैं न ?

उ०—क्रिया दो प्रकारकी होती हैं, शारीरिक और मानसिक। मानसिक क्रियासे ही स्थिरता होती है, शारीरिक क्रिया तो मानसिक क्रियाकी सहायक मात्र है। हठयोग आदिमें शारीरिक क्रियाकी प्रधानता होती है, ज्ञानमें शारीरिक और मानसिक निष्क्रियता ही साधन हुआ करती है। यह निष्क्रियता भी मानसिक क्रियासे ही सम्पन्न होती है। तात्पर्य यह कि योगी और भक्तोंको अपेक्षित स्थिरता क्रमशः शारीरिक और मानसिक क्रियासे प्राप्त हो जाती है, परन्तु ज्ञानीकी स्वरूपभूत स्थिरता निष्क्रियतासे ही होती है।

प्र०—क्या यह सब योग है ?

उ०—'योग' शब्दका अर्थ है उपाय। कहीं-कहीं उपेय वस्तुको भी 'योग' कहा गया है। भगवत्प्राप्तिके लिए जो उपाय

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

किये जाते हैं वे सब योग हैं, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि।

प्र०—गीतामें योगका कौन-सा स्वरूप स्वीकार किया गया है ?

गीतामें वस्तुओंको दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया है-एक तो अनित्य, जड़ और दुःखरूप संसार और दूसरा नित्य, चेतन और एकरस आनन्दस्वरूप परमात्मा। दोनोंके बीचमें मन है। मन जगत्की वस्तुओंके साथ न सटे, परमात्माके साथ सटा रहे—यही योग, यही उपाय गीतामें स्वीकृत हुआ है। जो परमात्माको निर्गुण मानते हैं वे इसको ज्ञानयोग कहते हैं; जो सगुण मानते हैं वे भक्तियोग या कर्मयोग। केवल दृष्टिका ही अन्तर है, वास्तवमें एक ही योग है।

प्र०—ध्यान अथवा उपासनाके समय तो परमात्माका स्मरण रक्खा जा सकता है, कर्म करते समय भूल जाता है। क्या कर्म करते समय भी स्मरण सम्भव है ?

उ०—कर्म करते समय दूसरी वस्तुओंका स्मरण तो होता ही है। अर्थात् शरीर एक कर्म कर रहा है, तो मन दूसरी बात सोच रहा है, यह स्वानुभवसिद्ध है; फिर परमात्माका स्मरण होनेमें क्या सन्देह है ?

प्र०—मैं जज हूँ, मेरे सामने पेचीदे मुकदमे आते हैं, पूरे मनसे उन्हें देखना पड़ता है, तनिक भी असावधानी हो जाय तो किसीका अनिष्ट हो सकता है। ऐसी स्थितिमें परमात्माका स्मरण रखनेसे कैसे काम चलेगा ?

उ०—आपके कर्मका उद्देश्य क्या है ?

प्र०—अपने कर्तव्यका पालन।

उ०—केवल इतनी ही दृष्टि है, तो स्मरण गौण ही होगा;

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

बीच-बीचमें विस्मृति भी होती रहेगी। कर्मके प्रारम्भमें, अन्तमें और बीच-बीचमें भी स्मरण हुआ करेगा; परन्तु निरन्तर स्मरण रहना असम्भव-सा ही होगा।

प्र०—तब क्या कर्मकलामें ऐसी कोई स्थिति ही नहीं है जिसमें निरन्तर स्मरण हो ?

उ०—है; जहाँ मन और शरीरकी क्रियाका उद्देश्य एक होता है, वहाँ दोनोंकी एकता होती है। मन जिस परमात्माका स्मरण कर रहा है; वही परमात्मा लीलासे वादी, प्रतिवादी, वकील और कर्मचारियोंके रूपमें प्रकट हुआ है। मैं भी उसकी लीलाका एक पात्र हूँ। इस प्रकार हृदयसे सबके अन्दर परमात्मा और सब क्रियाओंमें लीलाका दर्शन करता हुआ जो अपना अभिनय पूरा करता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें परमात्माकी अखण्ड स्मृति रख सकता है। क्रियामें असावधानी तब होती है जब शरीर मनकी विपरीत दिशामें चलता है। जो मन सोच रहा है, वह शरीर कर रहा है। फिर त्रुटि या विस्मृतिकी सम्भावना ही कहाँ है ?

प्र०—यह सब भगवान्‌की लीला है, यह भाव कैसे स्थिर हो ?

उ०—भगवत्कृपाके अनुभवसे। चराचर जगत् सहित मैं भगवान्‌के अनन्त कृपासमुद्रमें डूब-उतरा रहा हूँ; भगवान्‌की कृपा ही घनीभूत होकर जगत्‌के रूपमें प्रकट हुई है। अणु-अणु, परमाणु-परमाणुसे कृपाकी ज्योति छिटक रही है। ऐसी कोई परिस्थिति नहीं जो भगवान्‌का कृपा-प्रसाद न हो; जन्म-मृत्यु, सृष्टि-प्रलय, संयोग-वियोग, सब-के-सब कृपाके ही विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार कृपाका अनुभव हो जानेपर सब लीला ही है, यह भाव दृढ़ हो जाता है।

लीलानुभूति आत्मविलास शब्दका पर्याय है; भगवान्‌की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

लीला अर्थात् आत्मविलास। मनके निःसंकल्प होनेपर इसका अनुभव होता है, निश्चिन्त होनेपर निस्संकल्पता सिद्ध होती है। चिन्ता दो प्रकारकी होती है, एक तो स्थूल विषयोंकी चिन्ता और दूसरी आत्माकी। विषयी लोगोंको ऐन्द्रियक मात्रा-स्पर्शकी चिन्ता रहा करती है, जिज्ञासुओंको आत्मविषयक चिन्ता रहा करती है। जिससे निश्चय कर लिया है कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध-अविनाशी-एकरस-सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसको आत्म-विषयक चिन्ता नहीं होती। शारीरिक परिस्थितियोंकी चिन्ता केवल मोहवश होती है। जगत्में जिस कर्म-बन्धनके कारण न चाहनेपर भी दुःखकी प्राप्ति होती है, उसीके द्वारा सुखकी प्राप्ति होना भी निश्चित है। अर्थात् व्यावहारिक सुख-दुःख प्रारब्धाधीन हैं। फिर उनके लिए चिन्ता ही क्यों? मनकी इस निश्चिन्त दशामें अथवा समस्त कामनाओंके शान्त हो जाने-पर अन्तःकरणमें ज्ञानस्वरूप आत्माका आविर्भाव हो जाता है और फिर सारा जगत् आत्मविलास अथवा प्रेमस्वरूप भग-वान्‌की लीलाके रूपमें दीखने लगता है। आत्मा-आत्मा ही है, उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन किया नहीं जा सकता। प्राकृत जगत्‌के रूपमें प्रतीत होनेवाला जगत् जगत् ही है, उसमें भी किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं किया जा सकता, यह निश्चित निर्णय हो जानेपर भाव-परिवर्तनमें विलम्ब नहीं होता। परिवर्तन केवल भावका ही होता है, वस्तुका नहीं। भाव-परिवर्तन ज्ञानसे होता है। जिसके सम्बन्धमें हमारा जैसा ज्ञान होता है, उसके विषयमें वैसा ही भाव भी होता है। ज्ञानके विपरीत भाव स्थिर नहीं होता और परिवर्तन केवल भावमें ही करना है। यह सब विलास या लीला है, यह ज्ञान हो जानेपर भावकी दृढ़ता और स्मृति अविचल हो जाती है।

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लीलाकी अनुभूतिमें अभ्यास भी साधन है। बार-बार इस भावकी आवृत्ति की जाय कि यह सब लीला है, तो यह भाव स्थिर हो सकता है। बिना जाने भी सत्यके आधारपर किया जानेवाला भाव सत्य ही होता है। असत्यके आधारपर किया जानेवाला भाव अदृढ़, अस्थिर एवं पतनका हेतु होता है यह बात सत्य है, चाहे हम जानें कि यह सब लीलाविलास है। इस बातका अभ्यास एक-न-एक दिन सत्यको प्रकट कर देगा, तब हम जानेंगे कि हम जो भावना कर रहे थे वह केवल भावना ही नहीं थी, सत्य था। फिर तो एक क्षणके लिए भी लीलाभावकी विस्मृति नहीं होगी।

प्र०—क्या स्मृतिकी निरन्तरता कर्ममें बाधक नहीं होती?

उ०—यह प्रश्न तो कर्ममें आसक्तिका द्योतक है। जिसका स्मृतिसे प्रेम है वह तो उन समस्त कर्मोंको छोड़ देगा जो स्मृतिके बाधक हैं। जो स्मृतिको कर्ममें बाधा समझता है वह स्मृतिकी अपेक्षा कर्मको अधिक महत्त्व देता है। उसकी दृष्टि मानसिक नहीं, शारीरिक है। वह निरन्तर स्मृति नहीं रख सकता। जिसका स्मरणसे इतना प्रेम है कि वह उसके लिए सब कुछ छोड़ सकता है; वही निरन्तर प्रेम रख सकता है।

प्र०—भगवान्की स्मृतिमें ऐसा प्रगाढ़ प्रेम कैसे हो?

उ०—स्मृतिमें रसका अनुभव करनेसे।

प्र०—रसका अनुभव कैसे हो?

उ०—जिसकी स्मृति की जा रही है, उसके महत्त्वज्ञानसे।

प्र०—महत्त्वज्ञानका क्या स्वरूप है?

उ०—परमात्मा सर्वज्ञ है, वह हमारे हृदयकी समस्त इच्छाओंको जानता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, वह हमारी सब इच्छाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ है। परमात्मा परम दयालु

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

है, वह हमारी इच्छाओंको पूर्ण किये बिना रह नहीं सकता। परमात्मा हमारा परम सुहृद् है, हमारे प्रेम न करनेपर भी वह हमसे प्रेम करता है और हमें कभी नहीं छोड़ता। परमात्माके इस स्वभावपर जिसका विश्वास हो गया, वह उससे प्रेम किये बिना रह नहीं सकता।

जितने सद्गुण हो सकते हैं, वे सब तो परमात्मामें हैं ही। हम संसारकी जिन वस्तुओंको सुन्दर, मधुर एवं आकर्षक समझकर उन्हें चाहते हैं, उनसे प्रेम करते हें, उनके परम निधि भी परमात्मा ही हैं। उनकी मधुर मुरली, प्रेमभरी वाणी, सुखद स्पर्श, सुन्दरतम रूप, अनुपम रस और दिव्य गन्धके सामने जगत्के सब विषय अत्यन्त तुच्छ हैं। इसलिए भगवान्में ऐश्वर्यके साथ ही परम माधुर्य भी है। मन उसकी कल्पनासे ही उसकी ओर खिंच जाता है और प्रेम करने लगता है।

सम्बन्ध भी प्रेमका हेतु होता है, भगवान् ही हमारे गुरु, स्वामी, सखा, माँ-बाप, पुत्र और पति हैं। इस बातका जब भगवान् अथवा गुरुके द्वारा ज्ञान प्राप्त करा दिया जाता है और भाव दृढ़ हो जाता है, तब स्वयं प्रेम हो जाता है। प्रेमके विकासकी कुछ श्रेणियाँ भी होती हैं और उनका क्रम भी होता है। उन रसमयी स्थितियोंका वर्णन सुनने, करनेसे महत्त्वका ज्ञान हो जाता है। भगवान् अनन्त हैं, उनके गुण और लीलाएँ भी अनन्त हैं। जो जितना ही उनके विषयमें सोचता है उसे उतना ही अधिक महत्त्वका बोध होता है। सब प्रकारसे एकमात्र भगवान् ही महान् हैं यही महत्त्वज्ञानका स्वरूप है। जो महत्त्वज्ञान सम्पन्न हैं, उनके सङ्ग, सेवा, प्रेम आदिसे वह प्राप्त होता है।

प्र०—भगवान्के दर्शन बिना प्रेम कैसे हो सकता है?

उ०—मैं पूछ सकता हूँ कि प्रेम बिना दर्शन कैसे हो सकता

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है ? सच्ची बात तो यह है कि दर्शन केवल आँखोंसे ही नहीं होता, मनसे भी होता है। कानसे भगवद्गुण सुनते-सुनते, जीभसे उच्चारण करते-करते, शरीरसे भगवान्के लिए काम करते-करते मनमें भगवान्के सम्बन्धमें एक धारणा बँध जाती है और रूप भी दीखने लगता है। मनको वह ऐसा अच्छा लगता है कि वह उसपर निछावर हो जाता है और बिना देखे भी प्रेम करने लगता है। प्रेम हो जानेपर तो अपने प्रियतमके दर्शन हो ही जाते हैं और फिर प्रेम असीम रूपसे बढ़ जाता है। प्रेमका स्वरूप बढ़ना ही है, ऐसा बढ़ना जिसमें घटना नहीं है।

दूसरी बात यह है कि परमात्माको सब देखते हैं और उनसे सब मिलते हैं। जगत्में जो कुछ सुख, शान्ति मिलते हैं वे परमात्माके दर्शन और मिलनसे ही। ऐसा होनेपर भी जीव उन्हें पहचानता नहीं। यह कैसा आश्चर्य है कि हम जिसको पाना चाहते हैं वह हमारे साथ ही है; उसीसे हम उसके पानेका रास्ता पूछते हैं और वही विनोदवश बताता भी है, इधर-उधर भटकाता भी है। भटकनेके समय भी प्रेमपूर्ण हृदयसे हमारे साथ ही रहता है। इस प्रेमका, लीलाका रस वह इसी प्रकारसे ले रहा है। जब हमारा प्रेम सीमापर पहुँच जाता है और हम उसको देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते, तब वह अपनेको प्रकट कर देता है। हमारे हृदयमें केवल प्रेम होना चाहिए— दर्शनके लिए नहीं, प्रेमके लिए। इतना गम्भीर प्रेम जिसमें दर्शनकी अभिलाषा बह जाय! पहलेकी छटपटी और गम्भीरता दोनों ही प्रेम हैं और ये दोनों बिना दर्शनके भी हो सकते हैं।

प्र०—पहचान लेनेके बाद कैसी स्थिति होती है ?

उ०—जिसने पहचाना नहीं है, उसको यह बात नहीं समझायी जा सकती और जिसने पहचान लिया है उसको सम-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

झानेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। सच्ची बात तो यह है कि जो उसे पहचान लेता है, वह उससे इस प्रकार मिल जाता है कि 'मैं पहचानता हूँ' यह 'मैं पन' उसके अन्दर कभी आता ही नहीं। वह इतना मस्त हो जाता है कि फिर अपने पहचाननेका विज्ञापन करनेका उसे अवसर ही नहीं रहता। यह प्रश्न प्रायः शारीरिक स्थितिको लक्ष्यमें रखकर ही उठता है। जिज्ञासु कल्पना करता है कि परमात्माकी प्राप्ति होनेके पश्चात् शरीर अमुक स्थितिमें रहता है। यह शरीरसे आसक्तिका द्योतक है। समस्त शारीरिक स्थितियोंकी अपेक्षा करके, चाहे जो हो, कोई भी व्यक्ति चाहे जो कहे-सुने, उधर ध्यान न देकर सर्वथा परमात्माकी प्रसन्नतामें स्थित रहना, वैसे पुरुषका लक्षण है।

प्र०—पहचाननेका क्या लक्षण है ?

उ०—आत्मामें किसी प्रकारका परिवर्तन या संस्कार सम्भव है, इस भ्रान्तिको एवं शारीरिक स्थितियोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन हो सकता है, इस मोहको नष्ट करके चित्तका इस प्रकार शान्त हो जाना कि स्वयं परमात्मा ही सब कुछ है, परमात्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं, यह निश्चय कभी न हटे, पहचानना है।

प्र०—यह निश्चय क्यों नहीं होता ?

उ०—अविचार और कामनाओंके कारण। कामनाओंका मूल भी अविचार ही है। जो चाहता है कि हमें स्वर्ग या सांसारिक सुख मिले, वह नरक और सांसारिक दुःखोंसे डरता है। जब उसे शारीरिक निष्क्रियता और मानसिक निःसंकल्पताका उपदेश किया जाता है तो वह सोचने लगता है—'इस प्रकार शायद मुझे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति न हो, अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो जाय।' वह वस्तुकी प्राप्ति चाहता है, सत्यकी नहीं। जो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सत्यके प्रेमी होते हैं वे ऐसा सोचते हैं—'मुझे सत्यका, वास्तविकताका ज्ञान हो जाय, चाहे मुझे नरकमें ही क्यों न जाना पड़े।' ऐसे सच्चे जिज्ञासुओंको सत्यका ज्ञान होता है और वे सुख-दुःख, स्वर्ग-नरकसे ऊपर उठ जाते हैं। जो कोई स्थिति प्राप्त करना चाहते हैं, वे इस सत्यपर विश्वास करनेमें हिचकिचाते हैं और सोचते हैं कि शारीरिक और मानसिक निष्क्रियतासे शायद हमारी अभीष्ट वस्तु न मिले। यह अविचारपूर्ण कामना ही पहचाननेमें वाधक है।

'मैं भोक्ता हूँ' और 'मैं कर्ता हूँ' अर्थात् मैं अपने प्रयत्नसे अपनी इच्छानुसार परिस्थितियाँ उत्पन्न करके सुखी हो सकता हूँ, यह भाव ही आत्मोपलब्धिमें प्रतिबन्ध है। यह भाव न भक्तमें होता है और न ज्ञानीमें। भक्तकी दृष्टिमें एकमात्र भगवान् ही कर्ता और भोक्त है। भक्तमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है। ज्ञानीकी दृष्टिमें तो उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी कल्पना ही नहीं हो सकती। यह अहंकार या अस्मिता अज्ञानजन्य है। विचारके द्वारा ज्ञानका उदय होता है। यों कहें कि कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी निवृत्ति होती है, तब भगवान्की प्राप्ति अथवा आत्मोपलब्धि हो जाती है।

प्र०—क्या आप कर्मकी अपेक्षा ज्ञानको अधिक महत्त्व देते हैं, और क्या यह बात गीताके प्रतिकूल नहीं पड़ती?

उ०—कर्म शारीरिक है, कर्मयोग मानसिक है, सांख्ययोग भी मानसिक है। कर्मयोग और सांख्ययोग उपासनाके ही भेद हैं। इन दोनोंके द्वारा जिस ज्ञानकी उपलब्धि होती है, वह परमात्माका स्वरूप है। उपासना साधन है, और ज्ञान साध्य, इस दृष्टिसे कर्मयोग और सांख्ययोग दोनोंकी अपेक्षा ही ज्ञान श्रेष्ठ है। गीताकी परिपाटी ऐसी है कि साध्यकी अपेक्षा वह साधनको

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अधिक महत्त्व देती है। बारहवें अध्यायमें अद्वेष्टा और मैत्र आदि जिस भक्तको कहा गया है, वह भगवान्का प्रिय है; परन्तु जो अद्वेष और मैत्री आदि गुणोंका अभ्यास करता है उसको अतीव प्रिय कहा गया है। **'ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते'** इस वचनमें ज्ञानके साधन ध्यानको ज्ञानसे वढ़कर वतलाया गया है। **'कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते'** यहाँ भी कर्मसंन्यासके साधन कर्मयोगको साध्यसे विशेष वताया है। गीतामें ही **'ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति'** और **'संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः'**के द्वारा ध्यानको ज्ञानका साधन एवं कर्मयोगको कर्मसंन्यासका साधन कहा गया है। सब कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते हैं—यह बात भी गीताकी ही है। इस प्रकार गीता ही ज्ञानको कर्मसे अधिक महत्त्व देती है। ज्ञान ही कर्म और उपासनाको पूर्ण करता है।

साध्यकी प्राप्तिका कारण होनेके कारण साधनको अधिक महत्त्व देना उचित भी है। साधककी निष्ठा दृढ़ करनेके लिए यह अनिवार्य है।

प्र०—गीतामें निष्काम कर्मयोग और सांख्ययोग—ये दो निष्ठाएँ स्वतन्त्र स्वीकृत हुई हैं, क्या इनमें कुछ तारतम्य है?

उ०—ये दोनों निष्ठाएँ समान ही हैं, क्योंकि दोनों ही मनके भावविशेष हैं। कर्मयोगमें कर्मको प्रधानता नहीं है, निष्कामताकी प्रधानता है। निष्कामभावके विना केवल कर्म स्वतन्त्र निष्ठा नहीं हो सकता; परन्तु कर्मके विना केवल निष्कामता निष्ठा हो सकती है। निष्कामता शारीरिक नहीं हो सकती, मानसिक ही होती है। निष्कामताकी पूर्ण सिद्धि भगवान्के आश्रय और विचारसे होती है। सांख्ययोग भी कर्मशून्य नहीं है, उसमें आचार्योपासन, शौच, स्वाध्याय आदि कर्म भी हैं। दोनोंमें ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भावकी प्रधानता है, इसलिए हम दोनोंको ही उपासना कहेंगे। कर्मयोगमें भेदोपासनाकी प्रधानता रहती है और सांख्ययोगमें अभेदोपासनाकी। इन उपासनाओंके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और यही निष्कामभावकी पूर्णता है, इसका फल है तत्त्वज्ञानकी योग्यता। यदि उपासनामें तारतम्य करना ही हो तो केवल अधिकारिभेदसे ही किया जा सकता है।

प्र०—इससे तो यह निश्चय हुआ कि निष्ठा चाहे कर्मयोगकी हो चाहे सांख्ययोगकी, मानसिक ही होती है। अर्थात् भावना ही साधना है। भावना होती है मनसे। मन हमारा हमारे हाथमें है नहीं, तब तो हम कोई साधना ही नहीं कर सकते ?

उ०—कर सकते हैं। यह सत्य है कि कोई भी क्रिया विना मनके फल देनेवाली नहीं होती। शुभ और अशुभ अदृष्टका निर्माण केवल मनोयोगसे ही होता है—'**मनःकृतं कृतं राम न शरीरकृतं कृतम्**।' अथवा '**असदित्युच्यते पार्थन च तत्प्रेत्य नो इह**।' परन्तु एक क्रिया ऐसी है जो विना मनके भी फलप्रद होती है। बस, केवल एक ही क्रिया ऐसी है; वह है भगवान्का नाम। नामजप, नामकीर्तन, चाहे मनसे हो चाहे बेमनसे हो, उसका फल होता ही है। ज्ञान-अज्ञान, श्रद्धा-अश्रद्धा, मन-बेमन चाहे जैसे हो, उसके फलमें बाधा नहीं पड़ सकती। नामोच्चारण स्वयं फल है। इसलिए इस युगमें जब कि सबका मन हाथसे बाहर हो गया है, नामकी साधना ही सर्वोच्च साधना है।

प्र०—तब फिर नामकी ही साधना सर्वोच्च साधना है ?

उ०—हाँ बात तो ऐसी ही है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

●

Ra Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सिद्धान्त और जीवन

यों तो वेदान्तसिद्धान्तका दृढ़ बोध अनुष्ठानकी अपेक्षा नहीं रखता, परा विद्याका अपरा विद्याकी अपेक्षा वैशिष्ट्य भी यही है : परन्तु यह दृढ़ बोध या अपरोक्ष साक्षात्कार सर्वसाधारणके लिए सुलभ नहीं है, इसके विशेष व्यक्ति ही अधिकारी होते हैं। वाह्य संसारकी सत्यताके सम्बन्धमें हमारा जितना दृढ़ बोध है, शरीरके साथ हमारा जितना तादात्म्य, एकत्व या अहंभाव है, उतना ही दृढ़ बोध यदि वस्तुत्वके सम्बन्धमें हो जाय तो अनुष्ठानकी अपेक्षा क्यों होने लगी ? वहाँ तो सारे अनुष्ठान ब्रह्माकारवृत्तिके अन्तर्भुक्त होकर स्वरूपशून्य हो जाते हैं।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक प्राणीका आचरण उसके ज्ञानके अनुसार ही होता है। अपने ज्ञानके विरुद्ध धारणाके विपरीत (विवशताकी बात दूसरी है) कोई काम नहीं किया जा सकता। हम समझते हैं कि रुपये, स्त्री, पुत्र यह शरीर अच्छी चीज हैं, इनकी रक्षाके लिए सर्वदा सचेत रहते हैं। यहाँ तक कि हमारी प्रत्येक क्रिया ही उसीको लक्ष्य करके होती है। यदि ऐसी ही धारणा बँध जाय, हृदयके कोने कोनेमें यह बात बैठ जाय कि एकमात्र सच्चिदानन्द प्रभु या आत्मतत्त्वके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं, सब कुछ वही या मैं हूँ, तो इस मिथ्यात्वेन निश्चित प्रकृति और प्राकृत पदार्थोंके सम्बन्धमें होनेवाले शुभ या अशुभ अनुष्ठानोंकी ओर वृत्तियों कीप्रवृत्ति ही क्यों होने लगी ? उदाहरणत: जिसे पूर्णतया

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यह बात मालूम हो गयी कि जिसे हम जलके रूपमें देख रहे हैं वह वास्तवमें जल नहीं हैं, किन्तु मरुस्थलमें सूर्यकी किरणें ही जलकी भाँति चमक रही हैं, तो वह कदापि प्यास लगनेपर उधर पानीके लिए नहीं जा सकता, बल्कि दूसरा कोई जाता दीखे तो उसे भी रोकनेकी चेष्टा करेगा, कोई जानेके लिए विवश करे तो भी प्रसन्नतासे नहीं जायगा। वैसे ही जिन्होंने जगत्का मिथ्यात्व जान लिया, इसकी दुःखरूपता और हेयताका विचार कर लिया, वे कभी जगत्की नानाविध प्रवृत्तियोंमें जा ही नहीं सकते और न उन्हें जानेकी आवश्यकता ही है। ये अमुक कर्म करें, अमुक न करें, इस प्रकारके विधि-निषेध उनपर लागू ही नहीं होते और न उन्हें उनपर कोई लागू कर ही सकता है। यहाँ तक कि उनके सम्बन्धमें कुछ लिखना-पढ़ना भी बेकार ही है।

कहना-सुनना तो हम साधारण लोगोंके विषयमें ही बनता है। हमारा बौद्धिक ज्ञान चाहे जितना बड़ा हो, हम चाहे जितना सुन्दर लेख लिखते हों, व्याख्यान झाड़ते हों, बाह्य त्यागका आडम्बर रचते हों; परन्तु अभी हमारा हृदय संसारकी सत्यता, प्रियता और ऐषणाओंसे शून्य नहीं हुआ है, ये सब स्वार्थसिद्धिके लिए कलामात्र हैं, चाहे वह स्वार्थ रुपयेका हो, मान-प्रतिष्ठाका हो या कीर्तिका हो।

हम निष्काम कर्मका नाम लेकर भोली-भाली जनताकी आँखोंमें धूल डाल सकते हैं, प्रेमलक्षणा भक्ति और अपरोक्ष ज्ञानके बहाने अपनी वासनाओंकी पूर्ति कर सकते हैं और अपने नामके साथ कुछ भी उपाधि जोड़कर लोगोंसे पूजा करा सकते हैं; किन्तु परम सत्य तो यह है कि हम वास्तविक ज्ञान और परमार्थसे बहुत दूर हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सिद्धान्तकी दृष्टिसे प्रवृत्तिमात्र ही अविद्या और कामनाके कारण होती है। बिना संसारमें सत्यत्वबुद्धि आये, चाहे वह क्षणभरके लिए ही क्यों न हो, कर्म हो ही नहीं सकता। आधिकारिक महापुरुषोंकी बात दूसरी है। और जब हम संसारमें आते हैं, भेदको, द्वैतको, अज्ञानको स्वीकार करके ही आते हैं; स्वीकार कर लेनेपर उसके परिणाम—कामनाओंसे बच नहीं सकते। यदि बचते नहीं तो यह भी दृढ़ निश्चय और सत्य है कि हम नाना प्रकारके बन्धनों तथा दुःखोंसे घिरे हुए हैं, सिद्धान्तसे च्युत या नीचे उतरे हुए हैं, हमें आदर्श स्थिति प्राप्त नहीं हुई है। जीवनको जीवित करनेवाली एकमात्र यही अभिलाषा पहले होती है तथा जीवन पर्यन्त रहती है और रहनी चाहिए कि यह जीवन सिद्धान्तपर आरूढ़ हो जाय। परमानन्दकी साक्षात् अनुभूति करनेके लिए चला हुआ पुरुष जब उसे छोड़कर संसारकी ओर लौटता है, तो लौटकर वह चाहे जितना लोकहितकर कर्म करे, प्रश्न यह उठता है कि उस अनुभूतिका फल क्या यही हुआ है? यदि यही है तो उसके लिए प्रयत्न न करके इस फलमें ही जीवनकी स्थिति की जाय। उस परमानन्दकी अपेक्षा इसमें अधिक आनन्द न होता तो उसे छोड़कर इसकी तरफ क्यों ढुलक पड़ते? और यह तो सिद्धान्त ही है कि सब कुछ अपने लिए ही प्यारा है। यदि उसपर निरन्तर आरूढ़ न रह सकनेके कारण यह 'अवतरण' हुआ है तो इसकी अपेक्षा होती और सर्वथा अच्छा है कि उस आदर्श स्थितिको प्राप्त करनेके लिए निरन्तर पूर्ण शक्तिसे प्रयत्न किया जाय। इन साधनकी स्थितिमें अपनेको सिद्ध घोषित करके, अपनी आचार्यताका दावा करके, चेला-चेली, उपदेश, लेख, लोकसेवाकी आड़में अपनी वासनाओंकी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पूर्ति करके हम परमार्थच्युत न हो जायँ, बल्कि जहाँतक हो सके हमारा प्रत्येक क्षण 'आरुरुक्षु'के रूपमें ही बीते। आरुरुक्ष—साधकके लिए कर्मकी आवश्यकता है। परन्तु वह परकल्याणके लिए नहीं, लोकसंग्रह और आडम्बरके लिए नहीं, किन्तु आत्मशुद्धिकी सच्ची भावनासे साधन रूपमें आत्मकल्याणके लिए होनी चाहिए।

इस प्रकारका कर्म केवल वही कर सकता है जो अपनेको कृतकृत्य नहीं समझता। किन्तु आदर्श स्थितिके लिए—सिद्धान्तपर आरूढ़ होनेके लिए सच्ची उत्सुकता रखता है। यह आध्यात्मिक पथ नितान्त व्यक्तिगत तथा स्वाश्रित है। एक समूहमें इसके संस्कार पड़ सकते हैं—कुछ लोग इस पथपर चलनेके लिए उत्तेजित कर सकते हैं, प्रोत्साहन दे सकते हैं—वह भी नाममात्र, कहनेभरका, आश्वासनमात्र; नहीं तो यात्रा अकेले ही करनी पड़ेगी। कोई भी साथी अथवा सहायक वहाँ तक पहुँचा नहीं सकता; हमें स्वयं चलकर इस मार्गको तय करना पड़ेगा और अन्तमें तो एक अद्वितीय, निर्द्वन्द्व वस्तुस्थिति होगी ही।

अनादि कालसे, जन्म-जन्मान्तरसे इसी संसारमें रहते-रहते इसके संस्कार इतने दृढ़मूल हो गये हैं कि उन्हें दूर करना सरल नहीं। इसके लिए बड़े अभ्यास, परम श्रद्धा, तत्परता और सुदृढ़ संयमकी आवश्यकता है। मोहवश स्त्री-पुत्रको छातीसे चिपकाये रहें, कौड़ी-कौड़ीकी गिनतीके लिए लालटेनके सामने जागकर रात्रि व्यतीत करते रहें और परमार्थ हमें स्वयं आकर प्राप्त हो जाय, यह सब कल्पना जगत्‌की, स्वप्नकी बातें हैं। मिथ्या प्रलोभनवचनोंमें पड़ा हुआ पुरुष परमार्थपथका पथिक नहीं हो सकता। इसकेलिए घोर तपस्या करनी होगी, सर्वस्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

त्याग करना होगा और विविध विघ्नबाधाओंसे संकुल इस संसाररूप भीषण समुद्रमें असंख्य तरङ्गाघातोंका सामना करनेके लिए एक निष्ठुर और दारुण शिलाखण्डकी भाँति स्थित होना होगा। जैसे भूखा सिंह अपनी भक्ष्य वस्तुको देखते ही उसपर अपनी सारी शक्तिसे तत्क्षण आक्रमण कर देता है, उसी प्रकार हमें अपने लक्ष्यपर टूट पड़ना होगा। मार्ग लम्बा है, पर उसका अन्त अवश्यम्भावी है। शिथिल उत्साहसे काम न चलेगा। यही भाग्योदयका शुभ समय है, यही पवित्रतम देश है। बिना किसी प्रकारकी हिचकिचाहटके एक पगली छलाँगमें ही हम उस 'आवरण'को नष्ट कर दें जो हमें अपने लक्ष्यसे पृथक् किये हुए है। यह भी जान लेना चाहिए कि वह आवरण कोई दूसरी वस्तु नहीं, हमारे उत्साहकी न्यूनता ही है; सच्ची व्याकुलता मुमुक्षा या जिज्ञासाके अभावके कारण ही नाना प्रकारके बहाने बनाकर हम अपनेको दूसरोंकी दृष्टिमें आध्यात्मिक सजानेमें लगे हुए हैं और सम्भवतः दूसरोंको ठगनेके लोभमें आकर स्वयं ठगे जा रहे हैं।

हम दूसरोंके उद्धारकी शक्ति नहीं रखते। अभी पहले अपना उद्धार तो कर लें। और अपना उद्धार तभी सम्भव है जब हम सिद्धान्तपर आरूढ़ हो जायँ, आदर्श स्थिति प्राप्त कर लें। इसलिए अन्तरमें लोकैषणाको छिपाकर रखनेवाले इस परोपकारकी ओट छोड़कर हम लोग अन्तरकी ओर बढ़ें। कालरूप प्रभुकी उपासना करते-करते बहुत दिन हो गये, अब आत्मरूप प्रभुकी उपासना करें। ऐसी उपासना करें, ऐसी सच्ची साधना करें कि साधक-साध्य और उपासक-उपास्य सभी उस अनन्त-साधनामें, उपासनामें, आकर मिल जायँ। उसमें केवल साधना-ही-साधना रह जाय। वस्तुतः यही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सिद्धान्त और आदर्श स्थिति है। यह सिद्धान्त जबतक जीवनके परमाणु-परमाणुमें व्याप्त न हो जाय; इसकी अविच्छिन्न धारा रग-रगमें अभिनिविष्ट न हो जाय और यह जीवनबिन्दु सिद्धान्तके महासमुद्रमें मिलकर वही न हो जाय तबतक इस निष्ठुर साधनाकी प्रगति अबाधित गतिसे उत्तरोत्तर बढ़ती ही जानी चाहिए। अब प्रश्न यह होता है कि साधनाका वास्तविक रूप क्या है? वस्तुतः इसी प्रश्नके चक्रवातमें पड़कर हम सभी अधरमें लटक रहे हैं। हमारी वही दशा है जो धोबीके कुत्तेकी होती है। साधनका सच्चा रूप है कृत्रिमको छोड़कर अकृत्रिमकी ओर, अनात्मको छोड़कर आत्माकी ओर, अन्तमें उसीमें परिनिष्ठित हो जाना। अर्थात् बहिर्विषयोंकी ओर दौड़नेवाले वृत्तिप्रवाहको संकुचित करके उसे प्रत्यक्चेतनकी ओर प्रवाहित करना ही वास्तविक साधना है। हमें बार-बार धोखा होता है, जन्म-जन्मकी सञ्चित वासनाओंसे हमें अनेकों बार पददलित होना पड़ता है। हम एक क्षण देवता होनेका संकल्प करनेपर भी दूसरे ही क्षण दानव हो जाते हैं, श्रीप्रभुके चरणोंका आश्रय लेकर अथवा प्रारब्धके ऊपर निर्भरकर बार-बार योगक्षेम तथा भोगोंकी ओरसे निश्चिन्त होनेका निश्चय करनेपर भी हम उसीके लिए सम्पूर्ण शक्तिसे प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। प्रिय वा अप्रिय मात्रास्पर्शोंकी कटुता एवं दुःखयोनितापर विश्वास रखनेकी चेष्टा करते रहनेपर भी उनसे बार-बार प्रभावित होते रहते हैं। यह सब सत्य होनेपर भी निराश होनेका कोई कारण नहीं है। इन द्वन्द्वोंके रूपमें आनेवाली विविध विघ्न-बाधाओंसे तुमुल युद्ध करके हमारा आत्मविकास ही होगा, इसमें सन्देह नहीं है। किसी समय, किसी देश और किसी वस्तुमें यह शक्ति नहीं कि हमें अपनेमें अन्त-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भूत कर सके। इसके विपरीत इन्हें हमारे अन्दर आना हो पड़ेगा। श्रुतियोंके, भगवान्‌के, सद्‌गुरुओंके वचनपर विश्वास करके यह दावेके साथ कहा जा सकता है कि इन्हें हमने ही जीवित किया है, कर रहे हैं और जब चाहेंगे इन्हें समेटकर इनके अत्यन्ताभावके निरपेक्ष साक्षीरूपमें प्रतिष्ठित हो जायँगे। यदि ऐसा है तो अभीसे क्यों नहीं हो जाते? इसलिए कि अभी हमें अपनी शक्तिपर, महिमापर सच्ची निष्ठा नहीं है और इसीकी चेष्टा ही साधना है। प्राचीन समयमें इस साधनाका श्रेणीविभाग था। ऐतरेय, तैत्तिरीय उपनिषदों और उन्हींके आधारपर रचे हुए अनुभूतिप्रकाश आदि अर्वाचीन ग्रन्थोंके देखनेसे पता चलता है कि पहले अन्त:कोशके साथ तादात्म्य स्थापित कराके वहि:कोशपरसे अहंभाव हटवाया जाता था और इस प्रकार क्रम-क्रमसे अन्तरतम वस्तुका बोध कराया जाता था। इस प्राणालीसे अपने चतुर्विध योगका सम्बन्ध समन्वय भी इस ज्ञानसाधनाके साथ पूर्णत: हो जाता था।

इस स्थूल शरीरसे, जो अपवित्र और घृणित वस्तुओंका पुलिन्दा है, अहंभाव हटानेके लिए मन्त्रयोगकी साधना थी। उसके द्वारा हम अपनेको मन्त्रमय चिन्तन करके एक ज्योतिरूप प्राणशक्तिके विग्रहके साथ तादात्म्यापन्न होते थे और इस कांसपिण्डसे स्वत: ही अहंभावना छूट जाती थी। हठयोगके द्वारा इस प्राण—शरीरपर आधिपत्य स्थापित करके ज्ञान-शक्तिकी ओर अग्रसर होते थे और धीरे-धीरे लययोगके अभ्याससे मनोमयकोशपर भी विजय पा लेते थे। अभ्यासकी परिपक्वतासे राजयोग प्रतिष्ठित होता था और हम कर्तृत्व-प्रधान विज्ञान या अहंसे छूटकर कर्तृत्वशून्य, अनन्त आनन्द-मयकी भावनामें समाधिस्थ हो जाते थे। इसी स्थितिमें निर-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पेक्ष स्वयंप्रकाश फलज्ञानका आविर्भाव होता था, जिससे पूर्वोक्त भावनाओंका भावनात्व नष्ट होकर वे वस्तुस्थिति या सिद्धान्त बन जाती थीं। इस भावनामें न वासनाक्षय—मनोनाशके लिए पृथक् प्रयत्न ही करना पड़ता था और न 'तत् त्वं' पदार्थकी विवेचना ही शिथिल पड़ती थी। भूमिकाभेदकी भी अपेक्षा नहीं थी और श्रवणमात्रसे अपनेको कृतार्थ माननेकी आत्म-वञ्चनाके लिए तनिक भी अवसर नहीं था। तथा मृत्युके पश्चात् होनेवाली मुक्तिके धोखेमें पड़कर कोई जीवनमुक्तिसे हाथ नहीं धो बैठता था, जैसा कि प्राय: आजकल हो रहा है।

इस साधनामें वाह्य पदार्थोंसे सम्बन्धविच्छेद कराते हुए वासनाक्षयकी ओर ले चलनेके लिए वैराग्य-देव स्वयं उपस्थित रहते थे। तत्पदार्थके साक्षात्कारकी ओर अग्रसर करके मनको भगवद्रूपता देती हुई भक्तिदेवी साधकको साक्षात् मनोनाशके उत्तम प्रासादपर स्थापित कर देती थीं। ऋद्धि-सिद्धि तथा विविध प्रकारकी मुक्तियों एवं बन्धोंके अत्यन्ताभावके साक्षी केवल-निरपेक्षज्ञानदेव, जैसे कि वे वस्तुत: हैं, अपने आपमें ही मग्न रहते थे।

यही सिद्धान्त है—वस्तुस्थिति है, जो जीवनको आत्मसात् करके ही प्रतिष्ठित होती है। वही सिद्धान्त सच्चा सिद्धान्त है जो जीवनको अपनेमें अन्तर्भूत कर ले और वही जीवन सच्चा जीवन है जो सिद्धान्तमय हो।

जबतक हम इस स्थितिपर आरूढ़ न हो जायँ तबतक निरन्तर कठोर साधनाके द्वारा इसपर आरूढ़ होनेका प्रयत्न करते रहना चाहिए, किसी प्रकार भी अपनी कृतकृत्यताके धोखेमें नहीं पड़ना चाहिए।

वासनाएँ बहुत बलिष्ठ हैं, ये बार-बार संसारकी ओर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

खींचती रहती हैं। कई बार हम इनके चक्करमें आकर अपने आपको खो बैठते हैं; अतः इनका कड़ा निरीक्षण होना चाहिए। वासनाओंका सबसे भयंकर रूप है किसीको सिद्धके आसनपर बैठा देना। इस दलदलमें फँसकर शायद ही कोई धीर-वीर निकल सकता है। इसलिए हमें प्रतिपल इनकी परीक्षा करते रहना चाहिए। आदर्श वह है जिससे कभी फिर संसारमें लौटकर न आना पड़े। जबतक लौटते हैं तबतक सच्चे तत्त्वकी उपलब्धि नहीं हुई। जो दूसरोंके उद्धारकी कम्पनियाँ खोलकर बैठे हों उन्हें खोलने दें, उनसे अपना कोई मतलब नहीं। हमें तो अपने आपको देखना चाहिए और यह याद रखना चाहिए कि सिद्धान्त ही जीवन है और जीवन ही सिद्धान्त है तथा जबतक दोनों पृथक्-पृथक् हैं तबतक दोनों ही निष्फल हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जीवन्मुक्त

'मैं' का वास्तविक अर्थ है आत्मा। आत्मा अर्थात् वास्तविक 'मैं' अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसमें बद्ध और मुक्तके विशेषण नहीं लगाये जा सकते। बन्धका अर्थ है अपनेको भूल जाना और उस भूलका मिट जाना ही ज्ञान अथवा मुक्तिका अर्थ है। तात्पर्य यह कि आत्मदृष्टिसे बद्ध और मुक्तकी सत्ता नहीं होती। वह तो व्यावहारिक दृष्टिसे ही बनती है। यदि व्यवहारमें परमार्थिक दृष्टि घुसेड़ दें और व्यावहारिक दृष्टिसे परमार्थका विचार करें तो दोनोंका ही शुद्ध स्वरूप छिप जायगा। इसलिए बद्ध, मुक्त आदिपर विचार करते समय व्यावहारिक दृष्टि ही काममें लानी चाहिए।

यह बात तो स्पष्ट ही है कि अनन्त चिदानन्द सत्तामें किसी भी द्वन्द्वकी कल्पना नहीं की जा सकती, और व्यवहार द्वन्द्वमें ही है। व्यवहारमें अच्छे-बुरे, पापी-पुण्यात्मा और महात्मा-दुरात्माका भेद अनादिकालसे चला आया है और इसके बिना व्यवहार चल ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें हमें महात्मा और दुरात्माकी एक परिभाषा बनानी ही पड़ेगी। समाजकी सुव्यवस्था और मुमुक्षुओंके कल्याणके लिए ऐसा करना अनिवार्य है।

परन्तु ऐसा करते समय एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। ये लक्षण जीवन्मुक्त महात्माओंके लिए नहीं बनाये जाते; क्योंकि वे तो जैसे हैं, हैं ही। उन्हें अपने लक्षणके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं। वे इन लक्षणों के अन्दर बँधे नहीं हैं, इनसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परे-बहुत परे अनन्तस्वरूपसे विराजमान हैं। उनके शरीर इन लक्षणोंको मिलाकर कोई महात्मा देखे या न मिलनेसे उन्हें दुरात्माका प्रमाणपत्र दे दे, वे इन बातोंकी ओर दृष्टि ही नहीं डालते। उनकी दृष्टिमें तो सब अपना स्वरूप ही है।

लक्षणोंकी आवश्यकता है हम साधारण जीवोंको, जो संसारके पाप-तापसे सन्तप्त होकर एक शीतल, सुखद और घनी छायाके नीचे विश्राम करना चाहते हैं और अपनी श्रान्ति, क्लान्ति और भ्रान्ति मिटाकर सर्वदाके लिए अनन्त शान्तिके अङ्कमें सो जानेके लिए किसीके कोमल करोंकी थपथपी चाहते हैं। हाँ, तो हमें अपनी दृष्टिसे ही उनके लक्षणोंका निर्णय करना होगा। हम अपने आदर्श, रुचि और प्रवृत्तिके अनुसार ही महात्माओंका चुनाव करते आये हैं और करेंगे। किसीकी दृष्टिमें चैतन्य महाप्रभु हैं और अनेकों व्यक्ति स्वामी दयानन्दको ही सर्वश्रेष्ठ सन्त मानते हैं। ये सभी महान् पुरुष हैं; परन्तु जब हम अपने लिए चुनते हैं तब अपनी रुचि, प्रवृत्ति और आदर्शके अनुसार ही किसी एकपर जाकर ठहर जाते हैं।

परन्तु; अपनी मनमानी करनेसे ही तो हम इस मायाके भयंकर चक्करसे छूट नहीं सकते। जन्म-जन्मसे वासनाओंकी दासता करते रहनेके कारण हम वैसी ही परिस्थितिमें घुल-मिल गये हैं और उसीके आदी हो गये हैं। इसलिए जहाँ कहीं हमारी धारणाके विपरीत कोई बात मिलती है, वहीं हम उससे घृणा या परहेज करने लगते हैं। हमारी नपी-तुली बुद्धिका सत्य ही हमें सत्य प्रतीत होने लगता है और हम वास्तव सत्यसे वञ्चित ही रह जाते हैं तब हमें क्या करना चाहिए? किसकी शरण ग्रहण करनी चाहिए?

एक बात और है। कामनाओं और विषयोंके कीचड़

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सड़ते-सड़ते हम ऊब उठे हैं। पापोंके, पापियोंके और उनके लालोंके ञ्जेमें पिसते-पिसते चूर-चूर हो गये हैं। इनके धोखे, ाल और फरेबोंसे आजिज आगये हैं। यदि फिर उन्हींके ंगुलमें फँस जायँ और फिर कहीं दुर्गति हो तब मुक्ति और गवान्‌की ओर अग्रसर होनेका अच्छा फल मिला ?

यह बात सत्य है कि जिनकी दृष्टिमें असन्त हैं वे ही असन्त ; क्योंकि सन्तकी दृष्टिमें सब रूपोंमें सन्त ही नहीं प्रत्युत यं भगवान् हैं। परन्तु यह बात तो हम असन्तोंकी ही है ? इसलिए हमें अब विचार करना चाहिए कि सन्त या ीवन्मुक्तकी क्या परिभाषा हो सकती है अर्थात् किन लक्षणोंसे क्त पुरुषके पास जाकर, उसकी शरण ग्रहण करके हम अपना ल्याण-साधन कर सकते हैं। यद्यपि यह बड़े साहसकी बात कि किसी महापुरुषको कुछ नियमोंके अन्दर बाँध दिया जाय, ापि यह बन्धन उसके लिए न होकर जिज्ञासुओंके लिए है, : कोई आपत्तिकी बात नहीं है।

श्रुतियोंसे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, ब्राह्मण और ब्रह्मवित् आदि ोंसे तथा गीतामें स्थितप्रज्ञ, भक्त तथा गुणातीतके रूपमें र योगवासिष्ठमें जीवन्मुक्त, विदेहमुक्त आदिके रूपमें अथ पुराणोंमें अतिवर्णाश्रमी आदिके रूपमें जिस स्थितिकी ओर त किया गया है वह विभिन्न प्रकारकी नहीं है। प्रत्युत भिन्न साधनाओंसे निष्पन्न एक ही फलभूत स्थितिका विभिन्न ोंसे निर्देश किया गया है। उदाहरणार्थ—गीतामें कर्मको य और भक्ति-ज्ञानको गौण मानकर वास्तविक स्थिति प्राप्त नेवालेको 'स्थितप्रज्ञ,' भक्तिको मुख्य और कर्म-ज्ञानको गौण नेवालेको 'भक्त' तथा ज्ञानको मुख्य तथा कर्म-भक्तिको मानकर वास्तविक स्थिति प्राप्त करनेवालेको 'गुणातीत'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कहा गया है। सभीको एक ही स्थिति प्राप्त है, सभी परमा परिनिष्ठित हैं और सभी कर्म, भक्ति तथा ज्ञानसे परिपूर्ण तथापि साधनभेदके कारण उनके नामोंमें भेद कर दिया गया

योगवासिष्ठमें श्रीरामके जीवन्मुक्तलक्षणविषयक प्र उत्तरसे श्रीवसिष्ठजीने कई लक्षण बताये हैं, क्रमशः उन्हें विचार करें।

(१)

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।
अस्तंगतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते॥

इस समय हमारी वृत्तियोंके सामने जिस पर्वत, नदी वनादि विशिष्ट जगत्की प्रतीति हो रही है, जब यह सामनेसे देह, इन्द्रिय आदिके साथ समेट लिया जाता है प्रलय हो जाता है तब इन विभिन्नताओंके न रहनेसे अस्तंगत हो जाता है। परन्तु जीवन्मुक्तिमें वैसा नहीं हो यह सम्पूर्ण प्रपञ्च जैसा-का-तैसा बना रहता है और व्यव भी होता रहता है। प्रलय न होनेके कारण दूसरे लोग स्पष्ट इसका अनुभव करते हैं; किन्तु जीवन्मुक्तमें इसे करानेवाली वृत्तिके न होनेके कारण सुषुप्तिकी भाँति कुछ प्रतीत नहीं होता, अस्त हो जाता है। हाँ, सुषुप्तिकी विलक्षणता यह है कि उसमें भाविवृत्तिका बीज संस्कार रहता है और पुनः संसारका उदय होता है। परन्तु जीवन् में बीज भी नहीं रहता—इसलिए पुनः कदापि संसारकी नहीं होती।

(२)

नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे सुखप्रभा।
यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रारब्धके अनुसार चन्दन-पुष्पादिके सत्कार प्राप्त होनेपर अथवा धन-जन हानि, धिक्कारादि दुःखके निमित्त उपस्थित होनेपर संसारी पुरुषोंकी भाँति हर्ष या विषादसे जिसका मुख प्रसन्न या विषण्ण नहीं होता, विना विशेष चेष्टाके जो कुछ स्वयं प्राप्त हो गया उसीमें शान्तिसे स्थित रहता है। पहले तो स्वरूपमें ही स्थित रहनेके कारण उसे इन विषयोंकी प्रतीति ही नहीं होती और यदि यथाकथञ्चित् थोड़ी देरके लिए प्रतीति हो जाय तो भी ज्ञानकी दृढ़तासे हेय-उपादेय बुद्धिका अभाव होनेके कारण हर्ष और विषादके लिए अवसर मिलता ही नहीं। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि प्रारब्धके द्वारा केवल सुख-दुःखके निमित्त मात्र ही आते हैं, न कि उन उन निमित्तोंके पश्चात् होनेवाले सुख-दुःख भी। इसका कारण यह है कि कर्मचक्रके अनुसार घटनाएँ तो घटती ही रहती हैं; परन्तु आसक्तिके कारण हम सुखी-दुःखी हो जाते हैं। जैसे प्रारब्धके कारण हमें किसी दिन भोजन नहीं मिल पाता, इतना तो प्रारब्धका काम है; परन्तु उससे हम दुःखी हों, यह आसक्तिका फल है और आसक्ति अज्ञानसे ही होती है। संसारचक्रकी गति और स्वरूपसे अनभिज्ञ होनेसे ही हम किसी देश, काल या वस्तुसे आसक्ति करते हैं और दुःखी-सुखी होते हैं। जीवन्मुक्त भला इनसे प्रसन्न या विषण्ण क्यों होने लगा? यही तो इसकी विशेषता है।

(३)

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

उसके बाह्य इन्द्रिय अपने-अपने गोलकोंमें स्थित रहते हैं, उपरत नहीं रहते, इसलिए वह जाग्रत् रहता है। परन्तु वृत्तियों-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

को अन्तर्मखीनताके अथवा अभावके कारण वह एक प्रकार सुषुप्ति ही है। इसलिए इन्द्रियोंसे विषयोंकी उपलब्धि नहीं होती और जाग्रत्के लक्षण पूर्णतः नहीं घटते। इसीसे अवस्थाको जाग्रत् और सुषुप्ति इन दोनोंमेंसे एक भी नहीं जा सकता। यह है तो बोध, परन्तु वासनानुगामी बोध नहीं जैसा कि हमें स्वप्न और जाग्रत्में होता है। कभी-कभी ब्रह्मवित् हूँ' इस प्रकारकी वृत्तिका उठना ही यहाँ 'वास शब्दसे सूचित होता है। यह वासना जीवन्मुक्तमें नहीं होत जहाँ यह बुद्धि है कि मैंने अनन्त चित्स्वरूप ब्रह्मको जान लि वहाँ अपनेमें ज्ञानका कर्तृत्व आरोपित होता है और वह वि ज्ञान नहीं कहलाता। जब कर्तृत्व, ज्ञातृत्वका अपवाद हो जा है, त्रिपुटीरहित केवल बोध-ही-बोध रहता है तब उसे वास शून्य बोध कहते हैं। यह बोध स्वरूप ही जीवन्मुक्त स्वरूप है।

(६)

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ।
योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

लोगोंके देखनेमें वह राग, द्वेष, भय आदिसे युक्त पुरु भाँति व्यवहार करता हुआ जान पड़ता है। अर्थात् स्नान, तथा भोजनादिमें उसकी प्रवृत्ति रागके अनुरूप ही जान पड़ है। वह सात्त्विक भोजनका ही उपयोग करता है; तामसिक ग्राम्य चेष्टा तथा दुःसंगका त्याग आदि द्वेषके अनुरूप कार्य उससे होते हुए देखे जाते हैं। इसी प्रकार अचानक कोई आदि हिंस्र जन्तु गोदमें आकर गिर जाय तो वह उसे झट फेंककर भयके अनुरूप काम करता हुआ भी देखा जाता बाधितानुवृत्ति अथवा पूर्वाभ्यासके कारण व्युत्थान दशामें ऐ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

बातें हो जाती हैं अवश्य; परन्तु उसके अन्तःकरणके निर्मल होनेके कारण उसमें तनिक भी कलुष नहीं आता। जैसे हम-लोगोंकी दृष्टिसे आकाशमें धूलि, बादल आदि आजाते हैं; परन्तु आकाशकी दृष्टिसे वह सर्वथा स्वच्छ और निर्मल ही रहता है, इसी प्रकार जीवनमुक्तका हृदय भी सर्वथा, सर्वदा और सर्वत्र निर्मल ही रहता है।

प्रसंगवश एक बात और कहनी है। यदि जीवन्मुक्त पुरुष किसी वर्ण या आश्रममें रहता है तो वह अपने वर्णाश्रमधर्मका उल्लंघन नहीं करता। परम्परासे प्राप्त मर्यादाका उल्लंघन क्यों किया जाय, जब कि उसके लिए सभी कर्म बराबर हैं? प्रातः-काल सन्ध्या कर्तव्य है, अब यदि इस आज्ञाका पालन द्विजाति जीवन्मुक्त नहीं करता तो इसका कारण क्या है? क्या वह किसी इससे भी अच्छे काममें लगा हुआ है अथवा आलस्य-प्रमादवश ऐसा कर रहा है? उसके लिए अच्छे-बुरेका तो प्रश्न नहीं और आलस्य-प्रमादको जान-बूझकर वह प्रश्रय दे नहीं सकता। अब विधिप्राप्त कर्तव्य स्वयं ही उससे होते हैं। यही बात संन्यासीके लिए भी लागू होती है। वह अपने त्याग, वैराग्य, स्त्रीका अदर्शन आदि नियमों और प्राप्त विधानोंका उल्लंघन क्यों करता है? विषयोंको सुखजनक समझने और उनकी आसक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण हो ही नहीं सकता। हाँ, इसे छिपानेके लिए जीवन्मुक्तिका आश्रय लिया जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि जीवन्मुक्तिमें किसी ऐसी बातके लिए तनिक भी अवसर नहीं है। अवश्य, उन महा-त्माओंके सम्बन्धमें जिन्होंने न केवल वर्णका अपितु आश्रमका भी सच्चा संन्यास कर रक्खा है, किसीको कुछ कहनेका अधिकार नहीं है।

• • •

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

जब पुरुष कोई कर्म करता है तो 'मैं इस कर्मका कर्ता' ऐसा अहंकार कर लेता है और इस कर्मका ऐहलौकिक पारलौकिक अमुक फल प्राप्त होगा, ऐसा सोचकर बुद्धि भावसे लिप्त हो जाती है। और जब मैं कर्म नहीं करता, हाथ पैर आदि इन्द्रियों और अन्तःकरणको रोककर कर्मका त्याग किये बैठा हूँ—ऐसा अहंकार होता है, तब मुझे मुक्ति प्राप्त हो, इस आशासे बुद्धि लिप्त हो जाती है। परन्तु जीवन्मुक्त चाहे कर्म करता हुआ-सा प्रतीत हो या कर्मत्यागी-सा, दोनों स्थितियोंमें उसे अहंकार और बुद्धिकी सलेपता नहीं प्राप्त होती। मैं कर्ता हूँ या त्यागी हूँ, यह भाव कभी नहीं उठता। उसके सामने वे दोनों स्थितियाँ रहती ही नहीं।

यह स्थिति स्वसंवेद्य है। जो महापुरुष कर्तृत्वसे ऊपर उठे हुए हैं, उनमें अहंकार, आसक्ति और बुद्धिका लेप न होनेके कारण उनसे कभी सहज कर्मोंके अतिरिक्त दूसरे हो ही नहीं सकते। और सहज कर्मका भगवान्ने गीतामें वर्णन किया है। अथवा सहजका अर्थ समझना चाहिए ज्ञान होनेके पूर्व क्षणका सजातीय कर्म। उनके प्रवाहपतित होनेके कारण और उनका निषेध करके अन्य कर्ममें लगानेवाली वासनाओंके न होनेके कारण वे ही अभ्यस्त कर्मसमूह चला करते हैं। हाँ, इतना निश्चित है कि उस क्षणमें पापकर्म न रहे हों, क्योंकि ऐसा होनेपर अन्तःकरणकी अशुद्धिके कारण ज्ञान ही नहीं होता। हमारी दृष्टिमें जीवन्मुक्तके जीवनमें प्रारब्धके अनुसार घटनाएँ तो सब प्रकारकी घट सकती हैं; परन्तु उनके

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

संकल्प, उनसे आसक्ति और उनका कर्तृत्व न रहनेसे तथा आत्मदृष्टिसे आत्मरूप ही दीखनेके कारण वे फलोत्पादनमें समर्थ नहीं होतीं।

(६)

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयान्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥

संसारी लोग जिनसे अपनी किसी प्रकारकी हानि होनेकी सम्भावना देखते हैं या अपने आचार-विचारसे प्रतिकूल अनुभव करते हैं, उससे उद्विग्न हो जाते हैं और मुमुक्षु लोग भी लोगोंको ईर्ष्या, द्वेष आदिसे दबे तथा संसारमें आसक्त देखकर उनसे उद्विग्न हो जाते हैं। परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष किसीका पराया नहीं, सबका अपना होता है। उससे किसीके अनिष्ट और प्रतिकूलताकी आशंका ही नहीं रहती। फिर उससे कोई क्यों घबड़ाने लगा? दूसरे लोगोंकी संसारासक्ति आदि देखनेसे उसकी साधनामें बाधा तो पड़ती ही नहीं; क्योंकि उसकी साधना सहज है—नित्य चलती रहती है। कृत्रिमता तो है नहीं कि दूसरोंके संसर्गसे या विघ्न डालनेसे वह रुक जायगी। इससे वह किसीसे भी घबड़ाता नहीं। उसे सब कुछ प्राप्त ही है, इसलिए किसी वस्तुकी प्राप्तिसे हर्ष नहीं होता। उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं, इसलिए उसे किसीसे अमर्ष नहीं होता। द्वैतमें ही भय है। दूसरोंसे ही भयभीत होना पड़ता है। परन्तु जीवन्मुक्त पुरुषके लिए कोई दूसरा है ही नहीं, फिर भयभीत किससे हो? वह सर्वदा आत्मरत, आत्मतृप्त और आत्मतुष्ट ही रहता है।

(७)

शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

संसारी लोग यह शत्रु है, यह मित्र है और यह उदासीन है तथा यह सम्मान है, यह अपमान है—इत्यादि नानाविध विकल्पोंके कारण जला करते हैं; परन्तु जीवन्मुक्त पुरुषमें यह सब विकल्प होते ही नहीं; स्वभावतः शान्त रहते हैं। वह चौंसठ कलाओंसे युक्त होनेपर भी उनके अभिमान और व्यवहारके अभावके कारण कलाहीन ही रहता है। अथवा इन शरीर, प्राण आदि अभिव्यक्तियोंसे—खण्डोंसे युक्त दीखनेपर भी वह इनसे रहित अर्थात् अव्यक्त ही है। हमलोगोंकी दृष्टिमें वह चित्तवाला प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें वृत्तियोंका उदय न होनेसे वह निश्चित्त अर्थात् चित्तरहित ही है। कोई कोई सज्जन 'निश्चित्तः' के स्थानपर 'निश्चिन्तः' पाठ मानते हैं। चित्त तो है, परन्तु ज्ञानके पूर्वकालिक दृढ़ अभ्यासके कारण सर्वदा आत्मचिन्तन ही होता है, कभी सांसारिक चिन्ताका उदय नहीं होता। अतः चित्त रहनेपर भी वह निश्चिन्त ही रहता है।

(८)

यः समस्तार्थजातेषु व्यवहार्य्यपि शीतलः।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

जैसे संसारी लोग उत्सव आदिके अवसरपर दूसरोंके घर स्वयं जाकर उनकी प्रसन्नताके लिए अनेकों प्रकारके काम करनेपर भी लाभ, हानि, हर्ष विषादादिरूप विकारोंसे अभिभूत नहीं होते, उसी प्रकार यद्यपि इसकी दृष्टिमें कोई पराया नहीं है, तो भी समस्त व्यवहारोंको करता हुआ भी उन विकारोंसे मुक्त रहता है, इसका हृदय सर्वथा शीतल रहता है। यह बात नहीं कि वह केवल उन विघ्न-बाधाओंके संतापसे मुक्त रहनेके कारण ही शीतल रहता हो, बल्कि निरन्तर अपने एकरस परि-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पूर्ण आत्मतत्त्वमें परिनिष्ठित रहनेके कारण ही ऐसा होता है। यही जीवन्मुक्त पुरुषोंके साधारण लक्षण हैं।

ऐसे आत्मनिष्ठ महापुरुषको, जबतक उसका शरीर दीखता है, हम लोग जीवन्मुक्त कहते हैं और उसकी शरण ग्रहण करके अपना परम कल्याण प्राप्त करते हैं। जब उसका शरीरपात हो जाता है तब वह विदेहमुक्त हो जाता है। उसके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जा सकता।

हाँ, यह जीवन्मुक्तपद वासनाक्षय और मनोनाशपूर्वक तत्त्वज्ञानसे ही प्राप्त होता है। इनमेंसे किसी एकके द्वारा नहीं। सच्ची बात तो यह है कि ये अन्योन्याश्रित हैं—बिना एकके दूसरेकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। इसलिए बड़ी तत्परताके साथ तीनोंका एक साथ अभ्यास करना चाहिए। निषिद्ध और काम्य कर्मों अथवा कामनाओंका त्याग करके निष्काम, नित्यकर्मोंके अनुष्ठानद्वारा अशास्त्रीय वासनाओंका तिरस्कार करते हुए, भगवद्भजनके द्वारा अशेष वासनाओंका नाश करके मनको भगवदाकार करते हुए मल-विक्षेपरहित विशुद्ध अन्तः-करणसे 'तत् त्वं पदार्थके, श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा तत्त्वज्ञान सम्पादन करते हुए आवरण भङ्ग करके जीवन्मुक्त-पदकी उपलब्धि करनी चाहिए।

इस प्रकार कर्म, भक्ति, ज्ञानकाण्डोंका सुचारुरूपसे समन्वय हो जाता है और किसी मतवादका खण्डन या विरोध भी नहीं होता। सभीका यथास्थान उपयोग हो जाता है। इस पदको अविवाद और अविरुद्ध कहा गया है। इसी पदमें स्थित व्यक्तिको हम लोग जीवन्मुक्त कहते हैं और उन्हींके चरणोंका आश्रय लेकर हम कृतकृत्य हो सकते हैं।

●

● ● ●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पञ्चभूतोंकी धारणा

यह स्थूल संसार जिसे जनसाधारण वज्रके समान ठोस देख हैं, स्वप्नके दृश्योंसे भी अधिक हलका और सारहीन है। कोटि कोटि ब्रह्माण्डोंका भार केवल मन सम्भाले हुए है और जबतक उस भारकी याद नहीं करता तबतक किसी प्रकार दुःख उसे नहीं होता, जब वह स्थूल वस्तुओंके स्मरणमें अपनेको खो बैठता है, तब मानो उसपर सौ-सौ पहाड़ोंके भ आजाते हैं और वह उनसे दबकर अधोगामी होने लगता है और लघु-से-लघुतर होकर जड़प्राय हो जाता है। अधिक लोगोंका मन अपनी विशालता, शक्ति और ज्ञानको भूल एक शरीरकी प्रवृत्तियोंमें इतना अधिक फँस गया है कि अपने शरीरके अतिरिक्त और कुछ समझता ही नहीं; और वि ब्रह्माण्डके उदयन और विलयनकी तो बात ही क्या, उन कल्पनासे ही मूर्च्छित हो जाता है। मनकी यह दुर्बलता ब दिनोंसे अभ्यस्त है और इसीके कारण संसारके सारे दुःख-द हैं। यह मन, जो कि चिन्मय है, जबतक पुनः अपने चि यत्वका अनुभव नहीं कर लेता तबतक सुखी और शान्त हो सकता; इसके लिए भावनाकी, अभ्यासकी आवश्यक है। सन्तोंने, शास्त्रोंने इसीके लिए अनेक प्रकारके साधन ब लाये हैं, उनमेंसे एक प्रमुख साधन पञ्चभूतोंकी धारणा है इसके द्वारा मनको धीरे-धीरे अल्पताके कारागारसे निकाल

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अखण्ड-स्वातंत्र्यमें, जो कि अनन्त है, स्थापित किया जाता है। वास्तवमें यही उसका स्वरूप है। स्वरूपकी उपलब्धि ही इस साधनाका उद्देश्य है, यद्यपि मार्गमें सभी प्रकारकी सिद्धियाँ भी मिलती हैं।

पञ्चभूत हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश। इनकी धारणाका अर्थ है क्रमशः चित्तको इन्हींमें बाँधना। यद्यपि ये सब चित्तमें बँधे हुए हैं, तथापि वर्तमान कालकी शरीरप्राय मनोवृत्तिको देखते हुए, ऊपर उठानेका यही क्रमिक उपाय मालूम पड़ता है। इन पाँच भूतोंमें सबसे पहले पृथिवीकी धारणा की जाती है। उस धारणाका यह स्वरूप है कि ये पाँचों भूत, जो इन्द्रियोंसे बाहर दीख रहे हैं, सब-के-सब मनके अन्दर हैं। इस मनुष्य शरीरमें पैरसे लेकर जानुपर्यन्त पृथिवीमण्डल है। उसका वर्ण हरतालके समान पीला है, उसकी स्थिति चतुष्कोण है, उसके अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा हैं, उसका बीज 'लं' है। प्राणोंको स्थिर करके उपर्युक्त पाँच धारणा करनी चाहिए। यह धारणा करते-करते ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं एक शरीरमें आबद्ध अथवा शरीर नहीं हूँ। मैं सम्पूर्ण पृथिवी हूँ। ये बड़े-बड़े नदी-नद मेरे शरीरकी नस-नाड़ियाँ हैं और सम्पूर्ण जीवोंके शरीर रोग अथवा आरोग्यके कीटाणु हैं। समस्त पार्थिव शरीर मेरे अपने ही अङ्ग हैं। घेरण्ड संहितामें कहा गया है कि पूर्वोक्त प्रकारसे पृथिवीकी धारणा करके जो उसे हृदयमें प्राणोंके साथ चिन्तन करते हैं वे सम्पूर्ण पृथिवीपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। शारीरिक मृत्युपर उनका आधिपत्य हो जाता है और सिद्ध होकर वे पृथिवीतलमें विचरण करते हैं। योगी याज्ञवल्क्यने कहा है कि पृथिवी-धारणा सिद्ध होनेपर शरीरमें किसी प्रकारके रोग नहीं होते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जल-धारणा इस प्रकार की जाती है—जानुसे लेकर पायु इन्द्रिय पर्यन्त जलका स्थान है। किसी-किसी आचार्यके मतमें जानुसे लेकर नाभिपर्यन्त जलका स्थान है। परन्तु योगी याज्ञवल्क्य यह बात नहीं मानते। जलमण्डल शंख चन्द्रमा और कुन्दके समान श्वेतवर्ण है, इसका बीज अमृतमय 'वँ' है। इसके अधिष्ठातृ देवता चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, शुद्ध स्फटिक मणिके समान श्वेतवर्ण मन्द-मन्द मुस्कराते हुए परम कोमल भगवान् नारायण हैं। इस जलमण्डलका चिन्तन करके प्राणोंके साथ इसको हृदयमें ले आयें और पाँच घटिकापर्यन्त चिन्तन करे। इसके चिन्तनसे ऐसा अनुभव होता है कि मैं जल-तत्त्व हूँ। पृथिवीका कण-कण मेरे अस्तित्वसे ही स्निग्ध है। स्वर्गीय अमृत और विष दोनों ही मेरे स्वरूप हैं। कुसुमोंकी सुकुमारता और पाषाणोंका पिण्डीभाव मेरे ही कारण है। पृथिवी मेरा ही परिणाम है। मैं ही पृथिवीके रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैं ही नारायणका आवासस्थान हूँ। अनुभवी सन्तोंने कहा है कि जल-धारणा सिद्ध हो जानेपर समस्त ताप मिट जाते हैं। अन्तःकरणके विकार धुल जाते हैं। अगाध जलमें भी उसकी मृत्यु नहीं होती।

अग्नि-धारणा इस प्रकार की जाती है—पायु इन्द्रियसे लेकर हृदयपर्यन्त अग्निमण्डल है। इसका वर्ण रक्त है, आकार त्रिकोण है। इसका मुख्य केन्द्र नाभि और 'रं' बीज है। इसके अधिष्ठात्री देवता रुद्र हैं। इनका चिन्तन करते हुए प्राणोंको स्थिर करे। जब यह धारणा सिद्ध हो जाती है, तब ऐसा अनुभव होता है कि मैं अग्नि हूँ। सम्पूर्ण वस्तुओंका रंग-रूप जो आँखोंसे देखा जाता है मैं ही हूँ। मणियोंकी चमक-दमक, पुष्पोंका सौन्दर्य और आकर्षण मेरे ही कारण है। सूर्य, चन्द्रमा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ग्रौर विद्युत्के रूपमें मैं ही प्रकाशित होता हूँ। जल ग्रौर पृथिवी मेरी ही लीला हैं। सबके उदरमें रहकर मैं ही शरीरका धारण ग्रौर पोषण करता हूँ। सबके नेत्रोंके रूपमें प्रकट होकर मैं ही सब कुछ देखता हूँ। समस्त देवताग्रोंका शरीर मेरे द्वारा बना है। पाँच घटिकापर्यन्त ग्रग्नि-धारणा सिद्ध होनेसे कालचक्रका भय नहीं रह जाता। साधकका शरीर यदि धधकती हुई ग्रागमें डाल दिया जाय तो वह जलता नहीं। इस धारणामें रुद्रका चिन्तन इस प्रकार किया जाता है—रुद्र भगवान् मध्याह्न कालीन सूर्यके समान प्रखर तेजस्वी हैं, ग्राँखें तीन हैं। सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाये हुए हैं, प्रसन्नतासे वर देनेको उत्सुक हैं।

वायु—धारणा इस प्रकार की जाती है-हृदयसे लेकर भौंहोंके बीचतक वायुमण्डल है, इसका वर्ण ग्रञ्जन-पुञ्जके समान काला है। यह ग्रमूर्त तत्त्व शक्तिरूप है, इसका बीज हैं 'यं'। इसके ग्रधिष्ठातृ देवता हैं—ईश्वर। प्राणोंको स्थिर करके हृदयमें इसका चिन्तन करना चाहिए। इसकी भावना जब पाँच घटिकातक होने लगती है तब ऐसा ग्रनुभव होता है कि मैं वायु हूँ। ग्रग्नि मेरा ही एक विकास है। इस ग्रनन्त ग्राकाशमें सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी ग्रादिको मैंने ही धारण कर रक्खा है। यदि मैं नहीं होता तो ये सब इस शून्यमें निराधार कैसे टिक पाते? मेरी सत्ता ही इनकी सत्ता है। प्रत्यक वस्तुमें जो ग्राकर्षण-विकर्षण शक्ति है, वह मैं ही हूँ। ये ब्रह्माण्डमण्डल मेरे क्रीड़ा-कन्दुक हैं, मैं गतिस्वरूप हूँ। सबकी गतियाँ मेरी कला हैं। समुद्रमें मैं ही तरङ्गें उछालता हूँ। बड़े-बड़े वृक्षोंको झकझोरकर मैं ही पुष्पवर्षा करता हूँ। सबका श्वासोच्छ्वास बनकर मैं ही सबको जीवनदान कर रहा हूँ। मेरी गति ग्रबाध है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

शास्त्रोंमें कहा गया है कि यह वायु धारणा-सिद्ध होनेपर साधक निर्द्वन्द्व भावसे आकाशमें विचरण कर सकता है। जिस स्थानमें वायु नहीं हो, वहाँ भी वह जीवित रह सकता है। वह न जलसे गलता, न आगसे जलता और न वायुसे सूखता। बुढ़ापा और मौत उसका स्पर्श नहीं कर सकते।

आकाशकी धारणाका प्रकार निम्नलिखित है—भौंहोंके बीचसे मूर्धापर्यन्त आकाशमण्डल है। समुद्रके शुद्ध निर्मल जलके समान इसका वर्ण है। इसका बीज है 'हं'। इसके अधिष्ठातृ देवता हैं—आकाशस्वरूप भगवान् सदाशिव। शुद्ध स्फटिकके समान श्वेत वर्ण है, जटापर चन्द्रमा है। पाँच मुख, दस हाथ और तीन आँखें हैं। हाथोंमें अपने अस्त्र-शस्त्र लिये हुए, दिव्य आभूषणोंसे आभूषित वे समस्त कारणोंके कारण, पार्वतीके द्वारा आलिङ्गित, भगवान् सदाशिव प्रसन्न होकर वरदान दे रहे हैं। प्राणोंको स्थिर करके पाँच घटिकापर्यन्त धारणा करे। इसका अभ्यास करनेसे ऐसा अनुभव होता है कि मैं आकाश हूँ। मेरा स्वरूप अनन्त है। देश, काल, मुझमें कल्पित हैं। मैं अनन्त हूँ इसलिए मेरा कोई अंश नहीं हो सकता। मेरी सम्पूर्ण विशेषताएँ मनके द्वारा आरोपित हैं। मन ही मुझमें हृदयाकाश और बाह्याकाशकी कल्पना करता है। मैं घन हूँ, एकरस हूँ। न मेरे भीतर कुछ है न बाहर। मैं सन्मात्र हूँ। इस आकाश-धारणाके सिद्ध होनेपर मोक्षका द्वार खुल जाता है। सारी सृष्टि मनोमय हो जाती है। सृष्टि और प्रलयका कोई अस्तित्व अथवा महत्त्व नहीं रह जाता। मृत्युके वाच्यार्थका अभाव हो जानेसे केवल उसका लक्ष्यार्थ शेष रहता है, जो अपना स्वरूप है।

इन धारणाओंका साधारण क्रम यह है कि पहले पृथिवीमण्डलका चिन्तन करके उसको जलमण्डलमें विलीन कर दे।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जलमण्डलको अग्निमण्डलमें, अग्निमण्डलको वायुमण्डलमें और वायुमण्डलको आकाशमें। इस प्रकार क्रमशः कार्यको कारणमें विलीन करते हुए सबको परम कारण सदाशिवमें स्थापित करे और अन्ततः सदाशिवको आत्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप जानकर उन्हींके स्वरूपरूपसे स्थित हो जाय। इस विषयमें अनुभवी योगियोंका ऐसा उपदेश है कि प्रत्येक मण्डलका चिन्तन करते समय प्रणवके द्वारा तीन-तीन प्राणायाम करके कार्यमण्डलको कारणमण्डलमें हवन कर दे—

'ॐ अमुकमण्डलं अमुकमण्डले जुहोमि स्वाहा'

इसी प्रकार सम्पूर्ण मण्डलोंका लय करके अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो जाना चाहिए।

ब्रह्मवेत्ता परम योगी देव-वैद्य अश्विनीकुमारोंने कहा है कि सबके शरीर पाञ्चभौतिक हैं, इन शरीरोंमें तीन तत्त्व हैं—वात, पित्त और कफ। पञ्चभूतोंकी इस धारणासे ये तीनों तत्त्व शुद्ध हो जाते हैं। अग्निधारणासे वातज दोष, पृथिवी और जलकी धारणासे श्लेष्मज दोष निवृत्त हो जाते हैं। वायुधारणासे पित्तज और श्लेष्मज दोष नष्ट हो जाते हैं। आकाशधारणासे त्रिदोषजनित सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।

पञ्चभूतोंकी इस धारणासे कैसे-कैसे विविध अनुभव होते हैं, इसका वड़ा सरस वर्णन योगवासिष्ठान्तर्गत निर्वाण प्रकरणके उत्तरार्द्धमें अट्ठासीवें सर्गसे बानवे सर्गतक हुआ है। उसको पढ़नेसे आनन्दका वड़ा विकास होता है। विस्तारभयसे यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया जा सकता। साधकोंको वहीं उसका अनुशीलन करना चाहिए। इस धारणासे यह अनुभूति तो बहुत ही शीघ्र होने लगती है कि यह स्थूल प्रपञ्च मनोमय है। आगे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

चलकर मनकी चिन्मयताका अनुभव होता है और यही स्फूर्ति और जड़त्ववासनासे शून्य अन्तःकरणकी शुद्धि है। इस शुद्ध अन्तःकरणमें तत्त्वको स्वीकार करनेकी योग्यता जाती है, तब उस विशुद्ध एकरसतत्त्वका बोध होता है। बोध ही समस्त साधनोंका चरम और परम फल है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

क्रिया, भावना और बोध

'भगवन्, कुछ उपदेश कीजिये।'

'पहले तुम यह निश्चय करो कि तुम्हारे लिए क्या सुनना आवश्यक है। जो आवश्यक जान पड़े, उसके भीतर प्रवेश करो, उसके सम्बन्धमें विचार करो। यदि कोई ऐसी समस्या तुम्हारे सामने आजाय, जिसे तुम हल न कर सको तो उसका उत्तर पूछो। इससे प्रश्नकर्ताके अधिकारका पता चल जाता है और उत्तर देनेवाला उसी भूमिके अधिकारीके उपयुक्त उत्तर देता है। भूखके अनुसार ही भोजनकी व्यवस्था होनेसे हित होता है। जिज्ञासाके अनुसार ही सामाधान होना चाहिए।'

'महाराज, इतनी इच्छाएँ हैं और उनकी इतनी उलझनें हैं कि यह पता ही नहीं चलता, कि मैं क्या चाहता हूँ। सबसे पहले मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं अपनी एकमात्र प्रधान इच्छाको पहचानूँ, इसका क्या उपाय है?'

'एकान्तमें बैठकर भगवान्के आश्रय और शक्तिसे समस्त इच्छाओं और सङ्कल्पोंको दबानेकी, उनके निर्मूल करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। अदम्य उत्साह और वीरताके साथ निःसङ्कल्प होनेकी चेष्टा करनेपर सब इच्छाएँ पराभूत हो जायँगी। एक वही इच्छा रह जायगी, जो अनादि कालसे अब तकके असंख्य जीवनोंमें कभी पूरी नहीं हुई और जो केवल भगवत्प्राप्तिसे ही पूरी हो सकती है।'

'तब क्या, अबतक केवल भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही पूर्ण नहीं हुई है, और सब इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं?'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'हाँ, ऐसी ही बात है। अनादि कालसे विभिन्न योनियों असंख्यों बार जन्मते-मरते रहनेसे सांसारिक इच्छाएँ अनेक बार पूरी हो चुकी हैं; परन्तु भगवत्प्राप्तिकी इच्छा पूर्ण तो नहीं होती, वह सचाई के साथ कभी हुई ही नहीं, अन्यथा वह पूर्ण हो गयी होती और हम शोक, मोह आदिसे मुक्त हो गये होते।'

'प्रभो, क्या यह भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही भक्ति है?'

'यह भी भक्ति है; परन्तु इतनेसे ही भक्तिकी व्याख्या पूर्ण नहीं होती; क्योंकि यह तो केवल साधनकालकी भक्ति है। इसमें भक्तकी प्रत्येक क्रिया और भावना भगवान्‌को लक्ष्य करके होती है। इसे अभी भगवान् प्राप्त नहीं है; परन्तु भक्ति तो उनकी प्राप्तिके बाद भी होती है। एकमें उनके मिलनकी तीव्र लालसा है तो दूसरेमें उनके मिलनका दिव्य रस। विरह और मिलन दोनों ही भक्ति हैं, यदि वे भगवान्‌से हों।'

'इस दृष्टिसे तो भक्ति भावमात्र सिद्ध होती है; क्योंकि विरह और मिलन दोनों ही भाव हैं—क्या ऐसा सोचना ठीक है?'

'भक्ति भाव और रस दोनों है। साधनावस्थाका भाव ही परिपक्व होकर रस हो जाता है। परन्तु इस भावका परिणाम नहीं है, प्रत्युत भाव ही रसका विवर्त है। इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि जीवका भगवान्‌से मिलन तो स्वतःसिद्ध है, केवल पार्थक्यका परदा दूर करना पड़ता है। यदि यह संयोग कृत्रिम हो तो फिर वियोग अवश्यम्भावी है; परन्तु भगवान् तो मिले हुए ही हैं, इसलिए उनका मिलन नित्य है और उसके सम्बन्धकी इच्छा, जिसे भाव कहते हैं, मिलनका होनेके कारण रसका विवर्त, वस्तुतः रस ही है।'

• • •

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'इस रसकी अनुभूतिका उपाय क्या है ?'

'नित्यसिद्ध रसका बोध और उनकी भावना।'

'उपायोंमें आपने कर्मकी परिगणना नहीं की ?'

'कर्म भावनाके अन्तर्गत है। बिना भावनाके कर्मका कोई महत्त्व नहीं है। जिस निष्काम कर्मकी महिमा गायी जाती है, उसमें निष्कामता भावना ही है और उसीके कारण कर्म साधन है। जो भावनाके स्तरमें नहीं पहुँचे होते, उनके लिए साधनके रूपमें किसी विशेष कर्मका निर्देश होता है। वह कर्म इसीलिए साधन है कि वह एक विशेष प्रकारकी भावना उत्पन्न करता है। जो कर्म भावनाहीन है और भावना उत्पन्न भी नहीं करता, वह व्यर्थ है। उससे न स्वर्ग होगा न नरक। इसीसे बुद्धिमान् पुरुष कर्मके स्वरूपपर नहीं, उसके उद्देश्यपर ध्यान रखते हैं। एक अच्छी क्रिया भी उद्देश्यकी निकृष्टतासे पतनका कारण बन सकती है और देखनेमें निकृष्ट क्रिया भी भावकी पवित्रतासे उन्नतिका कारण बन सकती है। इसीलिए कर्मकी स्वतन्त्र गणना न करके उसे भावनाके अन्तर्गत कहा गया है।'

'क्या केवल सेवाकर्म साधन नहीं हो सकता ?'

'इसका उत्तर हो गया है। स्पष्ट समझ लीजिये, यदि सेवाकर्म सेवाभावसे युक्त है, तब तो परमात्माकी प्राप्तिका साधन है। सेवाभावसे रहित है तो आगे चलकर सेवाभाव उत्पन्न करेगा। यदि सेवाकर्म करनेवालेके मनमें कोई दूसरा भाव है तो वही पतनका हेतु होगा।'

'कर्म करनेकी विधि क्या है ?'

'फलासक्ति, कर्मासक्ति और कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर प्रत्येक कर्तव्यको, भगवान्की ओर लक्ष्य रखते हुए, करते जाना यही कर्मकी विधि है।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'फलासक्तिका न होना तो ठीक है, यह कर्मासक्ति क्या है ?'

'फलकी इच्छा न होनेपर भी किसी विशेष कर्ममें राग होना कर्मासक्ति है। साधनके कर्मका उद्देश्य कर्मकी पूर्णता नहीं है, जीवनकी पूर्णता है। इसलिए वह सर्वदा अपने प्रभुकी ओर देखा करता है कि वे कब क्या इशारा करते हैं। कर्म अधूरा रहे या पूरा हो जाय, यह तो उनके संकेतसे—इंगितसे उसमें लगा है। जब वे हटाते हैं तब क्यों न हटेगा ? इस प्रकार निरन्तर उनके आदेशकी प्रतीक्षा करते रहना हो कर्मासक्तिका त्याग है।'

'कर्तृत्वाभिमानका राहित्य तो ज्ञानसे ही सम्भव है, भक्त इससे रहित कैसे हो ?'

'आत्मसमर्पण अथवा शरणागतिसे ही भक्त कर्तृत्वाभिमानसे भी मुक्त हो जाता है। यदि विचार करके देखा जाय तो भगवान्‌के महान् कर्तृत्वके सामने जीवका कर्तृत्व इतना क्षुद्र और अल्प है कि किसी प्रकार उसकी सत्ताका निश्चय नहीं होता। भक्तकी जब इस बातपर दृष्टि जाती है; तब वह पहले तो अपनेको कर्ता मानता ही नहीं ? यदि उसे 'कर्ता'की प्रतीति होती है तो उसे वह अपने भगवान्‌को समर्पित कर देता है। वह सोचता है—जगत्‌का अणु-अणु तो इसीके द्वारा सञ्चालित हो रहा है। चराचरके शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, आत्मा सबकी सत्ता भगवान्‌से है—भगवान्‌में है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई सङ्कल्प नहीं, जो प्रभुके सङ्कल्पके विपरीत हो। इसलिए सम्पूर्ण जगत्, सम्पूर्ण जीव और सम्पूर्ण मैं—जैसा कभी था, है; या होगा—सब-का-सब प्रभुकी शरणमें है—कभी शरणसे बाहर हो नहीं सकता—रह नहीं सकता। 'शरण' क्रिया या भाव नहीं है, सत्य है। शरण स्वतःसिद्ध है। कर्तृत्व और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भोक्तृत्व मेरा एक भ्रम था, जिसके कारण मैं रो रहा था, दु:खी था। वह भी मेरे खिलाड़ी प्रभुकी एक प्रेमभरी लीला थी। आज उन्होंने अपनी लीलाका दूसरा पहलू सामने कर दिया। आज मैंने देखा कि उनके अतिरिक्त कोई कर्ता नहीं है—मैं देखनेवाला भी नहीं। केवल वही और केवल वही है, यह कहना भी नहीं बनता। ऐसा निश्चय हो जानेपर कर्तृत्वाभिमानका लेश भी नहीं रहता। भक्तकी बुद्धि, मन, प्राण, शरीर आदि भगवान्के द्वारा प्रेरित होकर—भगवत् सत्तासे एक होकर यथास्थिति व्यवहार करते रहते हैं। ज्ञानीका 'वह' 'मैं' हो जाता है और भक्तका 'मैं' 'वह' में समा जाता है। रहता है एक ही।'

'फिर ज्ञानी और भक्तमें अन्तर क्या रहा ?'

साधनाका फल तो सब अन्तरोंको मिटा देना है। साधन-कालमें मार्गमें अवश्य ही अन्तर रहता है–सिद्धिमें सब एक हैं। ज्ञानीकी दृष्टिमें प्रपञ्चकी पारमार्थिक सत्ता नहीं रहती। इसलिए उसका प्रारब्धके अनुसार व्यवहार मानना स्वाभाविक है। परन्तु भक्तकी दृष्टिमें तो यह दृश्यमान जगत् भी प्रभुमय ही है–उनकी लीला ही है। वह सब कुछ उन्हींके द्वारा प्रेरित सञ्चालित देखता है। दोनोंकी ही दृष्टिमें अपना कर्तृत्व नहीं है। दोनोंका व्यवहार परप्रेरित है।'

'यह मान लिया कि भावनाके द्वारा भी कर्तृत्वाभिमान शान्त हो जाता है। पर वोधके द्वारा वह किस प्रकार शान्त होता है ?'

'अन्त:करणकी किसी स्थितिको भावना कहते हैं। निर्विकल्प समाधिपर्यन्त सभी अन्त:करणकी ही स्थितियाँ हैं। अन्त:-करणको एक स्थितिसे दूसरी स्थितिमें ले जाना भावना है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जो स्पष्ट पत्थर दीख रहा है, उसे देवता मानना भावना है; यह उपयोग और लाभकी दृष्टिसे है। परन्तु सत्यका बो हानि-लाभकी परवाह नहीं करता। वह वस्तुको ज्यों-का-त्यों दिखा देता है। वह कोई अन्त:करणकी स्थिति नहीं है। अन्तः करण रहे, न रहे, चाहे जैसा रहे, वह एकरस ही रहता है। बोधस्वरूप अनन्त शान्त चिद्वस्तु ही केवल सत्य है। उसके अज्ञानसे नानात्वकी प्रतीति हो रही है। इसलिए प्रतीत अप्रतीत जो कुछ भाव-अभाव और उभयातीत है, सब निर्वि परमात्मा ही है। इसमें न कर्ता है, न कर्म और न उनका संयोग ही। इस सत्यके साक्षात्कारसे किसी प्रकारके अभि मानके लिए कहीं अवसर ही नहीं रहता। कर्तृत्वाभिमान निवृत्तिके लिए किसी भी क्रिया, भावना अथवा स्थिति अपेक्षा नहीं रहती। निरपेक्ष निर्विकल्प बोध ही है— सत्य है।'

'बोधको भी वृत्तियोंकी ही एक अवस्था क्यों न मानें ?'

'वृत्तियाँ परिणामिनी हैं और बोध एकरस है। बो वृत्तियोंका अस्तित्व ही नहीं है। बोधकी उपलब्धि ही सम वृत्तियोंका निषेध और अन्तमें निषेधका भी निषेध कर देने होती है। इस अनिर्वचनीय नित्योपलब्ध साक्षात् अपरोक्ष को—जिसकी वृत्तियों, स्थितियों और इनके परेके निर्वचन पृथक्ता स्वयंसिद्ध है—वृत्तियोंकी ही एक अवस्था कैसे जा सकता है।'

'जब समस्त स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चका कारण अज्ञान बत जाता है, तब यह प्रश्न स्वत: ही उठता है कि अज्ञान किस हुआ, क्यों हुआ ?'

'यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अज्ञान अथवा मायाका स्व

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ज्ञात है या अज्ञात ? यदि अज्ञात है तब तो यही कहना पड़ेगा कि जिसको अज्ञानका स्वरूप ही अज्ञात है वह उसके आश्रय और कारणको कैसे जान सकता है ? यदि अज्ञानका स्वरूप ज्ञात हो, तब तो वह अज्ञान नहीं, ज्ञान ही है; क्योंकि अज्ञान और उसका स्वरूप—ये दो वस्तु तो हैं नहीं, परमार्थत: एक ही वस्तु है। दूसरी बात यह है कि कहीं भी अज्ञानका वस्तुरूपसे वर्णन नहीं हुआ है। यह तो वस्तुमें—अधिष्ठानमें अध्यस्त है। विवेकदृष्टिसे अध्यस्तकी अपेक्षा अधिष्ठान पृथक् है; परन्तु अधिष्ठानकी अपेक्षा अध्यस्त पृथक् नहीं है। इसीसे जिनकी दृष्टिमें दृश्यमान प्रपञ्च सत्य है, उनकी कारणविषयक जिज्ञासा-का समाधान करनेके लिए अज्ञान अथवा मायाका अध्यारोप किया गया है, अध्यारोप केवल समझानेके लिए है। बात समझ लेनेपर उसका अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इसीसे आचार्योंका यह उत्तर सर्वथा सङ्गत है कि जो पूछता है, उसे ही अज्ञान है। ये ज्ञान-अज्ञान किसे होते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर यदि अन्तर्दृष्टिसे स्वयं सोचा जाय तो दोनोंके अधिष्ठान चिद्वस्तुका वोध हो जाय और अज्ञानके सम्बन्धमें कोई प्रश्न ही न उठे।'

'क्या ज्ञान होनेपर ऐसी स्थिति नहीं हो जाती कि जगत्की प्रतीति ही न हो ?'

'प्रतीतिसे अज्ञानका कोई विरोध नहीं है। ज्ञानका विरोध है उस अज्ञानसे, जो प्रतीतिमें कार्य-कारणभावको सत्यता देकर आत्मस्वरूपको तिरोहित-सा कर देता है। गगनकी नीलिमाका मिथ्यात्व निश्चय हो जानेपर उसकी प्रतीति रहती ही है। जपा-कुसुमके सान्निध्यसे स्फटिककी प्रतीयमान रक्तिमा उसकी श्वेतिमाका ज्ञान होनेपर भी रहती ही है। केवल उसमें सत्यत्व

७

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जननी है। भावना वृत्ति होनेपर भी ज्ञानीकी दृष्टिमें तो ज्ञान स्वरूप ही है। इसलिए वह बोधसे पृथक् नहीं है।'

'भावना और बोधमें क्या अन्तर है?'

'भावनाकी मूल प्रेरणा है श्रद्धा। पुनः पुनः आवृत्ति है उसका स्वरूप है। अपने अभीष्ट साध्य वस्तुकी उपलब्धि अर्थात् साध्याकारवृत्ति उसका फल है। बोधकी मूल प्रेरणा है, प्रमाण वृत्तिकी प्रधानतासे अनुसन्धान, शोध अथवा खोज। श्रद्धा और मान्यता इसमें गौण होती है। नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा इसमें काम करती रहती है। इसलिए आवृत्ति भी इसमें गौण हो जाती है। बोध अभीष्ट वस्तु नहीं; सिद्ध वस्तुपर पड़े हुए अविद्या आवरणका भङ्ग कर देता है। भावना कर्ताके अधीन होती है, वह चाहे करे, न करे, उलटी करे, वह स्वतन्त्र है परन्तु बोध कर्तृतन्त्र नहीं है, वस्तुतन्त्र है। अर्थात् उसमें कर्ता की मनमानी नहीं चलती। वस्तुका जैसा स्वरूप होता है वैसा ही बोध होता है। बोधके करने-न-करने या बदलनेमें कर्ताका कोई स्वातन्त्र्य नहीं है। भावनासे कर्तृत्वाभिमानकी शान्ति होती है और बोधसे कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदिके भ्रमकी आत्यन्तिक निवृत्ति। इसलिए साधनकी दृष्टिसे भावना और बोधमें बहुत अन्तर है; परन्तु बोधवान् पुरुषकी दृष्टिसे अपने बोधस्वरूप प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरी वस्तु न होनेके कारण अखण्डार्थ भावना और अखण्डार्थ बोध—दोनों ही अपने स्वरूप हैं, परमार्थतः कोई भेद नहीं है।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अध्यात्मवादकी कसौटीपर नारीधर्म

प्रश्न—महात्माओंकी दृष्टिमें नारी क्या है ?

उत्तर—जो नर है। अभिप्राय यह है कि महात्माओंकी दृष्टिमें नारी और नरका भेद नहीं होता। जो ज्ञानमार्ग द्वारा सिद्ध हैं, उनकी दृष्टिमें ब्रह्मके सिवा और सब नाम-रूप-क्रियात्मक प्रपञ्च मिथ्या है अर्थात् केवल ब्रह्म ही, प्रत्यगात्मा ही एक तत्त्व है। श्रीमद्भागवतमें एक संकेत है। स्नान करते समय अवधूत शुकदेवको देखकर देवियोंने वस्त्र धारण नहीं किया, व्यासजीके आते ही दौड़कर धारण कर लिया। यह आश्चर्यचर्या देख व्यासजीने पूछा—'ऐसा क्यों ?' देवियोंने उत्तर दिया—'तुम्हारी दृष्टिमें स्त्री-पुरुषका भेद बना हुआ है, परन्तु तुम्हारे पुत्रकी एकान्त और निर्मल दृष्टिमें वह नहीं है।'

'तवास्ति स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः।' (१।४।५)

जो भक्तिमार्ग द्वारा सिद्ध हैं, उनकी दृष्टिमें भी प्रभुके सिवा और कुछ नहीं है। वे श्रुति भगवतीके शब्दोंमें ही कहते रहते हैं—'**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी**।' 'तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष। तुम्हीं कुमार हो और तुम्हीं कुमारी।'

महात्माओंकी दृष्टिमें नारी और नरका साम्य नहीं—एकत्व है, नारी-नरका ही नहीं, सम्पूर्ण।

प्र०—क्या नारीको प्रकृति और नरको पुरुष समझना उचित है ?

उ०—नितान्त अनुचित। जीव चाहे नरके शरीरमें हो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अथवा नारीके, वह चेतन पुरुष ही है। शरीर नारीका हो अथवा नरका, वह प्रकृति ही है। इसलिए नारीको प्रकृति मानकर जो उसे भोग्य समझते हैं उनकी दृष्टि अविवेकपूर्ण है। भगवान् श्रीकृष्णने शरीरको क्षेत्र और जीवको क्षेत्रज्ञ—चेतन कहा है, भले ही वह किसी भी योनिमें हो।

प्र०—जब नारीके रूपमें भी चेतन जीव ही है, तब शास्त्रोंमें उसकी इतनी निन्दा क्यों की गयी है ?

उ०—चेतन जीवकी निन्दा कहीं भी नहीं की गयी है। निन्दा है प्राकृत शरीरकी, वह चाहे नरका हो या नारीका। शरीरमें आत्मभाव, आसक्ति और अभिनिवेशके रूपमें फैली हुई अविद्याका नाश करनेके लिए ही उसकी क्षणभङ्गुरता, अपवित्रता, दुःखरूपता आदिका विवेचन किया जाता है। नारी अथवा नरके शरीरको सत्य, आत्मा, रमणीय एवं प्रिय माननेसे जो भोग्यबुद्धि होती है, वही समस्त अनर्थोंकी जननी है। नरकी बुद्धिमें चिरकालसे नारीके प्रति जो भ्रान्तिमूलक भोग्यभाव हो रहा है, उसके निषेधमें निन्दाका तात्पर्य है। नारी भी भ्रमवश अपनेको शरीर मानती है। इसलिए जब उसकी कोई निन्दा करता है तब चिढ़ती है और प्रशंसा करता है तब प्रसन्न होती है। यह दृष्टिकोण सर्वथा भ्रान्त है। नारी-शरीरकी निन्दा करनेवाले प्रतिक्षण नारीको यह प्रेरणा देते हैं कि तुम शरीर नहीं हो, शुद्ध चेतन हो। इसी ज्ञानसे संसारके सब हर्ष-विषादरूप विकारोंपर विजय प्राप्त करके मोक्षप्राप्ति की जाती है। इसके विपरीत प्रशंसा करनेवाले शरीरमें ही आत्मभाव और आसक्तिको दृढ़ कराते हैं ,एवं असङ्ग चेतनको ऐसी स्थितिमें रहनेकी प्रेरणा देते हैं; जिसमें वह अपनेको शरीर मानता रहे और इसीको सजा-सिंगारकर दूसरे शरीराभिमानियोंके सामने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपनेको भोग्यरूपसे उपस्थित करता रहे। यह नारी-शरीरकी प्रशंसा करनेवाले वास्तवमें नारी-जातिके शत्रु हैं और उन्हें चिरकालतक अपना भोग्य बनाये रखनेके लिए झाँसा देते रहते हैं। यदि नर नारीको अपना भोग्य मानता है तो वह नारीका सरासर अपमान करता है। जो निन्दा करता है, वह अपनेको उसे भोग्य माननेकी भूलसे बचानेकी चेष्टा करता है और वास्तवमें वही नारीका सम्मान करता है।

प्र०—निन्दकोंके प्रति नारीका क्या दृष्टिकोण होना चाहिए ?

उ०—शरीरं यदि निन्दन्ति सहायास्ते जना मम।
आत्मानं यदि निन्दन्ति स्वात्मानं निन्दयन्ति ते॥

विचारकी आँखसे देखना चाहिए कि 'वे किसकी निन्दा करते हैं—शरीरकी या आत्माकी ? यदि शरीरकी, तब तो वे हमारे हितैषी हैं, देहाभिमान छुड़ाकर नारीको शुद्ध-बुद्ध-मुक्त चेतनके रूपमें देखना चाहते हैं। यदि वे आत्माकी निन्दा करते हैं—जो कि नारी-नर सबका एक ही है, तब तो वे अपनी ही निन्दा करते हैं—उन्मत्त प्रलापपर ध्यान देनेकी क्या आवश्यकता है ?'

प्र०—यदि नारीको नर भोग्य समझता है तो इसमें क्या दोष है ?

उ०—अनेक दोष हैं—

१. एकमात्र परमात्मा ही सत्य है—इस तात्त्विक सिद्धान्तसे च्युत हो जाना।

२. अपनेको देहाभिमानी भोक्ता मान बैठना।

३. नारीको पाञ्चभौतिक पुतला मानकर उसके प्रति स्थूल खाद्य पदार्थ अन्न-जल आदिके समान व्यवहार करके अपमानित

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

करना। इसी प्रवृत्तिसे लोग स्त्री जातिको सामान्य धन सम[झ]कर व्यापार करते हैं।

४. अपवित्रमें रमकर स्वयं नष्ट होना और दूसरोंको न[ष्ट] करना इत्यादि।

प्र०—नारीको माया कहनेका क्या अभिप्राय है ?

उ०—माया शब्दका प्रयोग उत्तम और अधम दोनों अर्थों[में] होता है। तथापि यहाँ दूसरे अर्थपर विचार किया जाता है। मायाका अर्थ है—हो कुछ और दिखाये कुछ और। नर भ्रान्ति परम्परामें विचरता हुआ इस स्थितिमें पहुँच गया कि [व]ह अन्यकी अपेक्षा, भोगवासनाके आवेशमें नारी-रूपधारी अस[त्] चेतनको ही भोग्य समझने लगा। नारीने सहयोग दिया—[मैं] सचमुच तुम्हारी भोग्या हूँ। यह छलना है—माया है। वस्तु[तः] भोक्ता और भोग्यका भेद झूठा है। यदि देहावेशको स्वीका[र] करलें तो भी दोनों भोक्ता हैं। इस छलनामें भोग्यता[के] प्रदर्शनमें जो नारियाँ आगे रहीं, उन्हें ही माया क[हा] गया है।

प्र०—जब नारी और नर दोनोंके शरीर मायिक अथ[वा] प्राकृत हैं और दोनों ही आत्मदृष्टिसे शुद्ध चेतन हैं, तब केव[ल] नारियोंकी ही इतनी निन्दा क्यों ?

उ०—शास्त्रका अभिप्राय केवल नारीकी निन्दा करने[का] नहीं है। तत्त्वदृष्टिसे वह तत्त्व दर्शनभेदसे चाहे ब्रह्म हो, प्रकृ[ति] हो, कर्म हो, पञ्चभूत हो, कुछ भी क्यों न हो, नारी और नर[में] भेद नहीं। जहाँ निन्दा है वहाँ शरीरकी ही है। जैसे [न]र साधकोंको नारीके प्रति भोग्यबुद्धिरूप पापसे बचानेके लि[ए] नारी-शरीरकी निन्दा शास्त्रोंमें मिलती है, वैसे ही नारी साधकोंको नरके प्रति भोग्यबुद्धिरूप पापसे बचानेके लिए नर[...]

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja[ga]

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शरीरकी निन्दा प्राप्त होती है। श्रीरुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णसे कह रही हैं—

'त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्दर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफवातपित्तम्।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा यो ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥'

(श्रीमद्भा० १०।६०।४५)

'यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा ही है। ऊपरसे चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और केशोंसे ढका हुआ है; परन्तु इसके भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मल मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। जो स्त्री इसे अपना प्रियतम पति समझकर सेवन करती है वह अवश्य ही अत्यन्त मूर्खा है और सच पूछिये तो उसे कभी आपके चरणारविन्दके मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है।'

इस प्रसंगसे पिंगलाके वचन भी अनुसंधान करने योग्य हैं—

'हाय! हाय! मैं इन्द्रियोंके अधीन हो गयी। भला, मेरे मोहका विस्तार तो देखो—मैं इन दुष्ट पुरुषोंसे, जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं है, विषय-सुखकी लालसा करती हूँ। कितने दुःखकी बात है! मैं सचमुच मूर्खा हूँ। देखो तो सही, मेरे निकटसे-निकट हृदयमें ही मेरे सच्चे स्वामी भगवान् विराजमान हैं। वे वास्तविक प्रेम-सुख और परमार्थका सच्चा धन भी देनेवाले हैं। जगत्के पुरुष अनित्य हैं और वे नित्य हैं। हाय! हाय! मैंने उनको तो छोड़ दिया—और उन तुच्छ मनुष्योंका सेवन किया जो मेरी एक भी कामना पूरी नहीं कर सकते। कामना-पूर्तिकी बात तो अलग रही, वे उलटे भय, दुःख आधि-व्याधि, शोक और मोह ही देते हैं यह मेरी मूर्खताकी हद है कि मैं उनका सेवन करती हूँ। बड़े खेदकी बात है, मैंने अत्यन्त निन्दनीय आजीविका वेश्यावृत्तिका आश्रय लिया और व्यर्थमें

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अपने शरीर और मनको क्लेश दिया, पीड़ा पहुँचायी। मेरा यह शरीर बिक गया है। लम्पट, लोभी और निन्दनीय मनुष्योंने इसे खरीद लिया है और मैं इतनी मूर्खा हूँ कि इस शरीरसे धन और रति-सुख चाहती हूँ। मुझे धिक्कार है। यह शरीर एक घर है। इसमें हड्डियोंके टेढ़े-तिरछे बाँस और खम्भे लगे हुए हैं। रोएँ और नाखूनोंसे यह छाया गया है। इसमें नौ दरवाजे हैं, जिनसे मल निकलते ही रहते हैं। इसमें सञ्चित सम्पत्तिके नामपर केवल मल और मूत्र हैं। मेरे अतिरिक्त ऐसी कौन स्त्री है, जो इस (अपने या प्रियतमके) स्थूल शरीरको प्रिय समझकर सेवन करेगी ?'

कहनेका अभिप्राय यह है कि केवल नारियोंकी निन्दाका आरोप झूठा है। स्वदेहमें आत्माबुद्धि, परदेहमें आत्मीय एवं प्रियबुद्धिका निषेध करनेके लिए समानरूपसे नारी और नर दोनों शरीरोंकी निन्दा है।

प्र०—ऐसी स्थितिमें विवाहका क्या प्रयोजन है ?

उ०—विवाहका प्रयोजन है—नारी और नर दोनोंकी वासनाओंका संकोच। विवाह-बन्धन भी एक प्रकारका योगाभ्यास है। बात यह है कि जीव नारी हो या नर, अनादिकालसे वासनाओंसे विजड़ित और संचालित होता रहा है। सभी योनियोंमें उनकी पूर्तिका ही रस लेता रहा और उन्हींके वश संसारमें भटकता रहा। यदि इसको मुक्त पाना है तो पूर्णरूपसे वासनारहित होना ही पड़ेगा; परन्तु एकाएक वासनाओंका सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है। इसलिए उनकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिपर नियंत्रण स्थापित करनेके लिए वासना-पूर्तिकी एक सीमा अथवा मर्यादा होना आवश्यक है। इसी लक्ष्यसे वासना-निवृत्तिके लिए नहीं, विवाहकी मर्यादा रक्खी

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

गयी है। शास्त्रोंमें विवाहको सन्ध्यावन्दनके समान नित्य विधिके अन्तर्गत न मानकर परिसंख्या विधिके अन्तर्गत माना गया है। आजकलके लोग इस लक्ष्यको भूलते जा रहे हैं—इसीसे वे भोगकी, वासनापूर्तिकी अधिक-से-अधिक सुविधा निकालनेको तत्पर हैं। इसका परिणाम होगा—विवाहके आध्यात्मिक उद्देश्यका नाश होनेसे उच्छृङ्खलताका साम्राज्य। जीव कभी वासना रहित नहीं हो सकेगा और न तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति होगी। विवाहका दृढ़-से-दृढ़ धर्म-बन्धन ही जीवको वासना-जालसे मुक्तकर परमार्थपदकी प्राप्ति करा सकता है।

प्र०—वर-वधूका चुनाव एक दूसरेकी रुचिसे होना चाहिए या गुरुजनोंकी ?

उ०—सर्वथा गुरुजनोंकी रुचिसे। जब यह निश्चित हो जाता है कि वासनाओंका संकोच या नियंत्रण ही विवाहका उद्देश्य है, तब सभी प्रश्नोंका उत्तर अपने-आप ही मिल जाता है। रूप, यौवन, विलासपर ध्यान रखकर विवाह करना तो विपरीत मार्ग है। गुरुजनोंकी आज्ञा मानकर, धर्मको सामने रखकर, वासनारोगकी निवृत्तिके लिए महोषधि समझकर ही विवाह करना चाहिए, भोगवासनासे नहीं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर गृहस्थधर्ममें जो स्त्री-पुरुषके मिलनपर प्रतिवन्ध है, ग्राम्यसुखभोगपर नियंत्रण है, सबकी युक्तियुक्तता सिद्ध हो जायगी। पातिव्रतधर्म, विधवाधर्म आदि समस्त नारी-धर्मोंका मूल तत्त्व यही है।

प्र०—यह दाम्पत्य-जीवन तो बहुत ही नीरस होगा ?

उ०—बिना-धर्म-बन्धनके सच्चे रसकी उत्पत्ति नहीं होती। लोगोंके मनमें रसकी उलटी कल्पना हो गयी है। वे भोगमें रस

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

समझते हैं। धर्मबन्धनमें कितना सरस भाव-प्रवाह है इ लिए विवाहका एक मन्त्र देखिये! वर वधूका दाहिना हा पकड़कर कहता है—

'अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहम्।
सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।'

'प्रिये! मैं विष्णु हूँ, तुम लक्ष्मी। तुम त्रयी हो, मैं त्रि मैं सङ्गीतमय सामवेद हूँ, तुम कवितामयी ऋचा (ऋग्वेद) हो। मैं अन्तरिक्ष हूँ और तुम पृथिवी।'

रस भावमें होता है, पदार्थ अथवा क्रियामें नहीं। दाम्पत्य इतना ऊँचा भाव है, उसमें नीरसताकी कल्पना सर्व असंगत है।

प्र०—अन्य पुरुषोंके प्रति नारीकी कैसी दृष्टि हो?

उ०—जब अपने पतिके सहवासका उद्देश्य ही काम विजय पाना है, तब ऐसी कोई भी दृष्टि जिससे काम-वासना उद्दीपन प्राप्त हो; किसीके प्रति भी कैसे की जा सक है? इसीसे चाहे पतिदेव इस लोकमें हों, न हों, नारीका यही है कि स्वप्नमें भी अपने मनमें बुरे भाव न आने दे। लोग वासनाओंका बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं और कहते कि नारी उन्हें वशमें नहीं कर सकती, वे नारीका अपम करते हैं। उनकी बातोंमें आकर अपने व्रतसे च्युत नहीं हो चाहिए और किसी भी दृष्टिसे पिता, भाई, पुत्र मानकर पर-पुरुषसे हेल-मेल नहीं बढ़ाना चाहिए। किसी-किसी कहना है कि भगवान् श्रीराम जब अत्रि मुनिके आश्रमपर तब अनुसूयाजी उन्हें दण्डवत् करनेतक नहीं आयीं, मिलने तो बात ही दूर है। वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि लङ्का श्रीहनुमानजीने श्रीजनकनन्दिनीसे कहा कि 'आप मेरी पीठ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बैठकर भगवान्के पास चलें।' उन्होंने स्पष्ट रूपसे मना कर दिया। बोलीं—'हरणके समय विवशताके कारण मुझे रावणका स्पर्श सहन करना पड़ा। अब मैं जान-बूझकर तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकती।' सती-साध्वी नारियोंके अन्त:करण स्वत: ही ऐसे पवित्र होते हैं।

प्र०—नारी अबला है, वह अपनी रक्षा कैसे करे ?

उ०—सती-साध्वी नारीमें अपरिमित शक्ति होती है। सावित्रीने अपने पातिव्रत्यके बलसे सत्यवानको यमराजके पंजेसे छुड़ा लिया। सतीका सङ्कल्प अमोघ है। महाभारतके उद्योग-पर्वमें शाण्डिली ब्राह्मणीकी कथा है। उसकी महिमा देखकर गरुड़की इच्छा हुई कि इसको भगवान्के लोकमें ले चलें। गरुड़के अङ्ग गल गये। क्षमा माँगनेपर शाण्डिलीने फिर ठीक कर दिया। अनसूयाके सामने ब्रह्मा, विष्णु, महेशको बालक बनना पड़ा। पतिव्रताके भयसे सूर्यको रुक जाना पड़ा—पुराणोंमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं। जो धर्मकी रक्षा करता है—ईश्वर, धर्म, देवता, सम्पूर्ण विश्व उसकी रक्षा करता है। रक्षा तो अपने मनकी ही करनी चाहिए। यदि मन सुरक्षित है तो कोई भी, स्वयं मृत्यु भी किसीका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

प्र०—यह तो आध्यात्मिक बलकी बात हुई, आजकी नारीजातिमें ऐसा बल कहाँ ?

उ०—आजकलकी बात और है। नारी स्वयं ही अपना स्वरूप और गौरव भूलती जा रही है। वह वासनापूर्तिकी सड़कपर सरसरायमाण गतिसे भागती दीखती है। वह बनठनकर मनचले लोगोंकी आँखें अपनी ओर खींचनेमें संलग्न है। सादगी, सरलता एवं पवित्रताके आस्वादनसे विरत होकर अपनेको इस रूपमें उपस्थित करना चाहती है मानो स्व और परकी वासनाएँ

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पूरी करनेकी कोई मशीन हो। इस स्खलनकी पराकाष्ठा प
है; परन्तु यह सब तो पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृतिकी संसर्गज
देन है, आगन्तुक है। भारतीय आर्यनारीका सहज स्वरूप
स्वर्णके समान ज्योतिष्मान् एवं पवित्र है। वह मूर्तिमती श्र
और सरलता है। धर्मकी अधर्षणीय दीप्तिका दर्शन तो इस
बीते युगमें भी उसीके कोमल हृदयमें होता है। केवल उन
प्रवृत्तिको बहिर्मुखतासे अन्तर्मुखताकी ओर मोड़नेभरकी आ
श्यकता है। सत्सङ्गसे आर्य-नारीका हृदय अपनी विस्
महत्ताको सँभाल लेगा।

प्र०—आध्यात्मिक रुचि हो तब तो सत्संग करें?

उ०—याज्ञवल्क्यके सत्सङ्गसे मैत्रेयीमें किस प्रकार आध्
त्मिक रुचि और बलका उदय हुआ था—बृहदारण्यक उ
निषद्की यह आख्यायिका अध्ययन करने योग्य है—

'अरी मैत्रेयी!' सम्बोधन करते हुए याज्ञवल्क्यने कहा-
'अब मैं गृहस्थाश्रमसे ऊपर संन्यासाश्रममें प्रवेश करना चाह
हूँ। आओ, कात्यायनीके साथ तुम्हारा बँटवारा कर दूँ।'

'यदि यह धन-धान्यसे परिपूर्ण समस्त पृथ्वी मुझे मि
जाय तो क्या अमृतत्वकी प्राप्ति हो जायगी भगवन्?' मैत्रेयी
नम्र जिज्ञासा की।

'नहीं।' याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, 'धनियोंके जीवन
समान तुम्हारा जीवन भी होगा। धनसे अमृतत्वकी आ
करना व्यर्थ है।'

'जिस धनसे मैं अमृतत्व नहीं प्राप्त कर सकती वह लेकर
क्या करूँगी?' अपनी बात आगे बढ़ाते हुए मैत्रेयी कहने लगी
'भगवन्! अमृतत्वका जो साधन आप जानते हैं, वही मु
बतलाइये।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।
यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि।'

यह पति-पत्नी सम्वाद एक प्राचीनतम आर्यनारीके हृदयका—उसकी विरक्ति एवं जिज्ञासाका जीता-जागता नमूना है और अवश्य ही वह महर्षि याज्ञवल्क्यके सत्सङ्गका प्रसाद है। यदि आज भी नारीको सत्सङ्ग, भगवत्कथा आदि प्राप्त हों तो मैत्रेयीके समान ही त्याग, वैराग्य एवं जिज्ञासाका उदय होना असम्भव है क्या ?

इसी वैराग्य और जिज्ञासासे प्रसन्न होकर महर्षि याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीको उस तत्त्वज्ञानका उपदेश किया जिसे प्राप्त करनेके लिए बड़े-बड़े योगी लालायित रहते हैं। उदाहरणार्थ—

'जगत्में जिस किसीसे भी प्रेम किया जाता है—आत्माके लिए। अतः आत्मदर्शन ही कर्तव्य है। वह होता है श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे। आत्माके दर्शन, श्रवण, मननसे सब कुछ जान लिया जाता है।

'जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देवता, भूत—और तो क्या, किसी भी पदार्थको अनात्मरूपसे देखता है, उसे वे परास्त कर देते हैं; यह सब आत्मा ही है।'

'जब द्वैतकी प्रतीति है तभी सूँघना, देखना, सुनना प्रणाम करना, मनन करना, जानना है। जब तत्त्वज्ञानके द्वारा सब आत्मा ही है—ऐसा अनुभव हो गया तब वह सब कैसे रहेगा ? जिसकी सत्ता और प्रकाशसे सब जाना जाता है, उसको किस साधनसे जाना जायगा ? विज्ञाता आत्माको अनुभव करनेके लिए कौन-सा साधन है ?'

आत्मा तो अनुभव स्वरूप ही है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यह अमर उपदेश सर्वप्रथम मैत्रेयीके त्याग, वैराग्य औ
जिज्ञासासे ही प्रकट हुआ था।

प्र०—यह तो नारीका जिज्ञासु रूप है। क्या नारीक
ब्रह्मविद् रूप भी है ?

उ०—अवश्य है। वेद, इतिहास, पुराण आदि प्राची
प्रामाणिक ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही नारीका ब्रह्मविद् रूप भी मिलत
है, जिसमें साधनचतुष्टय एवं जिज्ञासा है, वही ब्रह्मज्ञान
अधिकारी है। बृहदारण्यक उपनिषद्में जनककी भरी सभा
गार्गी और याज्ञवल्क्यका संवाद हुआ है, जिसमें याज्ञवल्क्य
परीक्षा लेकर गार्गीने निर्णय दिया है कि अब इनपर को
विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

'यदि आपकी अनुमति प्राप्त हो जाय, ब्राह्मणो ! तो
याज्ञवल्क्यसे दो प्रश्न पूछूँ। यदि ये उत्तर दे देगें तो आ
लोगोंमेंसे कोई भी इन्हें ब्रह्मचर्चामें नहीं जीत सकेगा।

'पूछ लो, गार्गी !'—ब्राह्मणोंने कहा।

'याज्ञवल्क्य ! ये मेरे वीरके तीरके समान दो प्रश्न है
द्युलोकसे ऊपर, पृथ्वीका निम्न, दोनोंका बीच, स्वयं दोनों औ
भूत—भविष्य तथा वर्तमान किसमें ओतप्रोत हैं ?' गार्गी
पहला प्रश्न किया।

'आकाशमें।' याज्ञवल्क्यने संक्षेपसे उत्तर दिया। 'अच्छ
अब दूसरा प्रश्न।' गार्गीने कहा—'यह आकाश किसमें ओ
प्रोत है ?'

'इसी तत्त्वको ब्रह्मवेत्ता लोग अक्षर कहते हैं, गार्गी
याज्ञवल्क्यने निषेधावधिरूपसे उसका वर्णन प्रारम्भ किया।
न स्थूल है न सूक्ष्म, न छोटा न बड़ा। वह लाल, द्रव, छाय
तम, वायु, आकाश, संग, रस, गन्ध, नेत्र, कान, वाणी, म

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तेज, प्राण, मुख और मापसे रहित है। उसमें बाहर-भीतर भी नहीं है। न वह किसीका भोक्ता है और न तो भोग्य।'

अनेक युक्तियोंसे इस प्रत्यगात्मा ब्रह्मका वर्णन करते हुए याज्ञवल्क्यने कहा—'इसको जाने बिना हजारों वर्षके होम, यज्ञ, तप आदिके फल नाशवान् हो जाते हैं। यदि कोई इस अक्षरतत्त्वको जाने बिना ही मर जाय तो वह कृपण है और जान ले तो ब्रह्मवित् है।'

'यह अक्षरब्रह्म दृष्ट नहीं, द्रष्टा है। श्रुत नहीं, श्रोता है। मत नहीं, मन्ता है। विज्ञात नहीं, विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई दूसरा द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता नहीं है। इसी अक्षरमें, गार्गी! यह आकाश ओतप्रोत है।'

गार्गीने कहा—'ब्राह्मणो। आप इन्हें नमस्कार करें। इन्हें कोई ब्रह्मचर्चामें जीत नहीं सकता।'

राजा जनककी सभा, ब्रह्मवादी ऋषियोंकी भीड़, ब्रह्म-सम्बन्धी चर्चा, याज्ञवल्क्यकी परीक्षा और परीक्षक गार्गी। यह हमारी आर्य-नारीके ब्रह्मज्ञानकी विजयवैजयन्ती नहीं तो और क्या है?

प्र०—क्या आर्य-नारीका जीवन्मुक्त रूप भी है?

उ०—जो बोधवान् है, वही जीवन्मुक्त है। ज्ञानाग्निसे अज्ञान और तज्जनित कर्तृत्व-भोक्तृत्व, राग-द्वेषादि दोषोंकी निवृत्ति होनेपर जो शुद्ध जीवन है, उसीको जीवन्मुक्ति कहते हैं। बोधवान्का जीवन समस्त दोषोंसे रहित होनेके कारण जीवन्मुक्त कहा जाता है। उपनिषदादि ग्रन्थोंमें जीवन्मुक्तिकी भूमिकाओंका वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें देवहूतिकी जीवन्मुक्त अवस्थाका बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'धर्मानुष्ठान, भक्तियोग, प्रबल वैराग्य तथा अमानित्वादि ज्ञान-साधन-सम्पत्तिसे देवहूतिका अन्तःकरण विशुद्ध हो गया। तब वे उस परिपूर्ण आत्मस्वरूपके ध्यानमें मग्न हो गयीं, जो अपने स्वरूपभूत अनुभूतिसे माया और तज्जनित गुणोंके विशेषणसे रहित है। इस प्रकार स्वमहिमामें प्रतिष्ठित भगवत्स्वरूप ब्रह्ममें उनकी मति अवस्थित हो गयी। जीवकोशका ध्वंस हो जानेके कारण अविद्यादि पञ्च-क्लेशोंकी निवृत्ति हो गयी और वे परमानन्दस्वरूप हो गयीं। नित्य-निरन्तर समाधिमें आरूढ़ रहनेके कारण 'यह सत्त्वगुण है', 'यह रजोगुण है' इत्यादि भ्रम नहीं रहा। जागनेपर स्वप्नमें देखी हुई वस्तुके समान शरीरका ध्यान छूट गया। शरीरकी सँभाल दूसरे ही करते। चिन्ता न होनेसे वह दुर्बल नहीं हुआ और निखर गया—राखसे ढकी आगके समान। चित्तवृत्ति परमात्मामें इस प्रकार समा गयी थी कि उन्हें अपने दैवगुप्त तपोयोगमय शरीरके सम्बन्धमें यह ध्यान भी नहीं रहता था कि बाल बिखर गये हैं और वस्त्र गिर गया है। कपिलदेवजीके द्वारा उपदिष्ट मार्गसे इस भाँति उन्होंने शीघ्र ही अनन्त शान्त, परात्पर, भगवत्स्वरूप आत्माको प्राप्त कर लिया (श्रीमद्भागवत ३।३३।२५-३०)।'

आध्यात्मिक उत्कर्षकी यही चरम सीमा है!

प्र०—परन्तु इस कठोर साधना और सिद्धिकी योग्यता तो साधारण नारीमें नहीं है, फिर क्या करें?

उ०—सर्वसाधारण नर-नारीके लिए भक्तिमार्ग अति सुगम है। भगवान्‌के नामका जप, सत्सङ्गमें जाकर अथवा घरपर भगवत्कथा, कीर्तन, श्रवण, स्मरणादि रूप भक्ति करनेमें तो कोई कठिनाई नहीं है। भगवद्भक्तिमें प्राणिमात्रका अधिकार भी है। सबसे बड़ी बात यह है कि भक्ति सर्वथा नारी-हृदयके

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अनुरूप है। नारीका शरीर सोमप्रधान है। इसलिए उसके शरीरपर चन्द्रमाका बहुत प्रभाव पड़ता है—ऋतुधर्म आदिके सम्बन्धमें नारीका आराध्य देवता भी चन्द्रमा है। यही कारण है कि उसके शरीर और मनमें भी सूर्य-तत्त्व-प्रधान नर-शरीरकी अपेक्षा अधिक सौम्यभावका आविर्भाव होता है। श्रद्धा और विश्वास भी जितना नारी-हृदयमें अभिव्यक्त होता है, उतना मस्तिष्कप्रधान नरमें नहीं। यदि थोड़ा-सा भी सत्सङ्ग प्राप्त हो जाय तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अथवा श्रीरामचन्द्रके गुणानुवादके श्रवणमात्रसे ही नारीहृदय-सुधासागर भक्तिकी लहरियोंसे उद्वेलित हो उठे। भक्तिमार्ग सर्वथा निरुपद्रव है।

प्र०—नारीके लिए तो सत्सङ्ग भी दुर्लभ है।

उ०—आजकल जब चारों ओरसे धर्मपर और विशेषकर नारीधर्मपर प्रहार किया जा रहा है, नारी-स्वातन्त्र्यके नामपर आर्य-ललनाओंको वासनापूर्तिकी मशीन बनानेका प्रबल संघर्ष छिड़ गया है, प्रकटरूपसे नाचघर, सिनेमा, क्रीड़ा-निकुञ्ज आदिके द्वारा वासनाओंके उभारनेके अड्डे बन गये हैं, पत्र-पत्रिका, पुस्तक, व्याख्यान आदिके द्वारा नारी-धर्मके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी गयी है, स्वयं नारी भी इस कुचक्रका रहस्य न समझ अपने शत्रुके हाथकी कठपुतली बनकर धर्म-मर्यादासे विद्रोहकी ओर अग्रसर हो रही है। ऐसे कुसमयमें नारीको सत्सङ्ग प्राप्त करनेसे रोकना आत्मघात है। इसका परिणाम यह होगा कि नारीको वासनाओंपर नियन्त्रण करनेका प्रोत्साहन तो मिलेगा नहीं, उलटे विरोधियोंका विषाक्त प्रचार उस तक पहुँचेगा एवं वह और भी धर्मविप्लवके मार्गपर चल पड़ेगी। इसलिए यदि नारी शीलवती नारीके रूपमें रहना चाहती है और नर उसे उस रूपमें देखना चाहता है तो सत्सङ्गकी रुचि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

नारीमें उदय होनी चाहिए। और इसकी सुविधा उन्हें अवश्य मिलनी चाहिए। धर्मकी शुद्ध व्याख्या सत्सङ्गमें ही प्राप्त होती है, भक्ति और ज्ञानका रहस्य वहीं ज्ञात होता है। जीवनकी सफलता, परम शान्तिकी प्राप्ति इसीमें है।

प्र०—नारी-जीवनका अन्तिम उत्कर्ष किस बातमें है?

उ०—पतिके द्वारा परम पतिको प्राप्त कर लेनेमें। नर जब गुरुदीक्षा ग्रहण करता है अथवा स्वाध्याय-सत्सङ्गके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति अपने जीवनका लक्ष्य बनाता है, तब उसे एक मूर्ति मिलती है—ध्यान-सेवा करनेके लिए। इसी आलम्बनके द्वारा वह परमात्माकी ओर चलता है। परन्तु नारीको बिना किसी विशेष प्रयत्नके पति मिलता है ध्यानसेवाके लिए, जिसमें वह भगवद्बुद्धि करके अपनी समस्त वासनाओंपर विजय प्राप्त करती है और अन्तमें परमात्माको। यदि चित्रपट अथवा मूर्तिद्वारा नर कल्याण प्राप्त कर सकता है तो नारी एक प्रत्यक्ष चलते-फिरते भगवान्के द्वारा क्यों नहीं आत्मकल्याण प्राप्त कर सकती है? पतिके बाह्य शरीरका न होना भी उपासनामें बाधक नहीं है; क्योंकि पतिकी मूर्ति तो हृदयमें रहती है और वह अमर है। पति-पत्नी-सम्बन्ध, भाव और प्रीतिमें मृत्यु भी बाधा नहीं डाल सकती, यदि उद्देश्य परमार्थ हो। सत्सङ्ग द्वारा नारीको वासना-निवृत्तिकी प्रेरणा मिलती रहे तो यह कोई कठिन बात नहीं है।

प्र०—पति भी पत्नीके आराधनाके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति क्यों न करे?

उ०—यह नर-जातिकी दुर्बलताकी बात है। नरके चित्तमें नारीके प्रति भोग्य-भावना इतनी प्रबल हो गयी है कि वह पत्नीमें भगवान्का दर्शन करनेमें असमर्थ हो गया है। भोग्य

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बुद्धि आनेसे आराधना विकृत हो जाती है। अन्यथा अपने शास्त्रोंमें कुमारीपूजा, सौभाग्यवतीपूजा, विधवापूजा एवं मातृपूजा आदिके रूपमें जगज्जननी भगवती चिच्छक्तिकी पूजा वर्णित है और अब भी किसी अंशमें प्रचलित है। मातृपूजाकी महिमा तो ऐसी विलक्षण है कि वेश्याका पुत्र भी मातृभक्तिके द्वारा परम कल्याणका भागी हो सकता है। क्योंकि भक्ति-भाव अपने हृदयकी अपनी सम्पत्ति है, बाह्य प्रतीकके साथ उसका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। हमें ऐसी महामहिम महिलाओंके दर्शन हुए हैं, जिनके सामने जानेपर अंतःकरण पवित्र हो जाता है, श्रद्धासे सिर झुक जाता है। इसलिए नारीके प्रति भगवद्बुद्धि करनेका निषेध नहीं है; परन्तु पुरुषके हृदयकी दुर्बलता—भोग्यत्व-वासनाका उदय ही उसमें रुकावट है।

प्र०—क्या नर-नारीमें कहीं भी भगवद्बुद्धि की जा सकती है ?

उ०—की जा सकती है। इतना ही नहीं, वास्तवमें सब भगवान् ही हैं—आत्मा ही है। यह जो रज्जुमें सर्पके समान बिना हुए ही नानात्वरूप प्रपञ्च भास रहा है, यह वास्तवमें भानमात्र परमात्मा ही है। इस प्रतीयमान विश्वप्रपञ्चके किसी अवयवपर दृष्टि जम जाय—वृत्ति निर्विकल्प हो जाय तो उस वस्तुका पृथक् नाम-रूप मिट जाय, वह परमात्माके स्वरूपमें ही साक्षात् अपरोक्ष अनुभव हो जाय। एक वस्तुके भगवद्रूप अनुभव होनेपर स्थाली-पुलाक-न्यायसे सर्वकी भगवत्स्वरूपताका बोध होना स्वाभाविक ही है। इसीसे महात्माओंको सब आत्मरूप—भगवद्रूप अनुभव होता है और वास्तवमें परमात्मा ही है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

साधकको सब कुछ परमात्मा ही है—ऐसा अनुभव नहीं होता। इसलिए उसे अपनी रुचि, गुरुदेवकी आज्ञा और शास्त्रके अनुसार क्रमशः परमात्माकी पूर्णताका अनुभव करना चाहिए।

अन्तिम सत्य है—वासुदेवः सर्वम्। सर्वं यदयमात्मा।

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिज्ञासु सावधान !

१. दर्शन अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसमें किसी आने जानेवाले आकारका आरोप किये बिना उसका ज्यों-का-ज्यों यथार्थ अनुभव। जगत्-दर्शन, जीव-दर्शन, एवं भगवद्दर्शनका अर्थ है उन-उन वस्तुओंका साक्षात्कार। भगवद्दर्शनका अर्थ है आरोप-विनिर्मुक्त भगवत्तत्वका भेदरहित ज्ञान।

२. भगवान् अर्थात् अद्वय ज्ञानतत्त्व। वही स्वयंप्रकाश सर्वाधिष्ठान अनुभाव्य-निरपेक्ष अनुभवस्वरूप है। इसी तत्त्वका जब विषयकी उपाधिको दृष्टिमें रखकर सम्पूर्ण व्यक्तियों और आकारोंके बीजके रूपमें अनुसन्धान किया जाता है, तब वह कारण रूपसे सिद्ध होता है और जब आविर्भाव-तिरोभाव, परिवर्तन, परिणाम आदि क्रिया-विक्रियाओंके मूलमें स्थित कालकी उपाधिसे अनुसन्धान किया जाता है, तब वह अन्तर्यामी नियन्ता, व्यापक आदिके रूपमें सिद्ध होता है। हम जब उसी तत्त्वका प्रयीयमान आकारोंकी लम्बाई-चौड़ाई-विस्तार-स्थान आदिके मूलमें स्थित देशकी उपाधिसे संस्कृत बुद्धि द्वारा अनुसन्धान करते हैं, तब वह निरतिशय विशाल एवं परिपूर्ण भासने लगता है और जब उसीको सम्पूर्ण भेदोंको बतानेवाली बुद्धियोंके बीजकी उपाधिसे उपहित करके देखते हैं, तब वह सर्वज्ञ, सर्ववित् आदिके रूपमें निश्चित होता है। इन सभी निर्णयोंमें न तो तत्त्व आकारके आरोपसे विनिर्मुक्त है और न बुद्धि ही विशेष संस्कारके प्रभावसे विरहित। जैसे चश्मेके

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

रंगसे दृश्यमान वस्तु उपरक्त हो जाती है उसी प्रकार अशु
बुद्धिसे अशोधित वस्तुका साक्षात्कार होता है। इसीसे भगव
त्वके यथार्थ अनुभवके लिए संस्कारोल्लेखशून्य अर्थात् संस्का
विशेषसे अनाक्रान्त चरमा और परमा वृत्तिकी अपेक्षा हो
है। जबतक ऐसी शुद्ध बुद्धिके द्वारा पदार्थका निर्णय नहीं हो
और महावाक्यके द्वारा उसके साथ आत्माकी सिद्ध एकता
बोध होकर अविद्याकी निवृत्ति नहीं हो जाती तबतक को
भी व्यक्ति यदि भगवान् शब्दका प्रयोग करेगा तो वह अशोधि
अर्थमें ही करेगा। इसलिए प्रबुद्ध महापुरुषोंके द्वारा प्रयुक्त
भगवान् शब्द है वह ब्रह्म शब्दका ही पर्यायवाची है। अ
भगवद्दर्शन शब्दका अर्थ प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्व
अनुभूति ही है।

३. यह नाम-रूप-क्रियात्मक प्रपञ्च क्या है? किसमें औ
किसको भास रहा है। इन तीन प्रश्नोंको लेकर यदि विचा
किया जाय तो यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जायगी कि यह प्रपञ्च
जिस अधिष्ठान सत्तामें भास रहा है उससे तत्त्वत: पृथक् इसक
सत्ता नहीं हो सकती; क्योंकि अकाल, अदेश और अविष
सत्तामें देश, काल और विषयका नियन्ता-नियम्य, आधा
आधेय अथवा कारण-कार्य रूप सम्बन्धकी सिद्धि नहीं होती
रज्जु-तत्त्वका ज्ञान होनेपर जैसे सर्पकी प्रातिभासिकता स्पष्ट
जाती है वैसे ही अधिष्ठान-ज्ञान होनेपर प्रपञ्चकी। दूस
ओर यदि द्रष्टाका अनुसन्धान करें तो वह भी अकाल, अदे
और अविषय होनेके कारण केवल चिन्मात्र सत्ताके रूपमें
निर्धारित होता है और प्रपञ्चके साथ उसके भी नियन्ता-
नियम्य, आधार-आधेय और कारण-कार्य सम्बन्ध सिद्ध नहीं
होते। ऐसी वस्तुस्थितिमें यह प्रपञ्च न तो निर्विशेष अधिष्ठा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सत्में है और न तो निर्विशेष चिन्मात्र द्रष्टामें। और जब प्रपञ्च ही नहीं है; क्योंकि वह अपने भावाभावके अधिष्ठान प्रकाशक चेतनमें बिना हुए ही भास रहा है तब 'तत्पदार्थ' और 'त्वंपदार्थ' अर्थात् अधिष्ठान चेतन और द्रष्टा चेतनके भेदका कोई भी निमित्त ही नहीं रह जाता। कहनेका अभिप्राय यह है कि जगत्, जीव और ईश्वरका जो भेद है वह अज्ञान-मूलक है। इसलिए अज्ञानमूलक भेद-भ्रमकी निवृत्ति ही कर्तव्य है। भगवद्दर्शन होनेपर वही अज्ञान निवृत्त हो जाता है और तब केवल भगवान् ही रहता है। इस अनुभव-स्वरूप भगवान्-में जो कि प्रत्यक् चैतन्याभिन्न है भले ही भासमान रूपमें जगत् है; परन्तु वह तत्त्वत: नहीं है इसलिए ब्रह्मरूप ही है।

४. तत्त्वदर्शी महात्मा अपने-आपकी और सम्पूर्ण प्रपञ्चकी ब्रह्मताको जानते हुए भी जब देखते हैं कि इस यथार्थ सत्यको न जानकर स्वयं अद्वितीय सच्चिदानन्दघन होनेपर भी जीव भटक रहे हैं, जैसे-जैसे उनके भ्रमका निवारण हो वे अपने कल्पित दु:खरूप अनर्थसे वैसे-वैसे मुक्ति प्राप्त कर सकें इसके लिए उनके अधिकारानुसार भिन्न-भिन्न प्रकारके अध्यारोप करके कर्म, भाव और विचारोंका परिमार्जन करते हैं और उन्हें भगव-द्दर्शनके योग्य बनाते हैं। इस योग्यताके निर्माणमें जिन साधनों और युक्तियोंका उपयोग करना पड़ता है उनको तत्त्व अथवा भगवान् नहीं कहा जाता; क्योंकि वे तो भिन्न-भिन्न भ्रान्तियोंकी निवृत्तिके लिए अध्यारोपित होती हैं। अध्यारोप और अपवादकी युक्तिसे ही सम्पूर्ण धर्म, उपासना, योग और विचार-शास्त्रका तत्त्वज्ञानमें समन्वय होता है। समन्वय-दृष्टिसे ही सबकी संगति भगवद्दर्शनके साथ लगती है।

५. गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य—इन भिन्न-भिन्न

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

नाम-रूपवाले देवताओं, राम-कृष्ण आदि अवतारों, गुरु आ
व्यक्तियों और अग्नि आदि पदार्थोंमें भगवद्बुद्धि करके
उपासना की जाती है वह तदाकार वृत्तिके द्वारा नानात्व
प्रपञ्चसे वैराग्य और एक तत्त्वके अनुसन्धानके लिए ही है
इस तदाकार वृत्तिके जो चमत्कार, सिद्धियाँ, दर्शन, स्थिति
और अनुभूतियाँ हैं वह जिज्ञासुको अपनेमें आबद्ध करनेके लिए
नहीं हैं; प्रत्युत अपनी आत्मा उनसे विविक्त, असंग द्रष्टा है
यह ज्ञान करानेके लिए ही है। जो उन्हींमें आग्रह कर बैठ
वह अध्यारोपित आकार-प्रकारमें ही फँस जाता है। इसलिए
तत्त्व-जिज्ञासुको इस दिशामें पूर्ण सावधान रहना चाहिए।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

मान्यता और ज्ञान

मान्यता अथवा स्वीकृतिका मूल श्रद्धा है। निर्णय अथवा
श्चयका हेतु प्रमाण है। श्रद्धा अभ्यासकी मूल प्रेरणा है एवं
ध्यमें प्रतिष्ठित करती है। अथवा स्वतःसिद्ध स्वयंप्रकाश
मानन्दस्वरूप आत्मा श्रद्धागम्य अथवा स्वीकृत साध्य नहीं
। यह घटादिके समान प्रत्यक्ष, स्वर्गादिके समान परोक्ष और
ख-दुःखादिके समान साक्षिभास्य अपरोक्ष नहीं है। यह
ाग-निरपेक्ष करणागम्य साक्षादपरोक्ष है। इसकी पूर्णता
अद्वितीयताको श्रद्धाके द्वारा परोक्ष रूपसे स्वीकृति प्रतीक
सना है एवं स्वरूपसे स्वीकृति अहंग्रह उपासना है। प्रमाण
ा अपनी पूर्णता, अखण्डता एवं अद्वितीयताका निश्चय होने
भी इसका साक्षात्प्रतिभान न होना परोक्ष ज्ञान है और यह
ल असत्त्वापादक आवरणके निवारणमें समर्थ है। श्रद्धा-
से इस आवरणका भी भंग नहीं होता। अपने आत्म
पकी पूर्णता, अखण्डता एवं अद्वितीयताका महावाक्य द्वारा
ादपरोक्ष होनेपर ही अभानापादक आवरणका निवारण
ा है। इस स्वतःसिद्ध स्वयंप्रकाश परमानन्द स्वरूप आत्म-
ुकी सिद्धिके लिए एवं इस अनुभव स्वरूपकी अनुभूतिके
र अज्ञान निवृत्तिके अतिरिक्त और कुछ भी अपेक्षित नहीं
अतः वेद पुरुषके शिरोभाग वेदान्तकी यह स्पष्ट उद्घोषणा
कि सर्वाधिष्ठान सत् एवं सर्वावभासक चित्‌की एकताके ज्ञान
ा आत्माके परमस्वरूप अर्थात् शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परमात्माकी
प्ति नहीं हो सकती। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अन्तर्मुख होकर राग-द्वेष रहित बुद्धिसे गम्भीर करें तो यह स्पष्ट ही जान पड़ता है कि सम्पूर्ण दृश्यके अदृश्य एवं द्रष्टा आत्मा ही विद्यमान है। यह कार्य-भावापन्न विशेषका अधिष्ठान एवं प्रकाशक होनेपर भी निर्विशेष ही है। सम्पूर्ण देश, काल एवं वस्तुओंकी इसीके द्वारा प्रकाशित हो रही है, इसलिए यह उनके भाव रूप किसी भी अवस्थाके द्वारा परिच्छेद्य नहीं है। आत्मा जिस देशमें, जिस कालमें, जिस रूपमें प्रकाशता है परम प्रिय है, तत्त्वतः उसी देशमें, उसी कालमें और रूपमें वह तीनोंका अधिष्ठान एवं प्रकाशक भी है। वे तीनों उनके प्रकाश्य हैं, उनमें अध्यस्त हैं, अतः अपने अत्यन्त वाले सच्चिदानन्दघनमें ही बिना हुए भास रहे हैं। प्रतीयमान देश, काल, वस्तुके छेद-भेदसे असंस्पृष्ट आत्मा ही ब्रह्म है। आत्माकी ब्रह्मता साध्य नहीं है, सिद्ध एकता साधन द्वारा उत्पाद्य नहीं होती है; क्योंकि तो अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिए होता है। सिद्ध वस्तु भी अन्य हो तो उसकी उपलब्धिके लिए प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अपेक्षा होती है। उसका ज्ञान होनेपर भी उसकी प्राप्तिके प्रयत्नकी अपेक्षा होती है; परन्तु अन्य वस्तु यदि सिद्ध मानी जाय तो वह भी सविशेष होनेके कारण आरोपसे निर्मुक्त नहीं हो सकती। ऐसी अवस्थामें वह भी एवं अध्यस्त ही होगी। फिर तो उसको सिद्ध वस्तु अन्याय ही होगा। जब सिद्ध वस्तु अपना स्वरूप ही है उसके लिए प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी किंचित् भी अपेक्षा नहीं केवल महावाक्यके द्वारा ही स्वरूपभूत नित्यप्राप्त प्राप्ति एवं नित्यनिवृत्त अनर्थकी निवृत्ति हो जाती है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अभिप्राय यह है कि अपने आत्माकी सिद्धि, स्थिति एवं अनुभूतिके लिए महावाक्य द्वारा अज्ञानकी निवृत्तिके अतिरिक्त और किसी भी साधन एवं प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है।

जब अन्यकी अनुभूति होती है और वह अवश्य ही जड़की तब वह अनुभाव्य पदार्थ कालान्तर, देशान्तर अथवा रूपान्तर होनेपर परोक्ष हो जाता है। वह तो वृत्त्यन्तरसे भी परोक्ष हो जाता है। इसलिए उसकी स्मृति अथवा अनुभाव्यता बनाये रखनेके लिए अभ्यासकी आवश्यकता होती है और इस प्रकार अपने ज्ञातृत्व, कर्तृत्व एवं भोक्तृत्वकी भी निवृत्ति नहीं हो सकती। अनर्थकी निवृत्ति भी सम्भव नहीं है, परन्तु अपना चेतन आत्मस्वरूप अनुभाव्य नहीं है तथा देशान्तर, कालान्तर और रूपान्तरका उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चेतन कभी परिणामी नहीं हो सकता। जो चेतनको उपादान कारण मानकर भी उसे परिणामी मानते हैं; उनकी मान्यता असंगत है। परिणामका प्रकाशक स्वयं परिणामी नहीं हो सकता। इसलिए अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर आत्माकी परोक्षता जो कि भ्रान्ति-सिद्ध है, सम्भव नहीं है। अतः जो साक्षात् अनुभव-स्वरूप है उसकी स्मृति भी अपेक्षित नहीं है; क्योंकि सर्व देश, सर्व काल, सर्व वस्तुमें अपना आत्मा ही तत्तदाकारसे प्रतीयमान होता हुआ भी एकरस ही है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि परमात्माको अविनाशी (कालसे अपरिच्छिन्न), परिपूर्ण (देशसे अपरिच्छिन्न), सर्वात्मक (यह, वह, तुम, मैंसे अपरिच्छिन्न) जानकर भी उसे अभी, यहीं और इसी रूपमें न देखा जाय ? और जब वह 'अभी', 'यहीं' और 'यही' है तब उसके 'मैं' न होनेका तो कोई कारण ही नहीं रह जाता। वह सर्व हो और 'मैं' न हो—यह तो सम्भव ही नहीं है। चेतन हो और 'मैं' न

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हो, परिपूर्ण हो और 'मैं' न हो—यह तो सम्भव ही नहीं 'मैं'से भिन्न दृश्य होगा, चेतन नहीं। 'मैं'-से भिन्न वि होगा, अविनाशी नहीं। 'मैं'से भिन्न अपूर्ण होगा, पूर्ण न 'मैं'से भिन्न अध्यस्त होगा, अधिष्ठान नहीं। इसलिए जो शुद्ध और परमार्थ है वही ब्रह्म है। जैसे ब्रह्मसे भिन्न की कल्पना ब्रह्मके अज्ञानसे है वैसे ही 'मैं'से भिन्न 'ब्रह्म कल्पना 'मैं'के अज्ञानसे है। 'मैं' और ब्रह्मके भिन्न-भिन्न पर ब्रह्मके किसी भी लक्षणका समन्वय किसीमें नहीं सकता। जो किसीसे भिन्न होगा वह निर्विशेष कैसा? प विलक्षण होनेपर ही भेद होता है। भिन्नमें ब्रह्मका लक्षण समन्वित नहीं हो सकता। जो 'मैं'से भिन्न है वह दृ अथवा केवल कल्पनामात्र। इसलिए वेदान्त स्पष्ट तात्त्विक अद्वितीयताकी घोषणा करता है। 'मैं'के अभाव, और दुःखरूप होनेका अनुभव कभी, कहीं, किसी रूपमें सम्भव नहीं है। इसीलिए 'मैं' पदके शोधित अर्थसे ब्रह्मके अतिरिक्त कोई अन्य ब्रह्म अद्वितीय नहीं हो अर्थात् ब्रह्मकी अन्यता केवल कल्पनामात्र है। ऐसी स्थितिमें ब्रह्मात्मैक्य-वोधके अतिरिक्त अनर्थ-निवृत्तिके दूसरा कोई साधन नहीं रह जाता, एकमात्र वेदान्त-ज्ञा शरण्य है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अनुभव जो हो रहा है

१. पुरुषके शरीरमें एक सुषुप्त रस होता है, काम वेगसे मन्थन विशेष होनेपर वह शुक्रके रूपमें परिणत हो जाता है। जैसे वट-बीज धरतीमें पड़नेपर अपने अनुकूल पोषण ग्रहण करके क्रमशः अंकुरित, पल्लवित होता हुआ विशाल वटवृक्षके रूपमें हो जाता है और उससे फिर बीजकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही पुरुषका बीज माताके पेटमें पहुँचकर अनुकूल पोषण ग्रहण करता है और जिस साँचेमें-से ढलकर आया होता है—जिस संस्कारसे युक्त उपादान वाला होता है और जिस भावनासे भावित होता है, उसी गुण, भावना, क्रिया आदिसे सम्पन्न होकर जन्म ग्रहण करता है। जीव-रस अनादि है। आकृति और विकृतियाँ नैमित्तिक हैं, आगन्तुक हैं। इनके आने-जाने बदलनेसे नित्य जीवन-रस-रूप उपादानपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह बीज-बिन्दु जिसमें एक दिन हाथ, पाँव, आँखें, कान आदिका कुछ पता नहीं था, आज एक पुरुषके रूपमें परिणत होकर चलता-फिरता, खाता-पीता, सोचता-समझता, धरतीके विशाल रंगमंचपर बावला बनकर पूजित, प्रतिष्ठित और एक विलक्षण अभिनयका अभिनेता बन रहा है। जब इस जीवनके सच्चे इतिहासपर दृष्टि जाती है तब एक चमत्कारी अनुभव होता है कि यह मनुष्यकी आकृति अपना निज स्वरूप नहीं है। यह तो रंगमंचकी अभिनयानुरूप एक वेश-भूषा है। कैसा आश्चर्य है !

२. एक नन्हा-सा शिशु है। कोमल इतना कि अंगुलियोंके

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

स्पर्शसे रक्त छलछला उठे। मानो नवनीतका लौंदा हो। नरम-नरम कलेजे और मस्तिष्कपर चाहे जैसी छाप दो—यह तुम्हारी माँ है और यह तुम्हारा बाप। यह है, यह पाँव, यह जाति है और यह धर्म। भोला-भाला अनजान शिशु बिना सोचे-विचारे सब कुछ स्वीकार जाता है। सारे नाम, प्रिय-अप्रिय, शुभ-अशुभ, लोक-परलो पुराण-कुरान उसके दिमागमें ठूँस दिये गये, लोगोंने संस्कार, अपनी मान्यता अपने गलत-सही ज्ञान—सबकी बलात् उसपर लगा दी। उसकी खोजके लिए, अनुसन्धा लिए, बुद्धिके सदुपयोगके लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। कहा—'मैं तो अन्धा हूँ ही; बेटा! चल, तू भी अन्धा यह सब ठीक है—ऐसा ही है। यह अन्ध-परम्परा चलती है, चलती रहेगी। आश्चर्य तो यह है कि बड़े हुए, पढ़ा-लि समझदारीका अभिमान आया। सिर उठाकर चलते हैं 'मैं बड़ा विद्वान्,' 'मैं बड़ा बुद्धिमान्'; परन्तु दूसरोंके लादी हुई इस मूर्खताको ढोये जा रहे हैं। कोई आँखको कहे तो संघर्ष। कोई हिन्दूको मनुष्य और हिन्दीको हिन्दुस कह दे तो प्राण ही निकल गये। कोई बिहारको बंगाल दे तो लड़ाई। आश्चर्य है! व्यवहारके लिए कल्पित चलाऊ नाम समाजकी सुख-सुविधाके लिए शुभ-अशुभ, करण शुद्धिके लिए धर्म-अधर्म, ऐसे ही प्रयोजनवश मान्यताओंके साथ अन्धाधुन्ध चिपटकर संसारमें दुःख नस्य और कटुताका विस्तार! धन्य हैं ये विद्वान् बुद्धिमान्! जीवनके सुख-शान्तिमय सम्बलको अनर्थक बना दिया है। यह हृदयविदारक अनुभव प्रत्यक्ष ही रहा है। कौन-सा अनुभव लिखें?

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

३. जीवन-निर्वाहके लिए मनुष्य-शरीरके उपादानभूत पंच-तत्वोंके विशेषाकार परिणत अन्न, फल, गरमी, सरदी, हवा आदिकी आवश्यकता है। उनके बिना इसका प्रवाह-रस सूख जायगा—इसमें सन्देह नहीं। परन्तु आवश्यकताका अर्थ यह तो नहीं होना चाहिए कि उन्हीके लिए इस मनुष्य शरीरको बेंच दिया जाय। आजके समाजमें मनुष्य जीवनकी प्रधानता है अथवा अर्थकी ? मनुष्यने अर्थके लिए लड़की-लड़केका विक्रय कर दिया। अपनी सुख-सुविधा और आरामको तिलांजलि दे दी, अपना आचार, अपनी सहृदयता और अपनी बुद्धि भी अर्थकी कीमत लेकर पराधीन कर दी। जड़ताके भारसे शिव शव हो गया। मुर्देपर जिन्दा न्यौछावर कर दिया गया। 'पैसा, पैसा, पैसा !' यह कैसी चीख पुकार है ? पैसेकी बाजी जीतनेके लिए सदाचार, सद्भावना और सद्बुद्धिकी सम्पत्ति जान-बूझकर खो दी। एक वादी पैसेके लिए झूठी गवाही देता है। वकील पैसेके लिए झूठी बहस करता है, और अधिकारी पैसेके लिए झूठा फैसला देता है। पण्डित पैसेके लिए झूठा धर्म बतलाता है, उपासक पैसेके लिए संसारीको भक्तराज कहता है। ज्ञानी पैसेके लिए अपनी बुद्धि द्वारा निश्चित झूठको सच बतलाता है। यह क्या विडम्बना है ? व्यापारीकी तो बात ही मत पूछो सब सेर भर तो वह सवा सेर। डाक्टर पैसेके लिए लोगोंकी जिन्दगीके साथ खिलवाड़ कर रहा है। किसकी-किसकी कहें ? कुएँमें ही भाँग पड़ गयी है। आज संसारमें जितने अनर्थ हो रहे हैं पैसेकी कीमत बढ़ जानेसे। इसीके लिए अणुबम और इसीके लिए विज्ञान। दर्शनशास्त्र भी तो अछूता नहीं बचा। ऐसा अनुभव हो रहा है कि पैसेकी कीमत बढ़ती जा रही है और अभी और भी बढ़ेगी। यही

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

रफ्तार रही तो एक दिन ऐसा भी आयेगा जब पैसा ही पै रहेगा, मनुष्य नहीं। तब पैसेकी कीमत अपने-आप ही समा हो जायगी। ऐसा अनुभव होता है कि मनुष्य अभी अपन कीमत नहीं समझ रहा है। तब क्या विश्वके सम्पूर्ण उपद्र उत्पात और संघर्षकी जननी यही अर्थकी मूल्य-वृद्धि नहीं है बाहरसे अन्दरकी ओर, जड़से चेतनकी ओर, अर्थसे मनुष्य ओर जब हमारी बुद्धि मुड़ेगी तभी सदाचार, सद्भावना, सद्गु और सद्विचारकी प्रतिष्ठा होगी—अनुभवकी आँखसे यह प्रत्य दीखता है।

४. एक सोनेका टुकड़ा है। यह कहाँसे आया? आत्म देवकी स्फुरणा है। मायाकी रचना है। प्रकृतिका विकार है परमाणुओंसे प्रारब्ध है। समष्टि-प्रारब्धसे इसका निर्माण हुअ है। कितनी ही बातें हैं। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि व व्यक्तिगत रूपसे इस मनुष्यका कुछ भी नहीं है। इसका को भी कर्म प्रारब्ध, संचित या क्रियमाण सोनेके साथ जुड़ा हुअ नहीं है, फिर भी मनुष्य कहता है 'यह सोना मेरा है।' इस पहले बहुतोंने उसे मेरा कहा है और आगे भी बहुतेरे कहें वस्तुतः यह है किसका? दो टूक न्याय चाहिए। क्या मनुष्य मन इस न्यायको स्वीकार करनेके लिए तैयार है? मन शक्तियाँ असीम हैं। उसकी एक ममता-वृत्तिने मनुष्य खिलौना बना रखा है। मनुष्यके अधीन मन नहीं है; अपि मनके अधीन मनुष्य है। वह शुद्ध रूपसे सोना, जमीन, स्त्र या पुरुषको नहीं देखता, किसीके साथ सम्बन्ध जोड़कर देख है—'मेरा है, तेरा है, उसका है।' इस सम्बन्धको इतना दृ बना देता है कि मनुष्य वस्तुकी रक्षाके लिए नहीं, सम्बन्ध रक्षाके लिए राग-द्वेष करता है। लड़ता है, हँसता है औ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मिलने-बिछुड़नेपर अपने-आप तकको खो देता है। आज विश्वके रंगमंचपर जो सन्धि-विग्रहका ताण्डव नृत्य हो रहा है, उसका मुख्य संचालक मन ही है। हमने मनोराज्यमें, स्वप्नमें और उपासना-जनित तन्मयतामें—मनकी शक्तियोंका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। बिना किसी घटनाके केवल मनोराज्यसे ही दिलका धड़कना, बिना स्त्री-संसर्गके ही स्वप्नमें शुक्रपात, ध्यानकी तन्मयतामें देवी-देवताओंके दर्शन, उनसे आलाप और वरदानकी प्राप्ति भी होती है। बहुत योग-युक्ति करके जब हम मनकी शक्तियोंको निष्क्रिय कर देते हैं तो वे और भी दुगने-चौगुने वेगसे सिद्धियोंके रूपमें विकसित होकर आती हैं। और तब तो हम कभी-कभी अपनेको ही ईश्वर समझने लगते हैं। असंख्य-कोटि ब्रह्माण्ड, अखण्ड-ब्रह्माण्ड-मण्डलेश्वर, गोलोक, साकेत, कैलास, राम, कृष्ण, शिव—यह सब मनके पुंजीकृत सिद्ध प्रकाशमें ही संकल्प-रश्मियोंके वक्रीभवनसे इन्द्रधनुषके विविध रङ्गोंके समान दीखते और लुप्त होते रहते हैं। कभी इस सिद्ध मनको भी समाधि-संस्कारसे अभिभूत करके शान्त, निर्विकल्प, निर्बीज अवस्थामें पहुँचा दिया गया तो यहाँसे उठनेपर भी वह ऐसा ही कहता हुआ देखा जाता है—'अहो! यह तो समाधि! यह तो सर्वोच्च स्थिति है! क्या अलौकिक लोकोत्तर समाधि! मेरी समाधि! मेरी समाधि!' और मनका गुलाम मनुष्य फूल उठता है—'मैं समाधिस्थ हूँ! मैं समाधिस्थ हूँ!'

ऐसा अनुमान होता है कि हमारे मनका एक स्वभाव है—वह यह है कि जब मन किसी भी स्थिति, विचार, संकल्प, स्मृति, सम्भावना, भाव, मूर्ति आदिका रूप ग्रहण करता है या उसे विषय करता है तो उसमें पूर्णताका ही दर्शन कराता

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

है। वह स्वप्न-कालमें स्वप्नके पदार्थोंको भी जाग्रत्-काली
पदार्थोंके समान सत्य ही दिखलाता है। वह अपनी आँखके
कभी झूठी नहीं कहता। अपनी घड़ीके ठीक होनेका उसे
दृढ़ आग्रह है। यह पूर्णताकी प्रतीति उसे कहाँसे प्राप्त
होती है—विषयोंके अधिष्ठानसे; जो कि सबके पीछे अज्ञात
रूपसे पूर्ण है। अथवा मनको अपने ही पीछे मनकी सब
स्फुरणाओंके पीछे अज्ञात रूपसे विराजमान अचल स्वयंप्रका
है! इसी अधिष्ठाननिष्ठ पूर्णताका अपने-आपमें और विषय
आरोप करके यह अपने अनुभवको निरन्तर 'पूर्ण', 'पूर्ण', 'पूर्ण
करता रहता है। मनकी इसी छलनाको, मायाको पहचानना
और उससे मुक्ति पानी है।

मनके द्वारा मालूम पड़नेवाले पदार्थ स्मृति, कल्पना,
निश्चय, स्थिति, साधन और फल—सब-के-सब इन्द्रजाल हैं।
माटी और सोनेका भेद, उनके साथ अपना या किसी दूसरेका
सम्बन्ध, उनका संयोग-वियोग और उससे होनेवाला सुख-दुःख,
त्याग और ग्रहण—यह सब मनके विलास, मनकी प्रवंचना हैं।
जैसे किसी-किसी मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा होता है कि
हलकी-फुलकी बातपर भी बहुत ज़िद करता है या सुनी-सुनायी
बातका भी प्रत्यक्ष वह वर्णन करता है। मनोराज्यको ही सत्य
घटनाका रूप दे देता है, वैसे ही मनका यह स्वभाव है कि वह
अपनी परिवर्तनशील झूठी प्रतीतियोंको भी चट्टानसे भी दृढ़
मृत्युसे भी ठोस और अपनी आत्मासे भी अधिक सत्य करके
दिखाता है। यह जिसको 'मेरा' कहता है वह 'मेरा' नहीं है,
जिसको 'तेरा' कहता है वह 'तेरा' नहीं है, जिसको सत्य
कहता है वह सत्य नहीं है और जिसे मिथ्या कहता है वह
मिथ्या नहीं है। जिसने इसके स्वभावको पहचान लिया उसने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

एक महान् अनुभव प्राप्त कर लिया और वही हर्ष-शोकमय संसारको साँपके केंचुलकी तरह छोड़कर अलग हो गया, यही अनुभव है।

५. संसारमें प्रेम किससे है ? धनके लिए स्त्री-पुत्रका परित्याग करके परदेश जाते हैं। स्त्री-पुत्रके लिए अत्यन्त परिश्रमसे उपार्जित धनका भी परित्याग कर देते हैं। स्त्रीके लिए पुत्रका, पुत्रके लिए स्त्रीका, अपने शरीरके लिए दोनोंका, और दोनोंके लिए अपने शरीरका भी परित्याग देखनेमें आता है। लोकके लिए परलोकका, परलोकके लिए लोकका, ईश्वरके लिए जगत्का, जगत्के लिए ईश्वरका त्याग भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। जिससे राग है उससे द्वेष और जिससे द्वेष है उससे राग हो जाता है। शत्रु मित्र और मित्र शत्रु हो जाते हैं। इस देश, काल और अवस्थाका प्रिय पदार्थ दूसरी परिस्थितिमें ठीक विपरीत देखनेमें आता है। किससे, कब, कहाँ, क्यों, किस रूपमें राग हो और किससे विराग, यह न्याय कौन करे ? हाँ, इतना अवश्य अनुभवमें आता है कि अपने आरामके लिए सुषुप्ति-पर्यंकपर शयन करनेके लिए ऐसी कोई भी वस्तु, व्यक्ति, क्रिया अथवा भाव नहीं है, जिसको जहाँका-तहाँ, ज्योंका-त्यों छोड़कर मनुष्य अपने-आपमें लिपट न जाय। तब यह संसारका राग-वैराग्य, हानि-लाभ, ह्रास-उल्लास-कथा चित्रपटपर भिन्न-भिन्न दृश्योंको देखकर उठनेवाले भाव-तरंगोंके समान ही अस्थायी—क्षणिक नहीं है ! मनुष्य एक चित्रशालामें प्रवेश करता है, भयानक चित्र देखकर डरता है, बीभत्स चित्र देखकर घृणा करता है, शृङ्गार चित्र देखकर करुणासे द्रवित हो जाता है; परन्तु क्या उसके ये सारे भाव मनोरंजनमात्र नहीं हैं ? एक बार अपनी बुद्धिकी गर्दन पीछेकी ओर मोड़कर देखें,

njGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सिंहावलोकन करें, कितनी बार कितनोंके प्रति प्रेमकी, प्रेमास्पद होनेकी, वृत्तियाँ नहीं आयीं ! कुछ दिन रहीं। कुछ महीनों तक, वर्षोंतक उन्होंने सुख-दु:ख दिया। आज प्रयत्नपूर्वक स्मरण करनेपर भी वे नहीं लौटतीं। इसका क्या आश्वासन है कि आज जिसके प्रेममें हम मर-जी रहे हैं और जो हमारा सर्वस्व बना बैठा है, वह भी उसी कोटिमें नहीं चला जायगा जिस विस्मृतिके गम्भीर गर्तमें पहले पदार्थ पहुँच चुके हैं ? तब क्या सचमुच हमारे हृदयमें इस समय प्रेम है ? क्या वस्तुतः हमारा कोई प्रेमास्पद है ? किसी शत्रु-मित्रमें वास्तविक स्थायित्व है। यह प्रेम एक भ्रम है। यह अपने कालमें सच्चा भासता है। राग-द्वेषका जीवनमें केवल वहींतक उपयोग है जहाँतक वे मनोरंजनके दो पहलू हैं। चित्रशालाके करुण, बीभत्स, शृङ्गार आदि रसोंके चित्र देखनेसे उदय होनेवाले भावमात्र ही, जैसे मनोरंजनमात्र हैं, वैसे ही संसारके राग-वैराग्य भी मनोरंजनमात्र हैं, और आत्मतृप्तिकी एकरसताके उद्बोधक हैं। चलसे ही अचलकी सिद्धि होती है। छोटेसे ही बड़ा सिद्ध होता है और क्षणिक ही अविनाशीका साधक है—यह अनुभव है।

६. दो वर्ष पहलेकी बात है। एक सज्जन मिलनेके लिए आये। स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए, चिकने-चुपड़े, सविनय मधुर वाणी। झूठी-सच्ची बात बनाकर धोखा-धड़ीसे कुछ रुपये ले गये। ले गये, कोई बात नहीं। विचार तो यह है कि झूठ और धोखा क्यों ? बाहरसे दूधकी भाँति सफेद, फिर यह भीतर विष क्यों, यह आजकी एक समस्या है। आजकी ही नहीं, गम्भीरतासे देखो तो हमेशाकी है; परन्तु ऐसा क्यों है ?

मनुष्य बाहर देखता है, भीतर नहीं। वह स्थूल शरीरको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

खिलाता-पिलाता है, सजाता-सँवारता है, हजामत-मलामतसे दुरुस्त रखता है, स्फटिक-सा स्वच्छ, परन्तु इसका भीतरी हिस्सा गन्दा है। बाहरकी चमक-दमक, भीतरसे मैला-कुचैला, भूखा-प्यासा, दीन-हीन, नंग-धड़ंग। लोगोंको दिखानेके लिए बनाव-शृङ्गार और घरमें भूनी भाँग भी नहीं। बाजारका करोड़पति घरका दिवालिया। मुँहमें डकार पेटमें ठनठन-पाल। इसका अर्थ है कि मनुष्यने अपने सूक्ष्म शरीरकी सेवा-शुश्रूषा, जाँच-पड़ताल, देख-भाल छोड़ दी है, वह दम्भी हो गया है। हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोर-लुटेरोंको जान-बूझकर आश्रय दिये हुए हैं, और बाहरसे भलेमानुष बननेका ढोंग रचता है। आज विश्वके सम्मुख जितनी समस्याएँ हैं युद्ध, संघर्ष, बेकारी, भुखमरी, अभाव शिक्षाकी असुविधा प्रभृति—उसके मूलमें यही मनोवृत्ति है। हृदयका आकाश स्वच्छ हो तब बाहरकी चाँदनीका आनन्द आता है। केवल उत्पादनकी वृद्धि या विदेशोंसे समान मँगा-मँगाकर मनुष्यकी वासना पूर्ति करना अर्थात् तुष्टीकरण इस समस्याका समाधान है। व्याख्यान, उपदेश, कानून, सिपाही, फौज और अणुबम भी इस दशामें व्यर्थ हैं। वासनाकी पूर्ति और दमन दोनों ही पद्धति गलत हैं। इसके लिए ईमानदारीकी आवश्यकता है।

एक किसी भले मनुष्य या अपने-आपको ही समाजमें बैठा दीजिये और छूट दे दीजिए कि जो मनमें आये सो बोलते जाओ। आध-घण्टेके भीतर पागलपनका प्रमाणपत्र प्राप्त हो जायगा। आज मनुष्यका मन पागल हो गया है। बिना क्रम, बिना संगति और बिना स्वारस्यके न जाने क्या-क्या सोचता रहता है? इसी पागलकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए बाजारकी सारी दुकानें सजा दी गयी हैं। यह मनुष्य क्यों

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

चाहता है—इसका पता मनुष्यको देखनेसे नहीं लगता। बाजारको देखिये। मनुष्यके शरीरका भी स्त्री-बच्चोंका भी सौदा हो रहा है, धर्म भी वासनापूर्तिका सहारा, पहरेदार ही चोर बन रहा है—कोई करे क्या ? जबर्दस्तका ठेंगा सिरपर। जिसकी लाठी उसकी भैंस। आज ढोंगी, धूर्त, लठैत, बेईमानकी दसों अँगुलियाँ घीमें हैं, यह कबतक चलेगा ? यह कथा व्यक्तिकी नहीं, व्यक्तियोंके समूहकी है। दुःख भी अभावका नहीं—मनका है। समाज और सरकार अभावका दुःख पूरा करनेके लिए तो प्रयत्नशील है। होना ही चाहिए और उन्हें सफलता भी मिलेगी; परन्तु मनका दुःख कौन मिटाये ? आज कौन है कुमारिलभट्ट; जो 'को वेदानुद्धरिष्यति'की पुकार सुनकर वेदोंकी रक्षाकी व्रत-दीक्षा लेकर आजीवन उसीके लिए प्राणपणसे तत्पर हो गये थे। लोगोंका सूक्ष्म शरीर सुन्दर, सुगठित हो, विनयमधुर हो, स्वच्छ, शीतल, तृप्त हो इसके लिए जीवनदानकी, आदर्श जीवनकी आवश्यकता है, यह अनुभव है। है कोई आगे आकर अपनेको नमूनेके रूपमें उपस्थित करनेवाला ?

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

संकल्पों और सिद्धियोंका लक्ष्य

संकल्प वाहन है। यही जीवात्माको अभीष्ट वस्तुओंके पास ले जाता है और सम्पूर्ण फलोंको, सिद्धियोंको, जीवात्माके पास ले आता है। इसलिए संकल्पका सिखाये हुए घोड़ेकी तरह सधा होना आवश्यक है।

जिस वस्तु अथवा व्यक्तिसे सुखकी आशा होती है; उसकी प्राप्तिके लिए और जिससे दु:खकी सम्भावना होती है; उसके त्यागके लिए संकल्प होता है। इससे यह सिद्ध है कि किसी भी वस्तु या व्यक्तिके सम्बन्धमें हमारा जो विशेष ज्ञान है वही संकल्पका हेतु है। निर्विशेष ज्ञान संकल्पका हेतु नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि विशेषताओंके ज्ञानवाली बुद्धि ही संकल्पकी जननी है।

जिन वस्तुओं और व्यक्तियोंके सम्पर्क, भोग और उपलब्धिसे सुखकी सम्भावना है उसका क्षेत्र जितना ही सीमित होगा संकल्प भी उतने ही अल्प और नियन्त्रित होंगे। धर्म और अधर्मका, उचित और अनुचितका विवेक करनेसे उनका क्षेत्र सीमित हो जाता है; क्योंकि अधर्म और अनौचित्य अन्ततोगत्वा दु:खके कारण हैं। धर्मसे शक्तिका संचय, पोषण और संवर्धन होता है; क्योंकि वह धारणात्मक है। वह अपने ही हृदयमें रहकर संकल्पोंको संयममें रखता है। संयम ही शक्तिका खजाना है।

भोग, संग्रह एवं यश आदि लौकिक पदार्थोंकी सिद्धि तीन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रकारसे होती है—(१) प्रारब्धसे (२) उद्योगसे और (३) अनुग्रहसे। किस व्यक्तिका किस समय, किस स्थानमें, किसके संयोगसे, किस प्रकारके प्रारब्धका उदय होगा, यह पहले ज्ञात नहीं रहता है। इसलिए मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह पुरुषार्थ उद्योगके द्वारा सुखप्रद प्रारब्धको ही जाग्रत् करनेका प्रयत्न करे। पापपूर्ण, राग-द्वेष-प्रधान काम-क्रोध, लोभ-मोहमूलक उद्योगोंके द्वारा दुःखप्रद प्रारब्धको जाग्रत् करनेकी चेष्टा न करे। यदि उद्योग करनेपर भी प्रबल दुःख-प्रारब्ध न दबे तो उसमें मनुष्यका कोई अपराध नहीं है।

हमारा जीवन शक्ति और शान्तिसे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ता रहे, हम अज्ञानके अन्धकारमें भटक न जायँ और दुःखके गड्ढेमें गिरकर प्रगतिशून्य न हो जायँ, केवल इसीके लिए जितने उद्योगकी आवश्यकता हो, विवेकपूर्वक करें। व्यक्तिगत सुख और स्वार्थके सम्बन्धमें सन्तोष ही सबसे बड़ी सिद्धि है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी जिसकी दृष्टि अपने लक्ष्यसे च्युत नहीं होती, जिसमें सहनेकी सामर्थ्य है वही सिद्ध है।

उद्योगकी सफलताके लिए सदाचार, संयम, सेवा, सद्भाव और सद्बुद्धिकी नितान्त आवश्यकता है। अभिमान सब गुड़ गोबर कर देता है। उद्योग करते समय इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि हम उसका फल अपनी ओर खींच रहे हैं या सर्वात्मा ईश्वरकी ओर विकीर्ण कर रहे हैं। पहली दशामें वह हमारी शक्ति, सम्पत्ति और एकाग्रताको विक्षिप्त कर देगा और हम असफल तथा दुःखी हो जायँगे। दूसरी दशामें हम ईश्वरसे एक हो जायँगे। प्राप्त फलका विकीरण अर्थात् विश्वके लोगोंमें बिखेर देना ही ईश्वरके प्रति कर्मका समर्पण है और यही जनताकी सबसे बड़ी सेवा है।

• • •

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अनुग्रहसे जो सफलता मिलती है उसमें अनुग्राहक कौन है, यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए; क्योंकि दुष्टका अनुग्रह भी दुःखका हेतु है, जैसे शिकारी पशु-पक्षियोंको फँसानेके लिए किसी वस्तुके द्वारा उन्हें लुभा देते हैं—ऐसे ही स्वार्थी पुरुष भी हमारी वासनाके अनुकूल चारा डालकर हमें लुभा लेते हैं। उनकी यह क्रिया ऊपरसे हितकारी जान पड़नेपर भी भीतरसे सद्भाव-शून्य होती है और परिणाममें उससे दुःखकी प्राप्ति होती है। इसलिए ऐसे अनुग्रहसे सावधान रहना चाहिए।

अनुग्रह तीन प्रकारका वांछनीय है—सत्पुरुषका, देवता और ईश्वरका। हमारे जीवनमें कई ऐसी घटनाएँ घटित हुईं जिनमें यदि उपर्युक्त अनुग्रह प्राप्त न होते तो जीवनमें एक पग भी आगे बढ़ना सम्भव न होता और घोर अधःपतन हो जाता। अनेक-बार सन्तोंकी कृपासे काम-क्रोध-लोभ आदि दोषोंके प्रभाव क्षीण हो गये हैं। देवताओंकी कृपासे अर्थ, कर्म और यश सम्बन्धी सफलताएँ प्राप्त हुई हैं और ईश्वरकी कृपासे अविद्याका आवरण भंग करनेवाली बुद्धि प्राप्त हुई है। ईश्वरकी इस कृपाके बिना किसीको भी सच्चे सुख और शान्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ईश्वर न केवल सबके हृदयमें ही विराजमान है, वह सर्वरूप भी है। इसलिए किसीके भी प्रति राग-द्वेष न होनेसे अपने अन्तः-करणमें जो निर्मलता प्रस्फुटित होती है उसीमें ईश्वरके प्रसाद अथवा अनुग्रहका अनुभव होता है।

लौकिक संकल्पोंका नियन्त्रण करनेके लिए धर्मानुष्ठान, पारलौकिक संकल्पोंका केन्द्रीकरण करनेके लिए उपासना और निष्काम संकल्पोंका निरोध करनेके लिए योगाभ्यास सर्वोत्तम साधन हैं।

संकल्पोंका नियन्त्रण, केन्द्रीकरण और निरोध ही वास्तविक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सिद्धिके जनक हैं; क्योंकि इन्हींसे संकल्प शक्तिशाली होते हैं। मनमें जो भी संकल्प उठे उसको निवृत्त करनेका प्रयत्न कीजिये। जो धर्मानुसारी संकल्प निवृत्त नहीं किया जा सके उसकी सिद्धिमें कोई संदेह नहीं है। संकल्पोंको निवृत्त करनेके लिए महात्माओंके द्वारा अनुभूत कुछ सिद्ध साधन होते हैं; उनसे अनायास ही संकल्पोंकी निवृत्ति हो जाती है। उदाहरणके लिए कुछ साधन लिखे जाते हैं—

पहली बात—यह है कि संकल्पोंकी पूर्ति, नियन्त्रण, शान्ति, निवृत्ति अथवा बाधके लिए जो भी साधन किये जायँ, वे किसी अनुभवी महापुरुषसे परामर्श और अनुमति लेकर ही किये जायँ। अपने मनसे किये हुए साधनमें दोनों प्रकारसे बन्धन है। सफलतासे अपनी बुद्धि, प्रयत्न और सिद्धिका अभिमान बढ़ता है। विफलतासे पश्चात्ताप और विषादकी प्राप्ति होती है। उस मनुष्यका जीवन कितना असहाय है; जो संसारमें किसी भी एक व्यक्तिको अपने सच्चे सहायक, सुहृद् एवं अनुभवी पथ-प्रदर्शकके रूपमें प्राप्त करनेमें सफल नहीं हुआ। जीवनमें एक पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता अनिवार्य है। हमसे अधिक बुद्धिमान् और हमारा हितैषी दूसरा कोई नहीं है? मूर्खता और अहंकारका कितना उच्छृङ्खल अट्टहास है!

दूसरी बात—यह है कि किसी भी साधनकी सिद्धिमें श्रद्धा, तत्परता और जितेन्द्रियताका होना अनिवार्य है। दीर्घकाल तक लगातार आदर-बुद्धिसे सेवन करनेपर ही साधन सफल होते हैं।

तीसरी बात—यह है कि मनुष्यके जीवनमें ही नहीं, प्राणिमात्रके जीवनमें भी दो प्रकारके संकल्प होते हैं—एक तात्कालिक संकल्प और दूसरा महासंकल्प। तात्कालिक संकल्प

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

...ी दो प्रकारके होते हैं—प्रथम तो वे जो जीवन-निर्वाहके लिए अनिवार्य हैं और दूसरे वे जो अमर्यादित वासनाओंकी पूर्तिके लिए होते हैं। जो जीवन निर्वाहके लिए उपयोगी संकल्प हैं; ...नकी भी एक सीमा होनी चाहिए। उन्हें देश, काल, व्यक्ति, ...क्ति और वस्तुके परिमाण, परिणाम आदिका विचार करके ...ी एक सीमित मात्रामें स्वीकार करना चाहिए। जो केवल ...सना-पूर्तिके लिए संकल्प हैं; उनका सम्पूर्ण रूपसे निवारण ...रना चाहिए। यह वैराग्यके बिना होना सम्भव नहीं है। ...राग्यके जागरणके लिए अपने महासंकल्पपर ध्यान देना ...ड़ता है और उसीको ईश्वरकी खोज अथवा भक्ति कहते हैं।

यदि अपने संकल्प राग-द्वेष प्रधान न हों तो कर्मेन्द्रिय, ...नेन्द्रिय अथवा वागिन्द्रियके निरोधसे वे मिटाये जा सकते हैं। ...दाहरणके लिए—

१—स्थिरतासे बैठकर जिह्वाको ऐसी दशामें ले आइये कि ...मुखके भीतर ही अधरमें लटक रही हो। वह ऊपर, नीचे ...र दाँतोंको स्पर्श न कर रही हो। दाँत भी परस्पर मिले न ...। मुख बन्द हो। अब जबतक जीभ हिलेगी नहीं तबतक ...में कोई संकल्प नहीं उठ सकता। इसका रहस्य यह है कि ...ल्प भी शब्दपर आरूढ़ होकर ही अन्तर्देशमें प्रकट होते हैं। ...येक संकल्पके साथ कोई-न-कोई शब्द होता है। शब्द बोलने- ...की वागिन्द्रियका अधिष्ठातृ देवता अग्नि है। अग्निको प्रज्वलित ...रनेके लिए अरणि-मन्थन होता है। जब जीभके नीचे और ...ऊपरकी अधरारणि और उत्तरारणिका जिह्वारूप मन्थानकाष्ठसे ...लोडन नहीं होता है, तब अग्निकी उत्पत्ति नहीं होती है। शब्द ...होनेसे संकल्पका उदय भी नहीं होता है।

२—स्थिरतासे बैठकर दोनों नेत्रकी पुतलियोंको अचल कर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दीजिए। मनमें रूपकी कल्पना नहीं आ सकती और कोई संकल्प किसी-न-किसी रूपमें ही आता है। रूपका निरोध होने संकल्पका भी निरोध हो जायगा। विषय निराकार नहीं हैं संकल्प निर्विषयक नहीं होता। नेत्रकी पुतलियोंके निरोध संकल्पका निरोध हो जाता है।

३—मूलाधार चक्रसे अथवा मणिपूरक चक्रसे दीर्घ घण्टा नादवत् लम्बे प्रणवका उच्चारण कीजिए। अपने-आप धीरे- संकल्पोंके महल ढह जायँगे।

४—भगवान्का कोई भी नाम मन ही मन राग-ता गाइये। रसास्वादन होते ही संकल्प-परम्परा शान्त हो जाय

चौथी बात—यह पहले ही कहा जा चुका है कि राग- मूलक संकल्पोंकी शान्तिके लिए अपने महासंकल्पका अनुसन् अथवा ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिए। यह जो हमारे जीव छोटे-मोटे संकल्प हैं, सब अवान्तर संकल्प हैं। जैसे एक आ बनानेका बड़ा संकल्प हो जानेपर ईंट, सीमेंट, लोहे आदि विषयमें अवान्तर संकल्प होते हैं; वैसे ही हमारे किसी म संकल्पकी पूर्तिके लिए बहुत-से छोटे-मोटे संकल्प हुआ करते हमारी क्रियाओंका मुख्य लक्ष्य वह महान् संकल्प ही हो चाहिए। तब अवान्तर संकल्पोंके त्यागमें कोई विशेष कठि नहीं होगी।

यह महासंकल्प क्या है? इस विशाल विश्वके सभी अविनाशी, परिपूर्ण, सर्वात्मक, अनायस, स्वतन्त्र एवं अप रूपसे अनुभूयमान सुख चाहते हैं। यह चाह ही जीवनका म संकल्प है। जब भ्रमवश इसी इष्टको किसी सीमित देश, का वस्तुमें प्राप्त होनेकी कल्पना कर बैठते हैं और उसीको सर्व मान बैठते हैं; तब अपने मुख्य लक्ष्यसे च्युत होकर राग-द्वेषमूल

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अभिनिवेशमें मग्न हो जाते हैं और छोटी-छोटी बातोंका ध्यान न छोड़ सकनेके कारण क्लेश पाते हैं। जब अपने मुख्य इष्टपर ध्यान जाता है; तो छोटी-छोटी वस्तुओंकी पकड़ अपने-आप ही छूट जाती है और क्लेश भी क्षीण होने लगते हैं।

ऊपर प्राणीके जिस इष्टकी चर्चा की गयी है वह सहज है और सबका है। यदि सब बातोंको पिण्डीभूत करके कहना हो तो ईश्वरके अतिरिक्त वह कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती। इसी ईश्वरको हम सब चाहते हैं। उसकी प्राप्तिसे सम्पूर्ण संकल्प अपनेआप ही शान्त हो जाते हैं। जबतक हम अपने परम इष्टको नहीं समझते हैं; तबतक मूर्खतासे ही अपनेको या दूसरेको नास्तिक मानते हैं। जबतक यह अप्राप्त अथवा परोक्ष रहता है तबतक इसके बारेमें विचार किया जाता है। यही खोजका मार्ग है और अप्राप्त मानकर ही जब इसके संयोग-वियोग या अनुग्रहकी भावना की जाती है; तब उसको भक्तिमार्ग कहते हैं। ये दोनों ही मार्ग छोटे-मोटे संकल्पोंकी पूर्तिके आग्रहको शिथिल कर देते हैं। तब अपने-आप ही अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है। यह शुद्धि ही सिद्धि है। इसीमें ज्ञानका उदय होकर परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है।

थोड़ी गम्भीरताके साथ विचार करनेपर ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जब हम ऐसा सुख चाहते हैं; जो सब देशमें, सब कालमें, सबमें मौजूद हो, मालूम पड़ता रहे, बिना श्रमके हो और उसके साथ दुःखका कोई सम्बन्ध न हो; तब हम अनजानमें यह बात स्वीकार कर लेते हैं कि वह इसी देशमें, इसी कालमें, इसी रूपमें और अपने-आपसे अभिन्न ही विद्यमान है; क्योंकि अपने-आपसे भिन्न होनेपर उसके बारेमें पहले जो बातें कही गयी हैं; उनमेंसे एक भी ठीक-ठीक नहीं सिद्ध हो सकतीं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कोई सुख पूर्ण हो और यहाँ न हो, अविनाशी हो और अव- हो, सब हो पर 'मैं' न हो, अनायाससिद्ध अपरोक्ष हो प आत्मा न हो, आत्मा हो पर ज्ञान न हो—ऐसा सम्भव ही नहीं है। इसलिए जबतक अपने इष्ट सुख अथवा ईश्वरकी भ्रम-मूलक परोक्षता बनी रहती है तभीतक अपने महासंकल्पों पूर्तिके लिए कायिक, वाचिक अथवा मानसिक अभ्यासों आवश्यकता रहती है। परोक्ष और अन्य वस्तुके सम्बन्धमें भावना, विश्वास एवं स्थितिकी भी अपेक्षा है। अपने अपरोक्ष अनुभवस्वरूप आत्माके सम्बन्धमें उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। संकल्प चाहे छोटे-मोटे हों और चाहे महासंकल्प हों अपने इष्टके साथ अपने स्वरूपका अभेद अज्ञात होनेसे ही होते हैं। अपने स्वरूपकी ब्रह्मताका बोध होते ही अज्ञानकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। उपाधिकी प्रतीति तक संकल्पोंके प्रतीत होनेपर भी वे बाधित ही होते हैं, उनकी वास्तविक सत्ता नहीं होती। इसीसे वे अपने अधिष्ठान एवं प्रकाशक स्वयंप्रकाश ब्रह्मस्वरूप आत्मसत्ताका कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। इसी सम्पूर्ण संकल्पोंकी परिसमाप्ति है। यह किसी संकल्पकी सिद्धि नहीं बल्कि स्वतःसिद्ध है और स्वतःसिद्ध कहनेका अभिप्राय सिद्ध और साधनके भेद-भ्रमकी निवृत्तिमें ही पर्यवसित है।

परमार्थ वस्तु परिपूर्ण है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

विमुखजन भजनमें कैसे लगें ?

प्र०—जो लोग शास्त्र और धर्मपर विश्वास नहीं करते उन्हें भजनमें कैसे लगाया जाय ?

उ०—सबके लिए एक ही उपाय नहीं हो सकता। जिसको भजनमें लगाना हो उसकी रुचि, प्रवृत्ति, स्वभाव, दुर्बलता, आदर्श और प्रियताका अध्ययन करके भजनमें उसकी अनुकूलता और अभीष्ट-सिद्धि दिखानी चाहिए। भर्त्सना और अपमान कदापि नहीं करना चाहिए। जब उसकी बुद्धि शास्त्रोंके प्रति विपरीतभाव नहीं रखेगी तब वह धीरे-धीरे धर्म ईश्वरको भी स्वीकार कर लेगा। फिर तो उसे भजनका स्वाद मिल जायगा और उसकी रुचि स्वयं भजनमें हो जायेगी।

प्र०—वे जब कुछ मानते ही नहीं तब उनसे भजनकी आशा कैसे की जाय ?

उ०—मानते क्यों नहीं! कुछ-न-कुछ तो सभी मानते हैं, सबके मनमें किसी-न-किसी वस्तु या स्थितिकी कामना होती है। जो वस्तु या स्थिति प्राप्त है, उसकी रक्षा या स्थिति प्राप्त है, उसकी रक्षा या वृद्धिका लोभ होता है, अनिष्ट वस्तु या परिस्थितिकी प्राप्तिका भय होता है। काम और लोभकी पूर्तिके लिए, भयकी निवृत्तिके लिए सबको एक बलवान् आश्रयकी आवश्यकता हुआ करती है। जब उन्हें मालूम होगा कि हमारी अभीष्ट-सिद्धिके लिए ईश्वर एक महान् आश्रय है, तब वे ईश्वरकी सत्ता स्वीकार कर लेंगे।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्र०—वे किसी भी अदृश्य सत्ताको स्वीकार ही नहीं करते।

उ०—परिस्थितियाँ उन्हें विवश करेंगी माननेके लिए। वे जब चाहते हैं कि कोई चोरी न करे, हिंसा न करे, छल न करे झूठ न बोले, और अपनी वस्तुओंके छिन जानेसे, दुष्टोंके आक्रमणसे भयभीत होते हैं, तब उन्हें अदृश्य सत्ताको स्वीकार करना ही पड़ता है। केवल सामाजिक शासन अथवा राजकीय शासनके द्वारा सबका नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। मानसिक अपराधोंकी तो बात ही क्या है, शारीरिक अपराध भी नहीं रोके जा सकते। प्रत्येक व्यक्तिके साथ एक-एक निरीक्षक नियुक्त कर दिया जाय और वह निगरानी करता रहे, ऐसा सम्भव नहीं है। उन निरीक्षकोंको भी तो निरपराध होना चाहिए। व्यवहारमें और मनमें भी लोगोंको निरपराध रखनेके लिए एक ऐसी अदृश्य सत्ताकी आवश्यकता है जो सबके साथ रहकर सबके कर्मोंकी साक्षिता करे, अन्यथा सामाजिक और राजकीय दोनों प्रकारकी व्यवस्था भंग हो जायेगी।

प्र०—जो लोग अदृश्य सत्ताको मानते हैं वे भी तो अपराध करते हैं और सच पूछिये तो उनके अपराधोंसे घबराकर ही लोगोंने अदृश्य सत्ताको अस्वीकार किया है!

उ०—वे मानते नहीं, माननेका ढोंग करते हैं। उनके दुराचरणोंको देखकर पवित्र और उपयोगी सिद्धान्तका त्याग उचित नहीं है। जिप्र प्रकार ईश्वरको न माननेवालोंको प्रेमसे समझाकर ईश्वरके भजनमें लगाना चाहिए, वैसे ही उन अपराधियोंपर भी सत्य सिद्धान्त प्रकट करके ईश्वरकी व्यापकता और न्यायशीलता समझानी चाहिए। केवल दण्डभयसे समाजकी कोई व्यवस्था चल नहीं सकती; क्योंकि समाजमें सब प्रकारके लोग सर्वदा रहते हैं। मानसिक पाप जो कि आगे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

चलकर शारीरिक हो जाते हैं, धर्म और ईश्वरको माने विना निवृत्त नहीं हो सकते। इसलिए किन्हीं व्यक्तियोंको देखकर कुछ निर्णय करना ठीक नहीं, आदर्शका ही ध्यान रहना चाहिए।

प्र०—वर्तमान कालके नवशिक्षित प्रायः इसी मार्गपर जा रहे हैं, उनकी शिक्षा और उससे संस्कृत बुद्धि ऐसा ही करनेका उपदेश करती है, क्या कारण है ?

उ०—समाजके मनोवैज्ञानिक अध्ययनका अभाव, अनुभवकी कमी, सहसाकारिता, भोगाभिमुखता और धर्महीन देशोंका अन्धानुकरण ही इसका कारण है।

प्र०—यह तो उपयोगिताकी वात हुई, सत्य क्या है ?

उ०—उपयोगिताकी दृष्टिसे भी कई बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं। गणितशास्त्रमें अनेकों स्वयंसिद्धियाँ केवल व्यवहार-सिद्धिके लिए मानी गयी हैं। दीर्घता और विस्तारसे रहित विन्दुसे बनी रेखा, रेखासे बने अक्षर—सब-के-सब निराकार हैं, फिर भी व्यवहार-सिद्धिके लिए देश-भेदसे अक्षरोंकी अनेकों आकृतियाँ स्वीकृत हुई हैं और आज उनके बिना समाजका काम नहीं चल सकता। समय-विभाग वर्ष, मास, पक्ष, दिन, मुहूर्त आदिके नाम केवल व्यवहार-सिद्धिके लिए कल्पित हैं, नहीं तो रविवार और सोमवारमें कालकी दृष्टिसे क्या भेद है ? प्रत्येक वस्तुका रूढ़ नाम, पूर्व-पश्चिम आदिके दिग्भेद भी सामाजिक उपयोगिताके लिए ही हैं, ऐसी स्थितिमें यदि ईश्वर, धर्म और शास्त्रोंको केवल उपयोगिताकी दृष्टिसे ही स्वीकार किया जाय तो क्या हानि है ? कहनेका अभिप्राय यहाँ इतना है कि उपयोगिताकी दृष्टिसे भी यह ठीक है, सत्य तो है ही।

प्र०—सत्य कैसे है ?

उ०—प्रायः तीन प्रश्न उठा सकते हैं, क्यों, कैसे और क्या ?

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

इन प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर देनेके लिए तीन प्रकारके शास्त्र हैं। किसी वस्तुका निर्माण कैसे अर्थात् किस प्रकार होता है, इसका उत्तर आधुनिक विज्ञानशास्त्र देता है। किस अनुपातसे मिट्टी, पानी, उष्णता आदिके संयोगसे किस प्रकारकी चेतनाका विकास होनेपर वृक्षकी कौन-सी जाति बनती है? यह बात यन्त्रके द्वारा परीक्षा करके बतलायी जा सकती है। किसी वस्तुका क्यों निर्माण होता है? यह अदृष्टविषयक प्रश्न है। इसका अर्थ है अमुक वस्तुका निर्माण किसलिए, किस प्रयोजनसे हुआ? यदि उस वस्तुका बनानेवाला कोई दूसरा व्यक्ति है, तब इस प्रश्नका यह आशय हुआ कि उसने किस उद्देश्यसे उस वस्तुकी सृष्टि की? यदि वह वस्तु स्वयं बनती है तो वह क्यों बनती है? उसके बननेमें प्रयोजन क्या है? क्योंका अर्थ कारणविषयक जिज्ञासा भी होता है। किसी वस्तुको किसी विशेष या सामान्यरूपसे क्यों स्वीकार करें? अर्थात् उसके स्वीकार करनेसे क्या हानि और क्या लाभ है? तीसरा प्रश्न है—क्या? अर्थात् उस वस्तुका स्वरूप क्या है?

ईश्वर सत्य कैसे है? यह प्रश्न तब बन सकता था जब ईश्वर कोई स्थूल वस्तु होता और यन्त्रके द्वारा उसकी परीक्षा करके उसके विशेष-विशेष तत्त्वोंका विश्लेषण करके बतलाया जा सकता। जब ईश्वर अतीन्द्रिय, एक, एकरस और स्वयंसिद्ध है, तब उसके सम्बन्धमें यह प्रश्न कैसे उठ सकता है कि वह सत्य कैसे है? ईश्वरका यदि कोई कारण होता तब भी उसके द्वारा प्रकारभेदका निरूपण सम्भव होता। वह समस्त कारणोंका कारण है। इसलिए यदि अशक्यतया निरूपण करना ही पड़े तो समस्त कार्योंके कारणके रूपमें और कार्योंका रचनाकौशल अत्यन्त विशिष्ट एवं बुद्धिमत्तापूर्ण है, इस प्रकारके तर्कोंके द्वारा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

किया जा सकता है। वह विज्ञानशास्त्रका विषय नहीं है। इसलिए जहाँ विज्ञान मूक हो जाता है, वहाँ तर्क, न्याय या दर्शनशास्त्रके द्वारा उसका निरूपण किया जाता है।

ईश्वरके सम्बन्धमें 'क्यों' यह प्रश्न भी ठीक नहीं उतरता। यदि ईश्वर मनुष्यबुद्धिकी सृष्टि होता, तो मनुष्यने ईश्वरको क्यों बनाया है ? यह प्रश्न बन सकता था। जब समस्त सृष्टिके निर्माता ईश्वर ही हैं, तब वे क्यों बने या उन्होंने यह क्यों बनाया, यह परबुद्धिविषयक प्रश्न नहीं उठ सकता। यदि युक्तिके द्वारा इस प्रश्नका उत्तर दिया जाय कि ईश्वरको क्यों माना जाय तो बुद्धिभेदके कारण उत्तरभेद भी अवश्यम्भावी है।

कोई मुक्तिके लिए, कोई कामनाओंकी पूर्तिके लिए, कोई धर्मकी सिद्धिके लिए और कोई शारीरिक सुख-सम्पत्तिके लिए ईश्वरकी सत्ता स्वीकार करते हैं। प्रेमीलोग केवल प्रेमके लिए और परमात्माकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए ऐसा करते हैं। ईश्वरकी मान्यताके विषयमें जिसकी जैसी बुद्धि है वह वैसा ही कारण ढूँढ़ निकालेगा। भक्तिशास्त्रमें इसका विस्तृत वर्णन है।

ईश्वर क्या है ? यह प्रश्न ठीक-ठीक बनता है और इस जिज्ञासाके समाधानमें ही वेदान्तदर्शनका प्रणयन हुआ है। सृष्टिके व्यष्टि और समष्टिभेद, समष्टि और व्यष्टिके अभिमानी एवं व्यष्टि और समष्टिके धर्मभेदसे जीव और ईश्वरका पार्थक्य स्वीकृत हुआ है; व्यष्टिका अभिमानी जीव शब्दका वाच्यार्थ है और समष्टिका अभिमानी ईश्वर शब्दका। ये दोनों गौण अर्थ हैं, ईश्वर और जीव दोनों शब्दोंका लक्ष्यार्थ एक सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म है और वही ईश्वर शब्दका मुख्य अर्थ है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति और प्राकृत जगत्‌के परे, इनको अपने अन्तर्भूत रखता हुआ जो विशुद्ध चैतन्य है वही ईश्वर है और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

एकमात्र वही सत्य है, उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु सत्य नहीं।

प्र०—समस्त जगत्के मूलमें जो एक सद्वस्तु है वही ईश्वर है। यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है; परन्तु आधुनिक विज्ञान उस मूल वस्तुको जड़ बतलाता है और इस प्रकार वह जड़ाद्वैत-वादका विस्तार करता है। उस वस्तुके चेतन होनेका निश्चय कैसे किया जाय ?

उ०—आधुनिक विज्ञानशास्त्रियोंकी दृष्टि केवल पञ्चभूतोंमें ही सीमित है, वे इन्हींसे चेतनाका विकास मानते हैं। वे चेतन-का मूल पञ्चभूत और पञ्चभूतोंका मूल एक जड़ प्रकृतिको मानते हैं। प्रकृति परिणामिनी है और उसीका फल यह विश्वसृष्टि है। यह सृष्टि कैसे हुई ? इसका उत्तर तो वे यथाकथञ्चित् दे लेते हैं; परन्तु यह सृष्टि क्यों हुई ? इसका कोई उत्तर उनके पास नहीं है। कुछ लोग परिणामको प्रकृतिका स्वभाव मानते हैं और कुछ आकस्मिक घटना विशेष; परन्तु सृष्टिकी इस निरुद्देश्यतासे किसी भी विचारवान्को सन्तोष नहीं होता। इससे उत्तम और बहुत ऊपरतक पहुँचा हुआ सांख्यका सिद्धान्त है। यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृतिका विकार है। वे सांख्यवादी चार प्रकारके पदार्थ मानते हैं। एक तो सबका कारण; परन्तु किसीका कार्य नहीं = प्रकृति। दूसरे, जो स्वयं कार्य हों; परन्तु दूसरे पदार्थोंके कारण भी हों = प्रकृति-विकृति। तीसरे, वे जो केवल कार्य हों, किसीके कारण न हों=पञ्चभूत। यहाँतक जड़वर्गका विभाजन है। इसमें बुद्धि, अहंकार, मन और इन्द्रियाँ भी हैं; परन्तु उनकी स्थिति पञ्चभूतोंके विकाससे नहीं मानी गयी है; बल्कि प्रकृतिके विकारसे मानी गयी है। वे पञ्चभूतोंका कार्य नहीं, कारण हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यावहारिक जगत् और व्यावहारिक चेतना

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्राकृतिक है, प्रकृतिके अन्तर्गत है। ऐसा मान लेनेपर भी यह प्रकृतिमें विकार या विकास क्यों हुआ ? इसका कुछ ठीक-ठीक उत्तर देनेके लिए एक चौथा तत्त्व स्वीकार किया है; जो कार्य और कारण दोनोंसे अतीत है और जिसके भोगके लिए ही प्रकृति विकृत होकर नाना प्रकारके नाच नाचती है। सांख्य-शास्त्रने उस कार्य-कारण दोनोंसे विलक्षण तत्त्वको असंग पुरुषके नामसे कहा है। उसके विभु होनेपर भी प्रयोजनवश अर्थात् जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख आदिकी भिन्नता सिद्ध होनेके लिए पुरुषोंको अनेक मान लिया गया है और इस प्रकार सृष्टि क्यों और सृष्टिके भेद क्यों इसका समाधान किया गया है। आधुनिक विज्ञान अभी सांख्यके सिद्धान्तका भी ठीक-ठीक प्रत्यक्ष नहीं कर पाया है।

सांख्यके इस पुरुषसिद्धान्तको समझ लेनेके पश्चात् वेदान्तका नम्बर आता है और वह अनेक पुरुषोंके अस्तित्व और प्रकृतिकी पारमार्थिक सत्ताका निषेध करके एक चित् सत्ताकी स्थापना करता है; विज्ञानशास्त्रने जब सांख्यशास्त्रमें उठनेवाले प्रश्नोंका ही ठीक समाधान नहीं किया है, तब वेदान्तसे तो उसकी तुलना ही क्या की जा सकती है ?

चित् सत्ता अद्वितीय अनन्त वस्तु है या जड़ सत्ता, इसको समझनेके लिए यहाँ केवल एक युक्ति दी जाती है। जगत्‌में समस्त पदार्थोंको दो भागोंमें विभक्त कर दीजिये, एक ज्ञाता दूसरा ज्ञेय। ज्ञाता अहं है और ज्ञेय इदं। ज्ञाता अहं चेतन है और ज्ञेय इदं जड़। अहंके बिना इदंकी सत्ता नहीं होती; परन्तु इदंके बिना भी अहंकी सत्ता रहती है। इदं अनित्य और असत्य है, अहं नित्य एवं सत्य है। अहंके द्वारा इदंका बाध किया जा सकता है; परन्तु इदंके द्वारा अहंका बाध नहीं किया जा-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सकता। इस प्रकार जड़ और चेतन—इन दो वस्तुओंकी व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करके परमार्थमें एकका बाध कर देते हैं और वह बाध केवल जड़ प्रकृतिका ही होता है, चेतनका नहीं। चेतनका निषेध करनेवाला भी तो चेतन ही होगा। इस प्रकार मूलवस्तुके रूपमें केवल चेतन ही सिद्ध होता है और वही ईश्वर शब्दका मुख्य अर्थ है। वैज्ञानिकोंका 'विकास' और सांख्योंका 'विकार' वेदान्तियोंका 'आत्मविलास' है अथवा 'लीला'।

प्र०—यह तो माना कि ईश्वर ही सत्य वस्तु है; परन्तु उसका भजन करना चाहिए या उसके भजनसे कुछ लाभ है यह बात कैसे जानें ?

उ०—सत्य वस्तुको जीवनका लक्ष्य न बनायें तो क्या असत्य वस्तुको बनायें ? सत्यके भजनसे लाभ नहीं होगा तो क्या असत्यके भजनसे लाभ होगा ? ईश्वरको मानते हुए भी जो उसका भजन नहीं करता या भजनको अपना कर्तव्य नहीं समझता, उसको बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता। जीवनका आदर्श कोई संसारिक सम्पत्ति, इस लोक या परलोकका भोग नहीं हो सकता; क्योंकि अनन्त परमात्माके अतिरिक्त सच्चे सुखकी प्राप्ति इन स्वल्प और विनाशी विषयोंमें नहीं हो सकती। जो लोग विषयोंको प्राप्त करना चाहते हैं; उन्हें विषयोंकी प्राप्तिके लिए भी भगवान्का ही आश्रय लेना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे उनकी विषयवासना शान्त हो जायगी और वे सच्चा सुख प्राप्त कर सकेंगे। जो लोग अपने जीवनमें सत्य, अहिंसा, सन्तोष आदि सद्गुणोंका पूर्ण विकास चाहते हैं, उनके लिए भी भगवान्का आश्रय ही परम साधन है। बिना भगवान्के आश्रयके दैवी सम्पत्ति टिक नहीं सकती।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्र०—देश-सेवा आदि कार्य भगवद्भजनके अन्तर्गत हैं या नहीं ?

उ०—देश आदि भगवान्‌के अन्तर्गत हैं या नहीं ? यदि देश, व्यक्ति, मूर्ति, भावना, अपनी सत्ता सम्पूर्ण वस्तुएँ भगवान्‌के अन्तर्गत ही हैं, तब किसीकी भी सेवा भगवान्‌की सेवा है इसमें क्या सन्देह है ? अन्तर इतना ही है कि सेवा करते समय यदि यह स्मरण रहा कि जिसकी सेवा मैं कर रहा हूँ, वह साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है तब तो इस जीवनमें अनन्त शान्तिका अनुभव होगा, अन्यथा सेवा करनेवाला इस परम लाभसे वञ्चित ही रह जायगा। शिष्यके लिए गुरु, पत्नीके लिए पति, पुजारीके लिए मूर्ति, देश-सेवकके लिए देश स्वयं परमात्मा है। इनकी सेवा परमात्माकी सेवा है। शर्त इतनी ही है कि परमात्माका स्मरण रहना चाहिए। यह सब परमात्मा है, इसका कारण यही है कि परमात्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है।

प्र०—जो लोग देशसेवा आदि करते हैं, परन्तु भगवान्‌का स्मरण नहीं रखते, उनकी क्या गति होगी ?

उ०—देशसेवा आदिके फलस्वरूप वे जो कुछ चाहते होंगे, वही उन्हें मिलेगा। जो मुक्ति या परमात्माको चाहते हैं, उन्हें उसी साधनासे परमात्माकी प्राप्ति भी हो सकती है। जो लोग कुछ चाहते नहीं, निष्कामभावसे देशसेवाके लिए देशसेवा करते हैं, उनका हृदय शुद्ध हो जायगा और वे भी परमात्माको प्राप्त कर लेंगे। परन्तु जो ईश्वर और धर्मसे द्वेष रखते हैं, उन्हें तो द्वेषका ही फल मिलेगा। द्वेषका फल दुःख है, वह चाहे किसीसे भी हो। जो परमात्मासे द्वेष करते हैं, उनकी शान्तिका मार्ग अवरुद्ध है। वे लौकिक दृश्योंकी सफलतामें भी दुःखी ही रहेंगे।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्र०—क्या यह बात उन-उन लोगोंको किसी प्रकार समझायी जा सकती है ?

उ०—क्यों नहीं ? कोई त्यागी हो, तपस्वी हो, सदाचारी हो, अनुभवी हो और प्रेमसे उन्हें समझाना चाहे तो समझा सकता है। कई लोग जो समझानेके अधिकारी नहीं हैं उनके पास जाते हैं और निराश होकर लौटते हैं। कुछ लोग आवेशवश उनका अपमान और भर्त्सना करने लगते हैं और यह भूल जाते हैं कि उनके अन्दर भी ईश्वर है अथवा उन्हें भी अपने मतमें लाकर भाई-भाईकी तरह रहना है। उनके किये हुए अपमानके कारण दूसरे लोग प्रभावित नहीं होते और अच्छी एवं सच्ची बातको भी स्वीकार नहीं करते। यदि अधिकारी पुरुष उन्हें प्रेमसे अनुभवकी भाषामें समझायें तो वे लोग भी जो ईश्वर और धर्मको नहीं मानते, भजनकी महत्ता समझें और सचाईके साथ भजनमें लग जायँ। भजन एक मनोभाव है और वह शरीरकी किसी भी परिस्थितिमें किया जा सकता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

दुःख-निवारणकी युक्ति

(१)

मेरी उम्र छः बरसकी थी। कक्षा 'ब' में पढ़ता था। एक
कलम बनानेका चाकू बस्तेसे निकालकर फेंटेमें खोंस
या। थोड़ी देरके बाद इस बातका स्मरण नहीं रहा। मैं
ने लगा—'मेरा चाकू खो गया।' अध्यापकने सब लड़कोंको
शा कराया। डाँटा डपटा, बेंत उठाकर धमकाया। कुछ
तीजा नहीं निकला। इतनेमें ही एक लड़केने कहा—'यह
ये चाकू तो इनके फेंटेमें ही खुँसा हुआ है।' मैंने आश्चर्यके
देखा कि चाकू अपने पास ही है। बचपनकी यह एक
टी-सी घटना है। जब बड़ा हुआ और विचार किया तब
लूम पड़ा कि उस समय अपनेको और दूसरोंको भी दुःखी
नेका एकमात्र कारण हमारी भूल ही थी।

(२)

तब मेरी अवस्था लगभग नौ वर्षकी हो चुकी थी। मैं एक
के सम्बन्धीके घर गया हुआ था। उनके घरमें एक युवक
। उस समय उनकी अवस्था सतरह-अठारह वर्षके आस-
स रही होगी। दो-तीन घण्टोंमें ही उन्होंने मुझसे इतना
र किया कि मेरे मनमें यह दृढ़ धारणा जम गयी कि ये
सबसे अधिक प्यार करते हैं। माँ-बाप, सगे-सम्बन्धी
रकी शिक्षा और पढ़ने लिखनेके लिए प्रायः मेरे स्वच्छन्द
-मेलमें बाधा डालते थे, इसलिए उनकी प्रीति कम जँचती

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

थी। इन महाशयके उन्मुक्त प्यारने मुझे मोहित कर लिया परन्तु उस दिनके बाद संयोगवश आठ-नौ बरसतक उन भेंट न हो सकी। सत्रह-अठारह वर्षकी अवस्थातक मैं उन स्मृति और प्यारको अपने हृदयमें पालता रहा। जैसे भ ईश्वरका नाम जपते हैं वैसे ही कभी-कभी मैं उनके नाम जप करता। जैसे नैयायिक व्याप्तिग्रहण एवं परामर्शके द्वा अनुमान लगाते हैं वैसे ही मैं उनकी गतिविधिके सम्बन् कल्पनाओंकी लड़ी जोड़ता रहता। जैसे प्रेमी अपने प्रियतम लिए छटपटाते रहते हैं वैसे ही मैं उनके लिए व्याकुल उठता। परन्तु उनके पास जाने और मिलनेका अवसर न मिला। जब मैं उनके पास गया, वे एम्. ए. पास करके कि सरकारी पदपर नियुक्त हो चुके थे। मैंने बहुत चेष्टा की मैं किसी प्रकार उनकी सोयी हुई पुरानी स्मृति जगाऊँ; पर वे मुझे नहीं पहचान सके और अन्ततक नहीं पहचान सके मेरे मनमें यह प्रश्न उठा कि क्या यह प्यार, सम्बन्ध, ममता आसक्ति, केवल अपने मनका एक स्वतन्त्र विकार ही है जिसके लिए यह होता है; उसके साथ इसका कुछ भी सम्ब नहीं है? होता होगा। मैं इस विषयकी कोई मनोवैज्ञानि व्याख्या नहीं करना चाहता। परन्तु मेरे मनमें उनसे मिलने लिए जो वर्षोंतक व्याकुलता रही, दुःख रहा उसका का वे नहीं थे, मेरी भूल ही थी और जिस समय यह बात समझमें बैठ गयी उसी समय मेरा सारा दुःख-दर्द मिट गया

(३)

उन्हीं दिनोंकी बात है, मैं घरसे भागकर अयोध्याजी और भगवान्‌की कृपासे जानकी-घाटवाले पण्डितजीके पहुँच गया। जब पण्डितजीको मालूम हुआ कि मैं घर-द्वार

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

गोरखधन्धेसे घबराकर साधु होनेके लिए आया हूँ; तब उन्होंने मुझसे पूछा—'तुम्हारा घर कच्चा है या पक्का ?' मैंने उत्तर दिया—'कच्चा।' उन्होंने पूछा—'घरमें कितने प्राणी हैं ?' मैंने कहा—'चार।' बोले—'भोजन क्या मिलता है ?' मैं—रोटी, दाल, चावल।' पण्डितजीने कहा—'तुम्हारा घर कच्चा और मेरा मठ पक्का। तुम्हारे घरमें चार प्राणी हैं, मेरे सौ सौ चेले रहते हैं। तुम अपने घरपर रोटी-दाल खाते हो, यहाँ लड्डू, पूरी, हलवा, मालपुए छकते रहते हैं। तो क्या इसीका नाम वैराग्य है ? तुम भगवान्‌की दी हुई प्रतिकूल परिस्थिति यदि प्रेमसे, उत्साहसे सहन नहीं करोगे, तो तुम्हारे अन्तःकरणमें धृति-शक्तिकी उत्पत्ति नहीं होगी। धैर्यके बिना मनुष्यके जीवनका निर्माण नहीं हो सकता। घरके लोगोंकी प्रतिकूलता भी ममता और प्रेमसे भरी होती है। क्या तुम समझते हो कि साधु हो जानेपर तुम्हें प्रतिकूलताका सामना नहीं करना पड़ेगा ? सहिष्णुताका जितना पक्का अभ्यास घर-गृहस्थीमें हो सकता है उतना बाहर नहीं।' पण्डितजीने बड़े प्रेमसे मेरे घर लौटनेकी व्यावस्था कर दी।

(४)

उसके कुछ ही दिन बाद घरपर बिना किसीसे कहे-सुने एक महात्माके साथ कर्णवास चला गया। वे महात्मा थे परमहंस रामकृष्णके शिष्य स्वामी योगानन्दजी पुरी। मैंने उनसे श्रीकृष्णमन्त्रकी विधिपूर्वक दीक्षा ली थी और अनुष्ठान कर रहा था। पक्के घाटपर श्रीराधाकृष्णके मन्दिरमें ऊपर बैठकर प्रायः जप किया करता था। जब जप करने बैठता तो मुझे ऐसा जान पड़ता मानो मेरी माता, पत्नी आदि मेरे सामने दीन-हीन वेषमें खड़ी हैं। उनकी आँखोंसे टपाटप आँसू

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

टपक रहे हैं और वे रो-बिलखकर मुझसे घर लौटनेका आग्रह कर रही हैं। मैं कर्णवासमें एक महीनेतक रहा। जप करनेके लिए बैठते ही मेरे चित्तकी ऐसी दशा हो जाती। अन्ततोगत्वा स्वामीजीसे आज्ञा लेकर मैं घर लौट गया। जब मैं घर पहुँचा तो वहाँका दृश्य ही दूसरा था। मेरे लिए किसीके चित्तमें किंचित् भी दुःख नहीं था। इसका कारण यह हुआ कि मेरे चले जानेके बाद उन लोगोंके मनमें यह कल्पना हो गयी कि बिहारके दक्षिणी जिलोंमें जो हमारे बहुत-से परम्परागत शिष्य रहते हैं और जहाँसे प्रतिवर्ष पर्याप्त आमदनी होती थी; मैं वहाँ चला गया हूँ और लौटनेपर बहुत-सा धन-वस्त्र साथ लाऊँगा। इसीसे मेरे जानेका दुःख किसीको नहीं हुआ और न उन्हें मेरी कोई चिन्ता ही थी। उन्हें दुःख तब हुआ जब मेरे वहाँ पहुँचनेपर उन्हें यह बात मालूम हुई कि मैं किसी साधुके चक्करमें था, खाली हाथ आया हूँ और आगे भी इसी प्रकार भाग जानेकी सम्भावना है। इस घटनाने मेरे चित्तमें बहुत ही गहराई तक प्रवेश किया। मेरे मनमें निश्चय हो गया कि अपनी ममता ही दुःख देती है। उन्हें बिल्कुल दुःख नहीं था और मैं उनके दुःखकी कल्पना कर रहा था। वे कुछ प्राप्तिकी आशासे सुखी थे और निराश होनेपर दुःखी हो गये। ममता और आशा ही दुःखकी जननी है। इनके काट देनेपर उनकी जड़ ही कट जाती है।

(५)

बनारसके पास पाँच-सात कोसकी दूरीपर एक महात्मा रहते थे। बड़े ही निष्ठावान् तत्त्वज्ञ, फक्कड़ और सिद्ध। अपने पास आने-जानेवालोंको गाली दिया करते थे। मैं भी जब उनके पास जाता, कभी चौकीपर बैठाकर सिरपर फूल चढ़ा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

देते और कभी गालियाँ सुनाते। एक दिन उन्हें प्रसन्न देखकर मैंने पूछा—महाराज! आप गाली क्यों देते हैं? उनकी मुख-मुद्रा तुरन्त बदल गयी। रुष्ट होकर तुरन्त गालियोंकी वर्षा करने लगे। बोले—तुम्हें मेरी गाली काटती है? अरे भाई, यह संसार है। इसमें गालियाँ-ही-गालियाँ तो मिलती हैं। तुमसे मेरी गाली सहन नहीं होती तो संसारमें किस रास्ते चलोगे? यहाँ तो जो सहता है उसीके अन्तःकरणमें दृढ़निष्ठाका उदय होता है और परिपक्वता आती है। दुःखको मिटाओ मत, सहो! उससे लड़ो मत, उससे प्यार करो! प्यारका रस मिलते ही दुःखका ऐसा रासायनिक कायाकल्प हो जाता है कि वह परमात्माके रूपमें दर्शन देते हैं।

पहले-पहले उसी सयय मेरी समझमें यह बात आयी थी कि भक्तजन भगवान्‌से दुःखका वरदान क्यों माँगते हैं।

(६)

मैं काशीसे हरद्वार जा रहा था। किसी कारणसे बरेलीमें ठहर गया। जब दूसरे दिन रात्रिके समय गाड़ीमें घुसा तो एक घायली सज्जन थर्ड क्लासमें पूरे बर्थपर लेटे हुए थे। उन्होंने पहले तो मुझे वहाँसे हटनेके लिए बहुत गाली-गलौज की; परन्तु मैं नहीं टला। उनके पाँयके पास बैठ गया। इसपर उन्होंने लेटे-लेटे अपने पैरोंसे पीटना शुरू कर दिया। मैं मौन हो गया। अन्तमें उसने चिढ़कर कहा—'यह तो गाँधीजीका चेला मालूम पड़ता है।' मेरे मनमें कुछ विक्षेप और दुःख हुआ; परन्तु हरद्वार तो पहुँच ही गया। वहाँ मैंने एक महात्मासे पूछा—'तिरस्कार होनेपर दुःख क्यों होता है?' महात्माने कहा—'जिस समय तुम्हें तिरस्कार या दुःखकी प्राप्ति होती है, उस समय तुम सर्वथा उसीके योग्य रहते हो।' मैंने पूछा—'यह

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कैसे ?' महात्माजीने कहा—'कोई कूड़ेपर या गन्दे नालेमें जाकर सो जाये और उसपर कोई एक टोकरा कूड़ा और गन्दा पानी डाल दे तो क्या वह दोषी है ? मैंने कहा—'इसका क्या अभिप्राय है ?' वे बोले—यह शरीर क्या कूड़े-कचरे अथवा गन्दे नालेसे कुछ कम है ? हड्डी, मांस, खून, लार, विष्ठा, मूत्र सभी तो इसमें भरा है। जब तुम इसीका अभिमान करते हो, इसीमें यही बनकर बैठे हुए हो तो तिरस्कार और दुःख नहीं मिलेगा तो क्या ब्रह्मपद अथवा परमानन्दकी प्राप्ति होगी !'

सचमुच देहाभिमानी ही बिखरे हुए दुःखको चुम्बकके समान अपनी ओर आकृष्ट कर देता है। वह अपने लिए एक घेरा—कैद बना लेता है और वही इतना ठोस बन्धन हो जाता है कि हम दुःखसे घुल-घुलकर मरने लगते हैं। यदि हम विचार करके देखें तो हमारे जीवनके अधिकांश दुःख देहाभिमानके आधारपर ही टिके हुए हैं। उनकी निवृत्तिका उपाय यही है कि यह देहाभिमानका खम्भा उखाड़ फेंका जाय।

(७)

मेरे मित्रकी एक लड़की है। उन दिनों उसकी अवस्था दस वर्षकी रही होगी। एक दिन अकारण ही वह रोने लगी। घरके लोगोंने, पड़ोसियोंने बहुत समझाया-बुझाया, पूछताछ की—'बेटी तू क्यों रो रही है ?' परन्तु उसने कुछ नहीं बताया। रोती ही गयी और रोती ही रही। मैंने उससे कहा—'तुझे चाहिए वही मिलेगा। बता तो सही कि तू क्यों रो रही है।' उसने आश्वस्त होकर कहा—'मेरे पास अट्ठानवे रुपये हैं, दो रुपये और चाहिए, उसे दो रुपये मिल गये और वह चुप हो गयी। परन्तु क्या दो रुपये मिल जानेसे उसका रोना मिट गया ? नहीं, उसे हजारों नहीं, लाखों मिले, परन्तु अभी औ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

चाहिए। आज भी वह जीवित है; परन्तु यह एक लड़कीकी कहानी नहीं है, यह संसारी मनुष्यके जीवनका एक चित्र है। क्या बड़े बूढ़े भी 'और-और'के चक्करमें नहीं हैं ? वासना-पूर्तिका रस ही बन्धनका हेतु है। विषयोंके भोग और संग्रहमें सुख है—इस बुद्धिसे ही उसका जन्म हुआ है।

(८)

श्री उड़िया बाबाजी महाराजके पास एक सेठ आया करते थे। वे प्रायः यह रोना रोया करते थे कि 'हमारे पास रुपयोंकी बड़ी तंगी है। महाराज! ऐसी कृपा करो कि आमदनी कुछ बढ़ जाय।' श्रीमहाराजने एक दिन कहा—'एक दृष्टान्त सुनो! एक भिखारी जाड़ेके दिनोंमें रात्रिके समय छोटा-सा कम्बल लपेटे खुलेमें पड़ा था। वह दुःखके मारे हाय हाय कर रहा था। उधरसे एक महात्मा निकले। उन्होंने कहा 'क्यों भाई! तुम्हें क्या दुःख है?' भिखारीने कहा—'बाबा, मेरा कम्बल बहुत छोटा है। सिर ढँकता हूँ, तो पाँव उघड़ जाता है और पाँव ढँकता हूँ तो सिर उघड़ जाता है। जाड़ेके मारे ठिठुर रहा हूँ।' महात्माने कहा—'भले मानुष! इस संसारमें तुमसे भी बहुत अधिक गरीब रहते हैं; जिनके पास ओढ़नेके लिए छोटा-सा कम्बल तो क्या जीर्ण-शीर्ण सूती कपड़ेका टुकड़ा भी नहीं है। सोचो तो सही, उनका समय कैसे बीतता है? बेवकूफ! यदि यदि कम्बल बढ़ नहीं सकता तो तू अपना शरीर सिकोड़कर गुड़ी-मुड़ी बैठकर इसी कम्बलसे सारा शरीर ढँक तो सकता है!'

श्रीमहाराजजीने उस सेठसे कहा—'तुम्हारे पास कई मोटरें और घोड़ागाड़ियाँ हैं। अनावश्यक बहुत-से नौकर-चाकर हैं। बड़ा-सा मकान घेर रक्खा है, तुम अपना खर्च घटा क्यों नहीं देते? बाहरकी चमक-दमक और झूठी शान-शौकत और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

इज्जतके वहममें पड़कर क्यों मन-ही-मन घुल-घुलकर अपनी अन्तरात्माको सता रहे हो ? मोहका यह झूठा आवरण भंग कर दो। अभी तो तुम्हारे पास लाखोंकी सम्पत्ति और हजारोंकी आमदनी है। दुःखी होनेका तो कोई कारण ही नहीं है।'

आजकल लोगोंकी जैसी मनोवृत्ति हो रही है; उसपर यह कितनी करारी और मर्मभेदी चोट है !

(९)

एक बार हम लोग बदरीनाथकी यात्रा कर रहे थे। हमारे साथ एक ब्रह्मचारी थे। उन्हें किसी भक्तने एक कीमती घड़ी दे रक्खी थी। रुद्रप्रयागसे आगे जानेपर रास्तेमें कहीं वह घड़ी गिर पड़ी। दो-तीन मील आगे बढ़ जानेपर ब्रह्मचारीजीको पता चला। वे लौटकर चार-पाँच मील दौड़े-दौड़े गये। घण्टों तक ढूँढ़ते रहे। अन्तमें निराश होकर दोपहर तक हमारे पास आगये। मैंने डाँटा-डपटा। मेरा अभिप्राय यह था कि उनके दुःखकी दिशा बदल जाय; परन्तु उनका मन कचोटता ही रहा। भगवत्कृपासे शिवाला चट्टीके पास ही झरनेपर उन्हें एक पड़ी हुई अँगूठी मिल गयी और उसकी चमक-दमक देखकर कुछ तो स्वयं और कुछ दूसरोंके कहनेसे ब्रह्मचारीजीने मान लिया कि यह अँगूठी घड़ीकी अपेक्षा अधिक कीमती है और विहारीजीने मेरी प्रार्थना सुनकर उसके बदलेमें दी है। बस, उनके मुँहकी उदासी भाग गयी, चेहरेपर रौनक आगयी और एक नवीन स्फूर्ति-रसका सञ्चार हो गया। कई दिनोंके बाद बदरीनाथ पहुंचनेपर उन्हें इस बातका पता चला कि इस अँगूठीमें बहुत ही साधारण काँचका नग है और उसकी कीमत दो-चार आनेसे अधिक नहीं है। परन्तु इतने दिनोंमें घड़ी भूल चुकी थी और उसका दुःख भी मिट चुका था।

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मेरे मनमें इस घटनापर विचार हुआ। असलमें दु:खकी सृष्टि उस समय नहीं हुई जब घड़ी खो गयी या उसका खोना मालूम पड़ा। दु:खकी नींव तो तभी पड़ गयी थी जब दूसरेकी दी हुई घड़ी अपनी समझ ली गयी। वह पहले ब्रह्मचारीजीके पास नहीं थी। वह आयी और मनके बही-खातेमें अपने नामसे लिखी गयी। जब गयी तब हिसाब-किताबमें घाटेकी प्रतीति करा गयी। यह दु:खका मूल कारण है। हम ईश्वरीय एवं प्राकृत वस्तुओंको अपनी करके मानते हैं और ईश्वरेच्छासे प्रकृतिके प्रवाहमें उनके इधर-उधर बँट जानेपर आँखोंसे ओझल होनेपर दु:खी होते हैं। शास्त्रीय भाषामें यही प्रज्ञापराध (नासमझीका कसूर) कहा गया है। सतत सावधानी, निरंतर जागरण दु:खरूपी चोरको मन-मंदिरमें प्रवेश करनेसे सर्वथा रोक देता है।

(१०)

मेरे एक मित्र किसी पत्रके सम्पादन-विभागमें कार्यकर्ता थे। वे बड़े ही विद्वान् और सदाचारी थे। साधारणत: स्वास्थ्य भी उनका अच्छा ही था। एक दिन वे ऑफिसमें काम कर रहे थे। मिलनेके लिए स्थानीय अस्पतालके सिविल सर्जन आये। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने मेरे मित्रकी जाँच की और यह कह दिया कि तुम्हारे फेफड़ोंमें खराबी आ गयी है और कुछ-कुछ टी.बी.के लक्षण हैं। डाक्टरके जाते ही उन्होंने ऑफिसका काम छोड़ दिया और पलंगपर लेट रहे। डाक्टर-वैद्योंकी चिकित्सा हुई। उपचार किये गये; परन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्तमें पहलेके सिविल सर्जनसे भी बड़ा एक प्रसिद्ध डाक्टर बुलवाया गया और उसने भिन्न-भिन्न प्रकारसे परीक्षण-निरीक्षण करके कह दिया—यदि कोई चिकित्सक इनके शरीरमें

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

टी.बी. सिद्ध कर दे तो मैं अबसे चिकित्साका कार्य ही छो दूँगा। कुछ ऐसे ढंगसे उसने अपनी बात जँचायी कि मेरे मित्र पूरा विश्वास हो गया कि मैं रुग्ण नहीं हूँ। कहना न होगा कि उसी दिनसे वे फिर ऑफिसमें जाकर पूर्ववत् अपना कार्य करने लगे।

वर्तमान युगमें स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीरमें अधिक रोग देखनेमें आते हैं। इसका कारण है, लोग बाहरी शरीरको जैसा भोजन-वस्त्र, तेल-फुलेल और स्नो-पाउडरके द्वारा सजाने सँवारनेमें लगे रहते हैं, वैसा ख्याल भीतरी शरीर—मनका नहीं करते। बेचारा भूखा-नंगा, रूखा-सूखा, रोता-कलपता पागल-सा इधर-उधर भटका करता है। वह अल्प-सार; अल्प धृति, अल्प-शक्ति और अल्प-प्राण हो गया है। थोड़ी-थोड़ी बातमें घबरा जाता है। शरीरमें कहीं चोट लग गयी, कि नेसका भूत सिरपर सवार हो गया। शरीरमें फुंसी हुई और विषैली हो जानेके वहमने दुःखको सौ-गुना कर दिया। इसके लिए शारीरिक चिकित्सा नहीं, मानसिक चिकित्सा अपेक्षित है। यदि हमारा मन अपने शुद्ध स्वरूप अथवा भगवान्के चिन्तनमें लगा रहे और अपनी स्वरूप-निष्ठा अथवा भगवद्विश्वासमें दृढ़ रहे तो संसारके दुःखोंकी गन्ध भी न आये।

(११)

एक वयोवृद्ध एवं विद्वान् सज्जन हैं। सभी उनका आदर करते हैं; परन्तु उनका स्वभाव विचित्र है। वे बात-बातमें दुःख ढूँढ़ लेते हैं। उन्हें भोजन किसी भी किस्मका मिले, रोने लगते हैं। घटिया भोजन मिले तो रसोइयेपर नाराज होते हैं। बढ़िया भोजन मिले तो भी रसोइयेपर नाराज होने लगते हैं कि कल तुमने ऐसा क्यों नहीं बनाया ? दोनों ही दिन दुःख

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

रहते हैं। पिछले दिनों वे कांग्रेस सरकारसे रुष्ट थे। जब रेल-गाड़ी सामनेसे निकलती तो पाँव पीटकर कांग्रेस सरकारको गाली देते कि जबसे इसका शासन हुआ है, तबसे रेलगाड़ीकी चाल ही बेसुरी हो गयी है। उस समय गाँवके लड़के ताली पीटकर नाचते होते कि गाड़ी आयी, गाड़ी आयी। वास्तवमें सुख-दुःख किसी वस्तु, घटना, व्यक्ति और स्थितिमें नहीं हुआ करता। ये केवल मनमें होते हैं। जिसका मन पुण्यके मसालेसे बना है; वह प्रत्येक परिस्थितिमें सुख ढूँढ़ लेता है और जिसके मनका उपादान पाप है; उसे प्रत्येक परिस्थितिमें दुःख-ही-दुःख दीखता है। चींटीकी नाक गन्दी चीजोंसे भी चीनी ढूँढ़ निकालती है और गुबरैला मीठी चीजोंमें भी मलकी ही ओर आकृष्ट होता है। एक दृष्टान्त है—दो सज्जन कहीं जा रहे थे। रास्तेमें एक मरे कुत्तेकी लाश सड़ रही थी। एकने कहा—'हाय हाय ! कितनी दुर्गन्ध है !' दूसरेने कहा—'इसके सफेद-सफेद चमकते हुए दाँत कितने सुन्दर हैं !'

आनन्दमय परमात्मामें ही विवर्त अथवा मूल परिणामसे बनी यह समूची सृष्टि अपने अधिष्ठान अथवा मूल कारण सच्चिदानन्दघन परमात्मासे अलग नहीं है। इसलिए इसकी प्रत्येक वस्तु आनन्दरसकी अगाध एवं अबाध धारासे परिपूर्ण है। केवल भ्रान्तिवश इसमें दुःखकी कल्पना होती है और वह कल्पना ही ठोस होकर दुःखग्राही स्वभावका रूप धारण कर लेती है। इसे परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करके अनायास बदला जा सकता है।

(१२)

एक बड़े ही उच्चकोटिके भक्त महात्मा थे। उनके सैकड़ों सत्संगी उन्हींको अपना सर्वस्व समर्पित करके उन्हींपर पूर्ण

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

निर्भर रहते थे। जब महात्माकी वृद्धावस्था आयी, तब सत्सङ्गियोंके मनमें यह ख्याल आया कि एक-न-एक दिन इनका शरीर छूट जायगा और तब इनके बिना हम लोग कैसे रहेंगे और यह दुःखद घटना देख भी कैसे सकेंगे? उनमेंसे दस-बीस इकट्ठे होकर मेरे पास आये। उन लोगोंने एकान्तमें मुझसे बातचीत की और कहा—'हम लोग उनसे पहले ही इकट्ठे होकर किसी नदीमें कूद पड़ें और प्राण त्याग दें; क्योंकि उनके बिना हमारा जीना असम्भव है।' मैंने समझाया—'उनके जीवित रहते ऐसा करना उचित नहीं है; क्योंकि तुम लोगोंके आत्मघातकी बात जान-सुनकर महात्माके कोमल चित्तपर एक कठोर आघात पहुँचेगा और सम्भव है, उनकी स्वस्थ मनोवृत्तिपर भी प्रभाव पड़े। अभी तो यह संकल्प त्याग देना ही उचित है।' उन लोगोंने मेरी बात मान ली। कुछ महीनोंके बाद महात्माका शरीर पूरा हो गया।

महात्माका शरीर छूटनेपर उनके सत्सङ्गियोंको अकथनीय कष्ट हुआ, इसमें सन्देह नहीं। कुछने मरनेकी चेष्टा भी की; परन्तु ईश्वर-कृपासे किसीकी मृत्यु नहीं हुई। यह घटना घटित हुए वर्षों बीत चुके हैं। आज भी उनके सत्सङ्गी जीवित हैं। उनके बच्चे होते हैं, विवाह होते हैं, हँसते हैं, गाते हैं, नाचते हैं—सारे ही व्यवहार पहलेकी तरह चलते हैं। और यह ठीक भी है, क्योंकि जीवकी प्रकृति लगातार हमेशा दुःखी रहनेकी नहीं है। वह सच्चिदानन्दघन परमात्माका स्वरूप अथवा अंश है। वह दुःखी रह ही नहीं सकता।

मेरे मनमें इस बातको लेकर अनेकों बार गम्भीर ऊहापोह हुआ; जब हृदयाकाशमें दुःखके बादल मँडराने लगते हैं। एक बार अपने आत्मसूर्यका आनन्द-प्रकाश आवृत-सा हो जाता

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

है और अज्ञानीजन मान बैठते हैं कि अब सर्वदाके लिए अँधेरा हो गया; परन्तु यह स्वयंप्रकाश आत्मदेव कभी पूर्णतः अस्त नहीं हो सकते। जिस समय हम कहते हैं—'अब तो नहीं सहा जाता' उस समय भी हम सहन ही करते होते हैं। जिस क्षण हमारा जीवन दुःखसे अभिभूत होता है; उस समय यदि यह विचार उदय हो जाय कि आजसे छः महीने बाद हमारे चित्तकी स्थिति क्या होगी ? क्या यह उस समय भी ऐसा ही दुःखी रहेगा ?' यदि उस स्थितिका ध्यान दुःखके क्षणोंमें ही आजाय तो बहुत कुछ दुःख निवृत्त हो जाय। पन्द्रह-सोलह वर्ष पहले इसी देशका एक प्रसिद्ध सेठ किसी लड़कीपर रीझ गया था और कहता था कि उससे ब्याह न हुआ तो मैं मर जाऊँगा या पागल हो जाऊँगा। उस लड़कीने तो विवाह किया नहीं, पर सेठने पाँच-सात विवाह कर लिये। वे आज जीते-जागते हैं और उनकी आजकी मनोदशामें उस स्थितिकी तुलना कीजिए।

(१३)

तीन-चार वर्ष पहलेकी बात है, मैं माँ आनन्दमयीके कोटि-सावित्री-यज्ञके अवसरपर उनके काशी-स्थित आश्रममें ठहरा हुआ था। एक दिन अपने पूर्व परिचित पण्डितजीके घर गया, उस समय पण्डितजी कहीं बाहर गये हुए थे। घरमें केवल माताजी थीं। उन्होंने मुझे पहचान लिया। सात-आठ वर्षोंके बाद उनसे मिलना हुआ था। इस बीचमें उनके एक जवान पुत्रकी मृत्यु हो गयी थी। वे मुझे देखते ही रोने लगीं। थोड़ी देर बाद उन्हें अपने दूसरे पुत्रके विवाहकी बात याद आ गयी; जो इसी बीचमें हुआ था, उसका संवाद सुना-सुनाकर हँसने लगीं। इसके बाद आगे आनेवाले लड़कीके विवाहकी चर्चा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

छिड़ी, चिन्ताकी रेखा चेहरेपर झलकने लगी और फिर मृत पुत्रकी याद करके रोने लगीं। घण्टे भरमें चार-पाँच बार रोयीं और चार-पाँच बार हँसी। आज मनुष्यके मनकी यही दशा है। उसमें न कोई-क्रम है, न संगति है, न विचारकी गम्भीरता है। छिछोरा-सा छिछले पानीमें छलकता फिरता है; न सुख न दुःख, मानो अनुभूतिकी गम्भीरता ही नष्ट हो चुकी है। अपना दुःख अपने ही मिटाये मिटेगा। इसे कोई दूसरा मिटा नहीं सकता; क्योंकि दुःख शरीरके बाहर अथवा ऊपर नहीं होता, भीतर होता है। वहाँ केवल विचारका रसायन ही अपना असर डाल सकता है।

दुःखके तीन स्तर हैं—दुःखके निमित्त, दुःखाकार वृत्तियाँ और दुःखका अभिमान। संसारके पामर और विषयी पुरुष जी-जानसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर दुःखके निमित्त दूर करनेमें लगे हुए हैं। परन्तु निमित्तोंका पूर्णरूपसे दूर होना कदापि सम्भव नहीं है। सरदी-गरमी, रोग-मृत्यु, दरिद्रता-अपमान संसारमें सदासे रहते आये हैं और रहेंगे। इनको मटियामेट करके सुखी होनेकी आशा स्वप्नमात्र है और यथार्थतासे बड़ी दूर है। यह एक ऐसी योजना है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे कभी पूरी नहीं हुई है और होगी भी नहीं। दूसरी बात है—दुःखाकार वृत्तियोंके प्रवाहको बन्द कर देना। यह बात उन लोगोंके लिए साध्य नहीं है; जिनके मन उन झूठ-मूठके निमित्तोंको पानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। मनोवृत्तियोंको दुःखाकार न होने देना निवृत्तिपरायण विरक्त पुरुषोंके लिए ही सम्भव है; जो भगवत्स्मरण अथवा योगाभ्यासके द्वारा अपनी वृत्तियोंको निरन्तर भगवदाकार अथवा शान्त रखते हैं।

तीसरी बात है—किसी भी परिस्थितिमें मैं दुःखी हूँ—ऐसा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

भिमान धारण न करना। यह प्रत्येक विचारवान्‌के लिए सम तथा व्यावहारिक है। दुःखकी स्वीकृति ही उसे सत्ता ती है। साहसके साथ दुःखको अस्वीकार कर देना चाहिए। स्तवमें अपने स्वरूपमें दुःखका लेश भी नहीं है। आत्माको खकी छाया भी नहीं छू सकती। सत्सङ्ग और विचारके द्वारा त्माके शुद्ध स्वरूपका ज्ञान ही दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिका त्रा उपाय है।

(१४)

मेरे पास एक बालक आता है। वह न धनी है, न स्वस्थ न विद्वान् है और न तो बुद्धिमान ही। केवल कुछ वर्षोंतक ने सत्सङ्ग किया है और ईमानदारीसे उसने शुद्ध विचारोंको ण करनेकी चेष्टा की है। कुछ महीने पूर्व उसने दृढ़तासे पूर्वक भगवान्‌के सामने प्रतिज्ञा कर ली कि अब चाहे भी परिस्थिति आजाय मैं उसे दुःख नहीं मानूँगा। इन ले कुछ महीनोंमें उसके सामने अनेकों बार दुःखके निमित्त स्थित हुए और मनमें दुःखाकार वृत्तिका स्पर्श होने-सा लगा; उसने तत्काल कह दिया—नहीं नहीं, मैंने कभी दुःखी न की प्रतिज्ञा कर ली है। अवश्य ही उसके दुःखोंका बोझ समय तो उतर-सा गया। आगे उसका भविष्य उसकी निष्ठा और ईश्वरेच्छापर निर्भर है। कहनेका अभिप्राय यह के सामान्य पुरुषको भी दुःखके सामने हार नहीं माननी हए। पूरे साहसके साथ ईश्वरपर भरोसा रखकर सिंहके न दुःखके सिरपर पाँव रखकर दहाड़ते हुए अपने लक्ष्यकी अग्रसर होना चाहिए।

जो भगवद्भक्त एवं तत्त्वज्ञानी महापुरुष हैं उनके सम्बन्धमें कुछ कहना ही नहीं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मधुर वेदान्त

हमलोग खेलते-कूदते पहुँच गये गरुड़चट्टी। एक ओर हर-हर करती हुई गङ्गाजी और दूसरी ओर हिमालयका ऊँचा शिखर। बीचकी नन्हीं-सी पगडण्डीपर हम चल रहे थे। अब यहींसे ऊपर चढ़ना था, सो भी जमनीपरसे नहीं—झर-झर झरते हुए झरनेके अन्दर होकर। बात यह थी, हमने सुन रक्खा था कि गरुड़चट्टीके ऊपर एक बड़ा सुन्दर प्रपात है। बड़े ऊँचेसे दूधके समान धवल धारा अखण्डरूपसे गिरा करती है। वहाँ पानीमें होकर जाना पड़ता है। उस पानीकी विशेषता यह है कि जिस खर, पत्ते, मिट्टी या लकड़ीपर होकर वह पानी जाता है वह सबकी सब वस्तुएँ धीरे-धीरे पत्थर हो जाती हैं। कुतूहलवश हम कुछ मित्र स्वर्गाश्रमसे चलकर वहाँ पहुँच गये।

बड़ा आनन्द आया वहाँ। कुछ पक्षियोंके अतिरिक्त किसी प्राणीके दर्शन नहीं हुए। घोर जंगल और प्रपातकी कर्णभेदी ध्वनि! बस, इन्हींका साक्षात्कार हो रहा था। वृत्तियाँ अन्तर्मुख हो गयी थीं; हम सब प्रपातके सामने ही सुन्दर-सुन्दर पर्वत शिलाओंपर बैठकर एकटक उस दूधफेनके समान गिरते हुए प्रपातको देख रहे थे। न दीनकी चिन्ता थी न दुनियाँकी। बीच-बीचमें प्रपातका फव्वारा आकर हमें बाह्यज्ञान करा दिया करता था। बिना स्नानके ही ठंढक लगने लगी। कुछ सामान नीचेसे ले आये थे, जल्दी-जल्दी उसे खा-पीकर हमलोग वहाँसे लौटे।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अब नीचे उतरना था, विशेष परिश्रम नहीं था, कुछ बात-चीतका सिलसिला छिड़ गया।

वहाँकी मिट्टी पानीके प्रभावसे पत्थर हो जाया करती थी, पहले इसी विषयपर चर्चा चली। सभी सत्संगकी रुचिके थे, केवल मिट्टीकी चर्चा किसीको प्रिय नहीं थी। परन्तु उस प्रातदर्शनका प्रभाव था, वह चर्चा आ ही गयी। एक मित्रने इस चर्चाका श्रीकृष्णमें उपसंहार करते हुए कहा—'भाई! मिट्टी भी पत्थर हो जाती है यह बात यदि बालक कृष्णको मालूम होती तो वे व्रजकी मिट्टी नहीं खाते।' एक दूसरे मित्रने कहा—'रामचन्द्रजीको यह बात मालूम रही होगी इसीसे उन्होंने कभी मिट्टी नहीं खायी।' मेरे पहले मित्र श्रीरामजीके बड़े भक्त थे। उन्होंने कहा—'श्रीरामजी तो मर्यादापुरुषोत्तम हैं न, वे भला मिट्टी कैसे खाते? वे ठहरे राजकुमार, उनके मनमें मिट्टी खानेकी कल्पना ही कैसे आ सकती है? श्रीकृष्ण थे ग्वाल, उन्हें मर्यादाका ध्यान था नहीं; उन्होंने मिट्टी खायी होगी।' अब मुझसे भी नहीं रहा गया, मैं ठहरा जन्मका हंसोड़ और श्रीकृष्णका कुछ पक्षपात भी है हीं। मैंने व्यंगयुक्त स्वरसे कहा—'यहाँ राजकुमार और ग्वालेकी बात नहीं है व्रजभूमिमें अवतार लेने-न-लेनेकी। यदि रामजीका अवतार व्रजभूमिमें हुआ होता तो वे भी वहाँकी मिट्टी खाये बिना न रहते। व्रजकी रजका रस भगवान् ही जानते हैं। तभी तो वे उसे बार-बार चखा करते हैं।' एक क्षण सब चुप हो गये।

मेरे मित्रोंमें एक थे ग्रेजुएट। उन्होंने कहा—'भाई! तुम तो कथावाचक हो, झूठमूठ न जाने क्या-क्या सोचा करते हो, अरे, व्रजकी रजमें क्या रस है? यह सब कवियोंकी कल्पना है

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कल्पना। श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय अत्यन्त मधुर सिद्ध करनेके लिए उन्होंने वहाँकी रजमें भी रसकी कल्पना कर डाली है। नहीं तो रूखी रजमें भी कहीं रस हो सकता है?' मेरे एक भावुक मित्र घबराये। उनके लिए यह बात असह्य थी कि कोई व्रजरजके रसको कल्पना बताये। मैंने उनकी घबराहट ताड़ ली। दूसरे मित्रने कहा—'जिन्हें व्रजभूमिका स्वरूप ज्ञात नहीं है वही ऐसा कहते हैं। व्रजभूमि प्रेमकी भूमि है—रसकी भूमि है। वहाँके एक-एक रजकणमें अनन्त-अनन्त प्रेम भरा हुआ है, इसका कारण क्या है? इसका कारण है, गोपियोंके चरणोंका स्पर्श। गोपियोंकी मूर्ति ही प्रेममयी है, उनके चरणोंका स्पर्श जिन्हें प्राप्त हो गया, धूलिकणोंकी तुलना किससे की जाय? ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और बड़े-बड़े योगीश्वर उसके लिए तरसते रहते हैं, फिर भगवान् श्रीकृष्ण अपने हृदयमें रख लें, यह आश्चर्यकी कौन-सी बात है?'

मैंने कहा—'भया! यह मिट्टी खाना मर्यादासे शून्य नहीं है, इसमें बड़ी मर्यादा है। भगवान् श्रीकृष्णके मिट्टी खानेसे कितने लोगोंको प्रेमरसकी अनुभूति और तृप्ति प्राप्त होती है, इसका कोई अन्दाज नहीं लगा सकता। भगवान्के अवतार-कालमें जो भक्त सशरीर जीवित रहते हैं, वे तो व्रजरज प्राप्त करते ही हैं; परन्तु जो सायुज्यमुक्ति प्राप्त कर चुके होते हैं अथवा जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्थान दे चुके होते हैं वे तो व्रजरजसे वञ्चित ही रहते हैं न! केवल वे ही नहीं, भगवान्के रोम-रोममें सत्ता-स्फूर्ति पानेवाले असंख्य ब्रह्माण्डोंकी आत्मा भगवान् श्रीकृष्णके हृदयमें ही रहती है। वे व्रजरज न पानेके कारण तड़पते रहते हैं और श्रीकृष्णसे सच्चे हृदयसे प्रार्थना करते रहते हैं कि प्रभो! हमें भी गोपियोंके चरण-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

कमलोंका पराग—व्रजभूमिका रागरञ्जित पराग प्राप्त कराइये। श्रीकृष्ण उनकी प्रार्थना सुनते हैं, उन्हें आश्वासन देते हैं और कहते हैं 'मेरे प्यारे भक्तो! मेरे हृदयमें रहनेवाले निखिल प्राणियो! तुम व्रजरज प्राप्त करनेके लिए उत्सुक हो यह तुम्हारा बडा सौभाग्य है। परन्तु तुम्हीं हो यह बात नहीं, उसके लिए तो मैं भी उत्सुक हूँ। तुम्हारी अभिलाषा मेरी ही अभिलाषा है। यों भी कह सकते हैं कि मेरी अभिलाषा तुम्हारे हृदयमें प्रतिफलित हो रही है। मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा।' नन्हें-से श्रीकृष्ण घुटनोंके बल चलते-चलते मणिमय आँगनकी सीमा पार कर जाते हैं और मानो उन भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए ही व्रजकी वह मिट्टी खाते हैं।' मेरे एक मित्रने कहा—'भाई! तुम तो व्याख्यान ही देने लगे।' मैं चुप हो गया।

अब सबके हृदयमें व्रजरजपर ही विचार हो रहा था। एक क्षण तो सब चुप हो गये, परन्तु दूसरे ही क्षण मेरे एक वेदान्त-प्रेमी मित्र बोल उठे, मानो उनकी वाणीपर कुछ नियन्त्रण ही नहीं था। नियन्त्रण क्यों नहीं था? व्रजरजकी चर्चामें उन्हें इतना रस आरहा था कि उनके न चाहनेपर भी जबान खुल गयी और वे बोलने लगे। उन्होंने कहा—'भाई, मैंने श्रवण किया है और मनन किया है कि ब्रह्म अकर्ता और अभोक्ता है और श्रीकृष्ण ब्रह्म ही हैं। फिर श्रीकृष्ण यहाँ व्रजरजके भोक्ता कैसे हो गये? क्या उन्हें भोग करनेके लिए व्रजरज ही मिली? यदि भोक्ता बनना ही था तो किसी मधुरतम वस्तुके भोक्ता बनते। यहाँ वे अपने स्वरूपसे च्युत क्यों हो गये?' उनका प्रश्न सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने सोचा वेदान्ती होकर श्रीकृष्ण-तत्त्वपर ये विचार तो करते हैं। ये बड़े भाग्यवान् हैं,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

एक-न-एक दिन ये श्रीकृष्णतत्त्वको समझ सकेंगे। मैं उनकी ओर देखकर कहने लगा।

मैंने कहा—'आप तो वेदान्ती हैं, उपनिषदोंमें मिट्टीका जैसा वर्णन आया है जानते हैं? क्या आपको 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इस श्रुतिका स्मरण नहीं है? यहाँ मृत्तिका अर्थात् मिट्टी ब्रह्म-स्थानीय है। यह कार्यकारणरूप जगत् घट-शराव आदिकी भाँति मृत्तिकास्थानीय ब्रह्ममें ही विलीन हो जाता है। ब्रह्ममें ही जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होते हैं। ब्रह्म जगत्का कर्ता होनेपर भी अकर्ता हैं, भोक्ता होनेपर भी अभोक्ता है। श्रीकृष्ण ब्रह्मके भी भोक्ता हैं; क्योंकि यहाँ मृत्तिकास्थानीय ब्रह्म है, यहाँ ब्रह्म भोग्य है और भोक्ता श्रीकृष्ण। इसका अर्थ तनिक ध्यानसे समझिये। जब ज्ञानके द्वारा अशेष-विशेषोंका अत्यन्ताभाव ज्ञात हो जाता है, दृढ़ निष्ठासे प्रतीति भी विरल हो जाती है; तब केवल चिदाकाश ही चिदाकाश रहता है। चिदाकाशके अतिरिक्त और कोई भिन्न सत्ता नहीं रहती, भोक्ता और भोग्यका भाव नहीं रहता। परन्तु वह आकाश किस कामका; जिसमें चन्द्रमाकी सुधामयी चाँदनी बिखरी न हो। उस चिदाकाशके श्रीकृष्ण ही चन्द्रमा हैं। आकाश अधिष्ठान है; तो श्रीकृष्ण उसकी प्रतिष्ठा हैं। बिना श्रीकृष्णके ब्रह्मानन्दका अनुभव करे कौन? ब्रह्म ही दो भागोंमें विभक्त-सा हो जाता है। ब्रह्मका जो अन्तरतम भाव है वह श्रीकृष्ण है। जो भोग भाग है वह ब्रह्म नामसे है। भाग न होनेपर भी भाग है और भोक्ता एवं भोग्यका भेद है। इतना होनेपर भी सब चिदानन्द ही है। (चिदानन्द शब्दकी प्रवृत्ति न होनेपर भी वस्तुका अपलाप नहीं किया जा सकता) जहाँ केवल आनन्दस्वरूप ब्रह्म है, वहाँ किसी भोक्ताके न होनेके कारण वह आनन्द निष्फल-सा है। क्योंकि जि

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आनन्दका उपभोग नहीं कर सकता, क्योंकि ब्रह्मका साक्षात्कार होते ही जीवका अस्तित्व पृथक् नहीं रहा, वह ब्रह्मके अन्तर्भूत हो जाता है। घट फूटते ही मिट्टी बन जाता है, फिर मिट्टीके गुण-विगुणका अनुभव वह नहीं कर सकता। अब मिट्टीके गुणोंका अनुभव करे कौन ? ब्रह्मानन्दका रस ले कौन ? रस लेनेवाला न होनेके कारण वह रस सत् होनेपर भी असत्कल्प हो जाता है। और फिर बौद्धोंके शून्यकी अपेक्षा कुछ विशेषता नहीं रह जाती। ऐसी स्थितिमें, इस तुरीय स्थितिसे भगवान् श्रीकृष्ण इस भोक्तृहीन अनुच्छिष्ट आनन्दका भोग करनेके लिए उसके अस्तित्वका सदुपयोग करनेके लिए श्रीकृष्णके रूपमें मिट्टी खाते अर्थात् ब्रह्मानन्दरसका अनुभव करते हैं।'

मेरे वेदान्ती मित्र बड़े ध्यानसे मेरी बात सुन रहे थे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि यह कोई नई बात कह रहे हैं। उन्होंने एक शङ्का की, कहा कि 'भाई ! ब्रह्म है अनन्त और श्रीकृष्ण हैं एकदेशी, ब्रह्म है नित्य सत्य, अविनाशी और श्रीकृष्ण एकदेशमें होनेके कारण उसकी सत्तासे ही प्रकट होनेवाले और उसीमें समा जानेवाले हैं। फिर वे ब्रह्मके भी भोक्ता कैसे हो सकते हैं ? उन्हें ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा कहते हो तो कैसे ?'

मैंने कहा—'भाई ! तनिक सोचो तो सही, तुम एकदेश और सर्वदेशका भेद कहाँ कर रहे हो ? एककाल और सर्व-कालकी उद्भावना क्यों कर रहे हो ? देश, काल और वस्तु तो उसकी सृष्टि हैं। जब अशेष विशेषरहित केवल ब्रह्म ही रहा, तब उसमें देश, काल और सृष्टिकी कल्पना क्यों करते हो ? देश और कालसे परे जब केवल चित्स्वरूप निर्विशेष ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है, तब उसमें एकदेश और एककालका प्रश्न ही नहीं रहता। जब तुम देश और कालके संस्कारसे संस्कृत

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

बुद्धि द्वारा विचार करते हो, तभी तुम्हें ब्रह्ममें श्रीकृष्णके एक
देशी होनेकी धारणा होती है। अब अनन्त ब्रह्मकी प्रति
श्रीकृष्ण कैसे हैं ? इसका उत्तर हम केवल लौकिक दृष्टिसे
देंगे। एक बड़ा-सा महल है, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा किससे है?
उसके स्वामीके अस्तित्वसे। यदि स्वामी नहीं है, तो वह महल
प्रतिष्ठाहीन है। क्या महल केवल बड़ा होनेके कारण, रहने
स्थान होनेके कारण महलके मालिकसे भी अधिक महत्त्व रख
है ? ऐसी बात नहीं है। महलका मालिक हर हालतमें महल
अधिक महत्त्ववाला है। परन्तु यह दृष्टान्त श्रीकृष्णमें पू
नहीं घटता। वे चिद्भूमि ब्रह्ममें रहते हुए भी, ब्रह्मरसके भो
हैं। ब्रह्म उनके शरीरकी कान्ति है और वे अपने सौन्दर्य
माधुर्यस्वरूप ब्रह्मको देख-देखकर आनन्दित होनेवाले
शरीरके अधिवासी हैं। जबतक सम्पूर्ण चित् है, इस बा
अनुभव नहीं हो जायगा तबतक भगवान् श्रीकृष्णकी चिन्
लीलाका ज्ञान नहीं होगा।

आजकल वेदान्तज्ञानके रूपमें केवल निषेधवृत्तिकी प्रधा
मानी जाती है। साधकके लिए यह उपयोगी है, परन्तु सि
नहीं। सिद्धान्त तो है—सब कुछ सत् है, सब कुछ चित् है
कुछ आनन्द है और सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण हैं। स्वयं
उनकी ही महिमामें, अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित है। सब
बोध हो जानेके पश्चात् उस सर्वात्ममयी चिद्भूमिमें जो
धिष्ठाता भगवान् श्रीकृष्णकी चिन्मयी लीला होती है,
लौकिक देश, काल और वस्तुकी दृष्टिसे नहीं देखना चा
फिर भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें वे एकदेशीय है, एकका
हैं यह प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि वहाँ इनकी पहुँच ही
है, इसीसे श्रीकृष्णके मिट्टी खानेका अर्थ है—मृत्तिकास्था

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

समरस ब्रह्मानन्दका उपभोग; जो कि जीव नहीं कर सकते, केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। जैसे किसी दूसरे द्रष्टाके अभावमें पुरुष स्वयं ही अपनी अङ्गकान्तिका दर्शन करके आह्लादित होता है, वैसे हो भगवान् श्रीकृष्ण भी दूसरे द्रष्टाके अभावमें अपने अङ्गकान्तिस्वरूप ब्रह्मकी निरतिशय बृहत्ता देख-देखकर आनन्दित होते हैं।' मैं बोलता ही चला गया। मेरे कई भावुक मित्र ऊब-से गये। एकने तो कह ही दिया—'भाई! अब रहने दो यह ब्रह्मनिरूपण, हमारे श्रीकृष्ण तो ग्वाले हैं, मिट्टी खानेवाले हैं। हमारी कल्पनामें भी यह बात नहीं आ सकती कि यहाँ मिट्टीका अर्थ ब्रह्मानन्द है।'

दूसरे मित्रने कहा—'इसमें कल्पनाकी क्या बात है। श्रीकृष्ण स्वयं परं ब्रह्म हैं, तब ब्रह्म उनका शरीर हो इसमें आपत्ति ही क्या है ? परन्तु मुझे तो एक दूसरी ही बात मालूम पड़ती है, सर्वस्वरूप होनेपर भी श्रीकृष्ण विशुद्ध सत्त्वमें ही प्रकट होते हैं और अपनी लीला करते है, क्योंकि उनके अवतारका मुख्य प्रयोजन अपने ही आनन्दका, अपनी आह्लादिनी शक्तिका रसास्वादन है। विशुद्ध सत्त्वका अर्थ है अप्राकृत सत्त्व। क्योंकि प्राकृत सत्त्व विशुद्ध कभी नहीं होता। उसमें अभिभूतरूपसे रजस् और तमस् रहते ही हैं, परन्तु अप्राकृत सत्त्व विशुद्ध सत्त्व होता है। इस प्रकार भगवान्‌की मुख्य लीलामें रजोगुण और तमोगुण सर्वथा नहीं होते, यह बात सिद्ध होती है। परन्तु जब भगवान्‌का अवतार होता है, तब उन्हें आनुषंगिकरूपसे रजोगुण और तमोगुणकी लीलाएँ भी करनी पड़ती हैं। साधुपरित्राणके लिए असाधुविनाश आवश्यक है, इसके लिए रजकी आवश्यकता होती है। बिना रजोगुणके ध्वंसका कार्य नहीं हो सकता। अब प्रश्न यह होता है कि वह

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

रज लिया कहाँसे जाय ? इसका उत्तर श्रीकृष्णकी लीला ही देती है, श्रीकृष्णने मिट्टी खानेके बहाने उसी रजका संग्रह किया। पृथिवीसे ही क्यों किया, इसका भी एक रहस्य है। पृथिवीका एक दूसरा नाम है भू। भूका अर्थ होता है सत्ता। उन्होंने सत्तासे ही रजका संग्रह किया, क्योंकि सत्से ही रज निकलता है। इसी रजोगुण संग्रहके लिए श्रीकृष्णने वह लीला रची होगी।'

अब हम लोगोंकी मनोधारा दूसरी ओर पलट गयी, श्रीकृष्णने पृथिवीसे रजस् संग्रह क्यों किया ? इसपर सभी विचार करने लगे। मैंने कहा—'अवश्य पृथिवीसे ही रज लेना चाहिए था, क्योंकि दैत्योंके विनाशकी प्रार्थना पृथ्वीकी ही थी। दैत्योंके भारसे पीड़ित होकर पृथिवी श्रीकृष्णकी शरणमें गयी। परन्तु उसे अकेले जानेमें संकोच हुआ। संकोच होनेका भी एक कारण था, वह यह कि भगवान्की दो पत्नी मानी जाती हैं, एक लक्ष्मी और दूसरी भूमि। इस समय भगवान् लक्ष्मीके पास थे, यदि पृथिवी जाकर यह प्रार्थना करती कि आप पृथिवीपर चलें तो लक्ष्मी उसका यह अर्थ समझ सकती थीं कि यह सापत्न्यवश भगवान्को मेरे पाससे ले जाना चाहती है। इसलिए पृथ्वीने भगवान्के पुत्रस्थानीय ब्रह्माको, जो कि रजोगुणके अधिष्ठातृ देवता हैं, अपने साथ ले लिया अर्थात् कमला-लक्ष्मीके पुत्र ही इस बातके साक्षी होंगे कि पृथिवीकी प्रार्थना सत्य है। ब्रह्माने अपने साथ तमोगुणके अधिष्ठातृ देवता रुद्रको ले लिया, इस प्रकार तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण-रूपा स्वयं पृथिवी भगवान्से प्रार्थना करनेके लिए विशुद्धसत्त्व-रूप भगवान्के धाम क्षीरसागरके तटपर जाकर प्रार्थना करने लगी। इस रीतिसे अपने तीनों गुणोंको भगवान्के सामने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नियुक्त करके प्रार्थना करनेका यह फल हुआ कि स्वयं भगवान्‌को आना पड़ा। अब भगवान्‌की लीलामें रजस् तो है ही नहीं, वे दैत्यनाशकी लीला करें तो कैसे करें? इसलिए उन्होंने पृथिवीसे रजस् संग्रह किया।'

मेरे एक मित्रने कहा—'भाई, पृथिवीका अर्थ सत्ता है, इसे तो भगवान्‌की सहचरी होना ही चाहिए, परन्तु लक्ष्मी भगवान्‌की सहचरी क्यों हैं? उनका वास्तविक स्वरूप क्या है?'

मैंने कहा—'लक्ष्मी मृदुताकी अधिष्ठातृ देवी हैं। संसारमें जो कुछ मृदुता, कोमलता या सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, वह श्रीलक्ष्मीजीका ही एक अंश है। इस प्रकार भगवान्‌की दो अर्द्धाङ्गिनी हैं, एक तो नित्यसत्ता = भूमि और दूसरी परम-सौन्दर्यकी देवी = लक्ष्मी। जब भूमिके लिए आये भगवान्, तब उन्होंने भूमिसे ही रजस् संग्रह किया।'

मेरे ग्रेजुएट मित्र बीचमें बोल उठे—'इसका एक अर्थ तो मेरी समझमें आगया। पृथ्वी और लक्ष्मी भगवान्‌की पत्नी हैं, भगवान्‌की भोग्या हैं और इनके स्वामी केवल भगवान् हैं। इन्हें जो अपनी समझकर भोग करते हैं, इन्हें माताके रूपमें, भगवत्सम्पत्तिके रूपमें नहीं देखते, वे पापी हैं। जो पृथ्वी, लक्ष्मी एवं सौन्दर्य आदि संसारमें अभिव्यक्त भगवदीय विभूतियोंको अपना समझते हैं, वे भगवान्‌के प्रसादभाजन नहीं हो सकते।'

मेरे एक भावुक मित्रने कहा—'यह तो वैराग्यकी बात है। हमें तो अनुरागकी ही बात करनी चाहिए। मैंने भी श्रीमद्भाग-वतमें यह कथा सुनी है, जब ग्वालबालोंने जाकर यशोदा-मैयासे कह दिया कि श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है; तब उनपर डाँट पड़ी और वे मुकर गये कि मैंने मिट्टी खायी है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हमें तो पता नहीं कि उनमें क्या ऐश्वर्य था ? हमें तो माता[illegible] डरकर मिट्टी खानेसे अस्वीकार करनेवाले रूपमें ही वे अच्छे लगते हैं। तुमलोग न जाने क्या-क्या कहते हो उनके बारेमें तुमलोगोंका मगज भी अच्छा है, केवल श्रीकृष्णका ही चिन्तन क्यों नहीं करते ? यह सब व्यर्थमें क्या सोचते रहते हो ?'

उन्होंने तो दूसरी चर्चा बन्द करनेके लिए यह प्रसंग छेड़ा था, परन्तु हमलोगोंको विचार करनेके लिए एक और बात मिल गयी। मेरे वेदान्ती मित्रने पूछ ही दिया—'क्यों जी श्रीकृष्णने अपनी मातासे मिट्टी खाना अस्वीकार क्यों किया ?' मैं भी यही सोच रहा था। एक क्षण रुककर मैंने कहा—'भाई मैंने तुमसे अभी कहा है कि मिट्टी खानेका अर्थ ब्रह्मानन्द[illegible] रसास्वादन है। यह रसास्वादन-सा प्रतीत होनेपर भी रसा[illegible] स्वादन नहीं है, उपयोग-सा प्रतीत होनेपर भी उपयोग नहीं है। इसका कारण क्या है ? वेदान्तियोंके लिए इसका उत्तर बड़ा सुगम है। आस्वादन या उपभोग वहाँ होता है, जहाँ अपनेसे भिन्न कोई वस्तु आस्वाद्य या उपभोग्य रहती है। यहाँ तो श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।[1] मिट्टीके रूपमें भी वही चित्स्वरूप हैं। जो मिट्टीके भोक्ताके रूपमें हैं फिर उन्हें भोक्ता कैसे कहा जाय ? क्योंकि भोक्ता वही होता है जिसकी भोग्यवस्तु अपनेसे पृथक् होती है। आस्वादक वही हो सकता है, जहाँ आस्वाद्यवस्तु उससे पृथक् हो। जहाँ सब एक ही है वहाँ भोक्ता शब्दकी प्रवृत्ति, भोक्तृत्वका आरोप नहीं

१. वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णुः च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किञ्चन ॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।५

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सकता। इसीसे आत्मदृष्टिसे अथवा भगवद्दृष्टिसे भोक्ता और भोग्यभाव नहीं है, श्रीकृष्णकी दृष्टिमें भोग्य और भोजनकी सत्ता ही नहीं है, इसीसे वे अस्वीकार करते हैं। परन्तु ग्वाल-बालोंकी दृष्टिमें, बलरामकी दृष्टिमें वे भोक्ता हैं और वे कहते हैं कि इन्होंने मिट्टी खायी है। यह बड़े ऊँचे भक्तोंका भाव है कि श्रीकृष्ण अपने स्वरूपभूत ब्रह्मानन्दके भोक्ता हैं। ग्वाल-बालोंकी दृष्टिमें जो बात सत्य है, श्रीकृष्णकी दृष्टिमें वही बात सत्य नहीं है। वे कहते हैं—श्रीकृष्ण भोक्ता हैं, श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं भोक्ता नहीं हूँ। परन्तु यह बात कही किससे जाय? ज्ञाता अर्थात् प्रमाता ही यह बात श्रवण करनेका अधिकारी है। यही कारण है कि श्रीकृष्णके वचनका यह अर्थ भी हो सकता है कि भोले-भाले ग्वालवालोंका भोक्ता कहना सत्य है और तत्त्वदृष्टिसे मेरा भोक्ता न होना सत्य है। दृष्टिभेदके कारण दोनों ही बातें सत्य हैं। यह बात भी केवल ब्रह्मानन्द-रसास्वादनकी दृष्टिसे ही कही जा रही है। परन्तु यह सब समझ लें, ऐसी सम्भावना नहीं। जिन्होंने सर्वात्मकताका ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, जिन्हें आत्माकी अद्वितीयताका अनुभव नहीं हुआ है, जिनकी दृष्टिमें सम्पूर्ण अध्यस्त अधिष्ठानस्वरूप अथवा सपूर्ण प्रकाश्य स्वयंप्रकाश ब्रह्म ही नहीं है; वे इस शैलीको समझनेमें असमर्थ हैं। जिन्होंने निषेधवृत्तिको पकड़ रखा है, बाध भी जिनके अन्तःकरणमें वृत्ति बनकर 'आवृति और आवृत्ति' हो गया है वे इसे नहीं समझ सकते। श्रीकृष्णने इसीलिए दूसरे प्रकारसे समाधान किया।

स्वयं माताको ही श्रीकृष्णकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। कि ही आत्मा दूसरेकी दृष्टिमें भोक्ता होते हुए भी अभोक्ता कैसे हो सकता है? यह उलझन सुलझी नहीं। यशोदाने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कहा—'ऐसी बात है तो प्रमाणित करो—मुँह खोलकर दिखाओ।' श्रीकृष्ण सब प्रमाणोंको प्रमाणित करनेवाले अपने स्वरूपको किस प्रमाणसे प्रमाणित करते, स्थूलदृष्टिके सामने कैसे लाते? उन्होंने अपना विश्वरूप दिखाया। माताने देखा श्रीकृष्णके मुखमें स्वयं पृथिवी और पृथिवीके कारण पहलेसे ही विद्यमान हैं। यदि श्रीकृष्णके मुखमें पृथिवी पहलेसे ही विद्यमान है तो उन्होंने मिट्टी खाकर नवीनता क्या की? यदि पृथिवी उनके अन्तर्भूत ही है, तो वे खानेवाले और पृथिवी खायी जानेवाली वस्तु कैसे हो गयी? यशोदाकी समझमें यह बात आगयी कि इन्होंने खाया नहीं है, इनका न खाना सत्य और ग्वालबालोंका यह कहना भी सत्य कि इन्होंने मिट्टी खायी है। उनका समाधान हो गया और वे श्रीकृष्णका आत्मयोग देखकर चकित-स्तम्भित हो गयीं। फिर वही श्रीकृष्ण, वे ही बालक और वही मिट्टीमें खेलनेकी लीला चलने लगी।' मेरे वेदान्ती मित्रको बड़ा सन्तोष हुआ। भावुक मित्रने कहा—'भाई, तुम तो बलात् मेरे श्रीकृष्णको न जाने कहाँ लिये जा रहे हो! वे हमसे इतनी दूर नहीं हैं, वे तो हमारे बालक-सरीखे हैं, सखा-सरीखे हैं। जब शिशु होकर खेलते हैं तब माताकी मारसे उन्हें डरना ही चाहिए और बाललीलाकी पूर्णताके लिए कुछ अन्यथा बोल जायँ तो तर्क करनेकी क्या आवश्यकता है? तीन-चार वर्षके बच्चेके लिए यही स्वाभाविक है।'

मेरे वेदान्ती मित्र आश्चर्यचकित हो रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा—'जब श्रीकृष्णकी लीला इतनी रहस्यमयी है, तब भक्त लोग उसके बाह्य रूपपर ही क्यों लट्टू रहते हैं? उसके आन्तर रहस्य पर क्यों नहीं विचार करते? विचार करनेसे घबराते क्यों हैं?

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मैंने कहा—'श्रीकृष्णकी लीलामें बाह्य और आन्तरका भेद नहीं है। बाह्य और आन्तरकी सीमा समाप्त होनेपर श्रीकृष्णकी लीला प्रारम्भ होती है। जिनके अन्तःकरणसे प्रकृति और प्राकृत पदार्थोंसे संस्कार मिटे नहीं हैं, वे भूलसे निर्विशेष ब्रह्मकी अनुभूति होनेके पश्चात् होनेवाली एकरस श्रीकृष्णलीलामें भी देश, काल और वस्तुकी प्राकृतताकी कल्पना कर बैठते हैं। वास्तवमें जिस भक्तको श्रीकृष्णकी उस चित्स्वरूप, आनन्दरूप लीलाकी अनुभूति होती है, वह एकरसताका परित्याग करके बाहर और भीतरके तत्त्वपर विचार करनेका कष्ट ही क्यों करे? जो आमका रस ले रहा है वह पेड़के पत्तों और डालियोंको क्यों गिने? उसके भगवान् उसके सामने साक्षात् अपरोक्ष होते हैं, दूसरे चाहे जिस रूपमें अपने-अपने भगवान्को देखें, सुनें, गुनें, उसे कोई आपत्ति नहीं।'

मेरे मित्रने एक आपत्ति की। उन्होंने कहा—'ब्रह्म एक है, और वह सभी जिज्ञासुओंको एक रूपमें ही प्राप्त होता है, इसलिए वह वस्तुसत्य है। परन्तु श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न भक्तोंको भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्राप्त होते हैं, इसलिए वे केवल भाव-सत्य हैं। तभी तो श्रीकृष्णके सम्बन्धमें सभी भक्त प्रायः कुछ-न-कुछ पृथक् धारणा रखते हैं यह ठीक है न?' मैंने कहा—'जबतक ब्रह्म अथवा श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपकी उपलब्धि नहीं, तब-तक दोनों ही भाव सत्य हैं। विभिन्न जिज्ञासु और प्रेमी अपनी-अपनी बुद्धि और रुचिके अनुसार ब्रह्म एवं श्रीकृष्णके स्वरूपका आकलन करते हैं। उनके भूमिभेद और भावभेदके अनुसार श्रीकृष्ण और ब्रह्मकी पृथक्-पृथक् आंशिक अनुभूति भी हुआ करती है; परन्तु पूर्णता प्राप्त होनेपर श्रीकृष्णकी अनुभूति भी एकरस ही होती है। दोनोंमें अर्थात् जिज्ञासु और प्रेमीमें कुछ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अन्तर भी है। जिज्ञासु मनन और निदिध्यासनकी अवस्थामें स्वरूपकी आंशिक अनुभूतिसे तृप्त नहीं होता, वह अशान्त होकर अनुसन्धानमें लगा रहता है। परन्तु प्रेमी अपने भावके अनुसार कहीं सखाके रूपमें और कहीं पुत्र एवं पतिके रूपमें श्रीकृष्णका सान्निध्य अनुभव किया करता है और मस्त रहता है। इसकी पूर्णता स्वयं होती है, उसी परमरसमें, उसी परमभावमें जहाँ अनन्त, एकरस रस है। प्रेमियोंके भावमें भी साधनावस्थामें जिज्ञासुओंकी भाँति श्रीकृष्णका पृथक्-पृथक् आकलन है, परन्तु श्रीकृष्ण केवल भाव-सत्य ही नहीं, पूर्ण सत्य हैं, इसलिए उनकी लीला भी पूर्ण सत्य ही है। भावसत्य भी वस्तुसत्यसे पृथक् नहीं होता, यदि वह भाव वस्तु-सम्बन्धी ही हो। श्रीकृष्ण ही परमवस्तु हैं, उनके सम्बन्धका भाव सत्य ही होता है।'

इस प्रकार बात करते-करते हम लक्ष्मणझूलाके पास आ पहुँचे। यात्रियोंके कोलाहलने हमारी दृष्टि उधर खींच ली। स्वर्गाश्रम आनेके पश्चात् उन वेदान्ती मित्रने श्रीकृष्णलीलाके सम्बन्धमें और भी बहुत-सी बातें पूछीं, कही एवं सुनीं। सभी मित्रोंने उस चर्चामें भाग लिया, परन्तु इस प्रकारकी बातें किससे कहें, किससे सुनें, कोई इसका सच्चा प्रेमी भी है क्या? सब अपनी-अपनी धुनमें मस्त हैं। हम भी अपनी धुनमें मस्त रहकर श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण रटते रहें, उन्हींके नामरसका रस लेते रहें। अधिक बातचीतमें रक्खा ही क्या है? श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण!!

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ध्यान या सन्ध्या

शास्त्रोंमें ध्यानकी विभिन्न परिभाषाएँ आती हैं। एक कहता है—राग-द्वेषका नष्ट हो जाना ही ध्यान है। दूसरा कहता है—मनमें किसी भी विषयका न आना ही ध्यान है। तीसरा कहता है—अपने मनका लक्ष्यमें एकाग्र हो जाना ही ध्यान है। चौथा कहता है—चिन्तनके बलपर अपनी अभीष्ट वस्तुको प्रत्यक्ष-सा अनुभव करना ही ध्यान है। पाँचवा कहता है—अपने प्रियतमके स्वरूप, लीला और सेवा आदिका चिन्तन ही ध्यान है। छठा कहता है—विजातीय प्रत्ययोंका तिरस्कार करके सजातीय प्रत्ययोंका प्रवाहीकरण ही ध्यान है। सातवाँ कहता है—अनात्माकार वृत्तियोंका तिरोधान होकर आत्माकार वृत्तियोंकी स्थिरता ही ध्यान है। ध्यानकी ये सभी परिभाषाएँ रुचिवैचित्र्यके अनुसार ठीक हैं; परन्तु इनमेंसे कोई-सी परिभाषा स्वीकार की जाय, साधकको चाहे जिस मार्गका साधन करना हो, उसे पहले-पहल सहायककी आवश्यकता होती है, ध्यानकी सुगम परिपाटी जाननी ही पड़ती है। इसलिए ऋषियोंके द्वारा दी हुई ध्यानकी एक सहायक विधिकी चर्चा की जाती है। यह हमारे जीवनकी सन्धिमें आरम्भसे ही जोड़ दी गयी है। यदि हम इसका समुचित उपयोग करें तो बहुत ही शीघ्र हमारा ध्यान लग सकता है और हम अपनी इष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें सफल हो सकते हैं।

संस्कृतमें ध्यान शब्दका पर्यायवाची शब्द है सन्ध्या। एक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ही धातुसे दोनों शब्द निष्पन्न होते हैं। सन्ध्या शब्दका अर्थ है सम्यक् ध्यान, सम्यक् चिन्तन। इसलिए सन्ध्या शब्दका मुख्यार्थ भगवान्‌का स्मरण अथवा आत्मचिन्तन ही होता है। जिस क्रियाके द्वारा परमात्माका स्मरण और आत्मचिन्तन करनेमें सहायता प्राप्त होती है, उसका नाम है सन्ध्या। सन्ध्याकी किस क्रियाके द्वारा कौन-सा अंग शुद्ध होता है? देह, प्राण, मन, बुद्धि किस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं और किस प्रकार आवरण-भंग होकर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है?—यही विषय विचारणीय है।

सन्ध्यामें मुख्यत: ये क्रियाएँ की जाती हैं—आसन-शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण, अर्घ्य-दान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान, जप। इनके अतिरिक्त और भी कुछ छोटी-मोटी क्रियाएं हैं; जो इन्हींके अन्तर्गत हैं अथवा इनकी ही सहायक हैं। इनमें पूर्वापर-भाव और एकके बाद दूसरी क्रियाके आनेका कारण भी है; परन्तु यहाँ उसपर विचार न करके केवल इन क्रियाओंके सम्बन्धमें ही कुछ विवेचन किया जायगा।

आसन-शुद्धिके अन्तर्गत कई प्रकारकी शुद्धियाँ हैं, जैसे स्थान-शुद्धि, कुशादि आसनोंकी शुद्धि, सिद्धासन आदि आसनोंकी शुद्धि और अंगोंका यथास्थान स्थापन। सन्ध्याके लिए स्थान एकान्त, पवित्र और यथासम्भव एक होना चाहिए। नदीतट, देवालय, उपासना—मन्दिर विशेष उपयुक्त माने गये हैं। एकान्त स्थान एकाग्रतामें सहायक है, पवित्र स्थान मनमें पवित्रता लाता है और पवित्र गन्ध तथा पवित्र वायुके संयोगसे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। सद्विचारोंका उद्गम होता है। जिस स्थानमें बहुत दिनोंसे परमात्माका चिन्तन होता आया है अथवा होता है, उस स्थानमें जाते ही चित्तमें एक प्रकारकी शान्तिका उदय

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हो जाता है। अपवित्र स्थानमें अपवित्र विचारोंका उदय होना स्वाभाविक ही है। ऐसा सुना गया है कि पाश्चात्य देशमें एक नये बने हुए गिरजाघरमें जब लोग प्रार्थना करनेके लिए एकत्र हुए तब प्रार्थनाके समय सबके मनमें एक साथ ही हिंसाका भाव उठने लगा। पता लगानेपर मालूम हुआ कि पचासों वर्ष पूर्व उस स्थानपर कसाईखाना था। इसीलिए शास्त्रोंमें जहाँ मन्त्रानुष्ठानका विधान है वहाँ सिद्ध पीठोंकी बड़ी महिमा गायी गयी है। अतः सन्ध्या करनेका स्थान भी बहुत विचारकर ही चुनना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्थानके देवताओंको प्रसन्न करनेका भी विधान है। प्रत्येक स्थानके, मकानके और मकानके एक-एक कमरेके अभिमानी देवता होते हैं, द्वारपाल, देवता भी होते हैं। जिन लोगोंने सनातन धर्मकी रीतिसे गृहप्रवेश किया है और वास्तुपूजा की है, वे इन बातोंको जानते होंगे। भगवान्‌की उपासना करनेके पूर्व उन स्थानीय देवताओंको प्रसन्न कर लिया जाय तो वे भौम, दानवीय और दिव्य विघ्नोंसे साधककी रक्षा करते हैं। इसलिए स्थान-शुद्धि बहुत ही आवश्यक है।

स्थानशुद्धिके अनन्तर पृथिवीपर कुश अथवा कम्बल आदिका आसन बिछाया जाता है। यह आसन बिछाते समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है; उसका अर्थ है 'हे माँ पृथिवी! तुमने सब लोगोंको धारण कर रक्खा है। हे देवि! तुम मुझे धारण करो। मैं अनुभव करूँ कि तुमने भगवान् विष्णुके सम्बन्धसे धारण कर रखा है, तुम मेरा आसन पवित्र कर दो।' जगत्की माता पृथिवीसे इस प्रकार प्रार्थना करके आसनपर बैठना चाहिए। मन्त्रजपके समय अथवा वृत्तियोंको एकाग्र करते समय शरीरके अन्दर बहुत ही आहिण्डन होता है, उससे एक प्रकारकी विद्युत्-शक्ति आविर्भूत होती है, जो शरीर और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मनको स्वस्थ बनाती है। यदि शरीर और पृथिवीके बीचमें कोई आसन न रक्खा जाय तो वह विद्युत्-शक्ति पृथिवीके आकर्षणसे खिंच जायगी और इससे शरीर एवं मन दोनोंके ही स्वास्थ्यनाशकी आशङ्का रहेगी। इसलिए शास्त्रोंमें आसन-पर बड़ा जोर दिया गया है और कहा गया है कि आसनके बिना वैध कर्म निष्फल हो जाया करते हैं।

आसनपर बैठनेमें दो बातोंका और ध्यान रखना चाहिए, एक तो सिद्धासन, स्वस्तिकासन, वीरासन आदिमेंसे कोई आसन होना चाहिए और दूसरा यह कि हाथ, पैर, सिर आदि यथास्थान ही रहना चाहिए। जप आदि करते समय पैरके तलवोंका, गुह्य स्थानोंका स्पर्श निषिद्ध है। पीठकी रीढ़ सीधी होनी चाहिए। शरीर, गला और सिर भी सम-स्थितिमें ही होने चाहिए। मन्त्रोंके उच्चारणके समय नस-नाड़ियोंका और शरीरके सूक्ष्म अवयवोंका परस्पर आघात-प्रत्याघात होता है, जिससे शरीरके अवयवोंमें भी परिवर्तन होता है और शक्तिका विकास तथा प्रसार भी होता है। कोई नस-नाड़ी टेढ़ी रहे अथवा हाथ आदि रख देनेके कारण उसके प्रवाहमें बाधा पड़े तो उन क्रियाओंसे उतना लाभ नहीं होता। इसलिए सन्ध्या अथवा ध्यान करते समय शरीरको शिथिल और स्थिर रखना बहुत ही आवश्यक है।

सन्ध्याके मुख्य अङ्गोंमें मार्जनका प्रधान स्थान है। मार्जनका अर्थ है साफ करना, झाड़ू देना। स्नान करनेसे शरीर तो स्वच्छ रहता ही है, मार्जनके द्वारा उसमें पवित्रता भर जाती है। जिस समय शरीर गरम रहता है या परिश्रमके कारण थका रहता है, उस समय शरीरमें रक्त, वायु दोनों ही उत्तेजित रहते हैं। रक्तके वेगवान् प्रवाहके कारण मन भी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaiga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

चञ्चल होता है और वैसी स्थितिमें किसी प्रकारकी उपासना ठीक-ठीक नहीं बन पाती। इसीसे उपासनाके पूर्व स्नानका विधान है। स्नानकी भी विधि है, भावना है और उसके भी कई भेद हैं। परन्तु मार्जनमें तो विधिपर विशेष जोर न देकर मन्त्रोक्त भावना और देवताकी ही प्रधानता रक्खी गयी है। मार्जनके द्वारा रक्तका प्रवाह कम होता है, शीतलताके कारण उद्दीप्त भावनाएँ शिथिल पड़ती हैं, मनमें चिन्तनकी शक्ति आती है और जलके अधिष्ठाता-देव प्रसन्न होकर साधककी सहायता करते हैं। मार्जनके अनेक मन्त्रोंमें-से कुछके अर्थ निम्नलिखित हैं—

'पवित्र हो या अपवित्र, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, जो कमलनयन भगवान्का स्मरण करता है वह बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है।' हे जलके अधिष्ठातृ देवताओ! जिस शक्तिके प्रभावसे तुम लोग सब प्राणियोंको सुख देते हो, उस परमशक्ति परमात्माको मेरे हृदयमें प्रकाशित करो। हमें ऐसी सामर्थ्य दो, ऐसी शक्ति दो कि हम परमात्माकी स्फूर्तिका निरन्तर अनुभव करनेके योग्य हो जायँ। तुम अपना कल्याणकारी रस हमें दो। जिस प्रकार स्नेहमयी मातासे पुत्र अपने लिए हितकर दूधकी आशा और अभिलाषा रखता है वैसे ही हम तुम्हारे जगत्को तृप्त करनेवाले रसकी इच्छा करते हैं। स्वामिन्, सबको प्राप्त करनेवाले या प्राप्त करानेवाले देव, तुम हमें आनन्द-रसानुभव करनेके योग्य बनाओ!' इत्यादि अनेकों मन्त्र हैं। मनुष्यके शरीरमें दो-तिहाईसे अधिक जलीय-अंश है। शरीरमें शक्ति, जीवन, स्फूर्ति आदि इसीसे आते हैं। परमात्माके चिन्तनमें अपनी पूरी शक्ति लगानेके लिए जलके अधिष्ठातृ-देवतासे प्रार्थना करना आवश्यक है। चित्तमें जबतक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ग्लानि रहती है तबतक कोई भी उपासना प्रसन्नतासे नहीं होती। प्रसादपूर्वक हुए बिना किसी भी उपासनाकी सफलता सन्दिग्ध है। इसलिए भी मार्जनकी आवश्यकता है कि चित्तकी ग्लानि दूर हो जाय और जलाधिष्ठातृ देवताकी सहायतासे यह भावना दृढ़ हो जाय कि मैं पवित्र होकर स्थिरभावसे परमात्माकी उपासना करने बैठा हूँ, अब पाप-ताप मेरा स्पर्श नहीं कर सकते। मैं अविचलभावसे भगवान्‌का चिन्तन करूँगा। इसी भावनासे अपने चारों तरफ जल छिड़ककर स्थिरताकी भावना दृढ़ की जाती है।

आचमन भी सन्ध्याका एक मुख्य अङ्ग है और यह भिन्न-भिन्न मन्त्रोंसे कई बार किया जाता है। जैसे मार्जनके द्वारा वाह्य शरीरपर प्रभाव डाला जाता है; वैसे ही आचमनके द्वारा अन्त:शरीरपर प्रभाव डाला जाता है। आचमनसे मानसिक उत्तेजना शान्त हो जाती है। इन्द्रियोंको धोनेसे, कुल्ला करनेसे, स्नान करनेसे एवं पानी पीनेसे काम-क्रोधादि विकारोंको बहुत कुछ शान्त होते देखा गया है! आचमनके मन्त्रोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि वे विभिन्न प्रकारके दोषोंके दूर करनेकी प्रार्थनाएँ हैं। एक-दो मन्त्रोंका अर्थ लिखा जाता है—'तेजस्विताके देवता सूर्य, क्रोध और उसके देवता क्रोधसे किये गये पापोंसे मेरी रक्षा करें। मैंने रातमें जो पाप किये हैं; चाहे वे मनसे, वाणीसे, हाथोंसे, पैरोंसे, पेटसे अथवा मूत्रेन्द्रियसे ही क्यों न हुए हों; रात्रिका देवता उसे नष्ट कर दे। मेरे अन्दर जितने पाप हैं; उन सबको और अपनेको यह मैं अमृतयोनि सूर्यमें हवन करता हूँ।' इसी प्रकार समय और क्रियाके भेदसे और भी आचमनके मन्त्र हैं। शरीर-शुद्धिके साथ-ही-साथ मन्त्रकी अपूर्व शक्ति एवं देवताकी सहायतासे मन:शुद्धि भी हो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जाती है। आचमनका विशेष उपयोग मनःशुद्धिमें ही है। स्वामी दयानन्दजीने बतलाया है कि आचमन करनेसे कफ नष्ट होता है और मन्त्रोंके उच्चारणमें सुगमता हो जाती है। वास्तवमें आचमन सन्ध्याका एक मुख्य अङ्ग है और यदि भावनापूर्वक किया जाय तो दोषोंको मिटानेमें और ध्यान लगानेमें बहुत ही सहायक हो सकता है।

प्राणायामकी महिमा तो बहुत ही प्रसिद्ध है। हठयोगका मूल स्तम्भ प्राणायाम ही है। प्राण अर्थात् शरीरके अन्दर रहनेवाली क्रियाशक्ति, आयाम अर्थात् उसका नियन्त्रण। हम अभ्यासके कारण बहुत-से ऐसे काम भी कर डालते हैं जिन्हें करना आवश्यक नहीं है और जिन्हें नहीं करना चाहिए। व्यर्थके कर्म तो हमारे मित्र हो गये हैं, अधिकांश कर्म वैसे ही होते हैं; उनके नियन्त्रणकी बड़ी आवश्यकता है। प्राणशक्तिके अनियंत्रित हो जानेके कारण ही जीवनके बहुत-से अङ्ग बेकार हो गये हैं, निकम्मे हो गये हैं। प्राणायामके द्वारा क्रियाशक्ति नियन्त्रित की जाती है। वे नस-नाड़ियाँ जो वायु-सञ्चार न होनेके कारण अनेक प्रकारके रोगोंका उद्गम बन रही हैं, पुनः अपना ठीक-ठीक काम करने लगती हैं। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि मन, प्राण और वीर्य ये तीनों एक ही वस्तु हैं, तीनोंमें-से एक वश कर लिया जाय तो शेष दो अपने-आप वशमें हो ज़ाते हैं। जिसने प्राण वशमें कर लिये उसका मन वशमें हो गया और उसका वीर्य भी स्थिर हो गया। मनकी स्थिरतासे आध्यात्मिक लाभ और वीर्यकी स्थिरतासे लौकिक-पारलौकिक लाभ सुनिश्चित है। सन्ध्याके प्राणायाममें दो बातें और हैं—एक तो मन्त्रका जप और दूसरा ध्यान। ध्यान तीन स्थानोंमें होता है—नाभि, हृदय और मस्तकमें। नाभिमें क्रियाशक्ति रहती है, वहाँ ब्रह्माका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ध्यान होता है। हृदयमें इच्छाशक्ति, प्रेमशक्ति अथवा भावना-शक्ति रहती है, वहाँ स्थितिके देवता विष्णुका ध्यान होता है। मस्तकमें ज्ञानके देवता मूर्तिमान वैराग्य भगवान् शिवका ध्यान होता है। इस प्रणायामके द्वारा क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति तीनोंका ही पूर्ण विकास होता है। पापवृत्ति नष्ट हो जाती है। अनेकों प्रकारकी सिद्धियाँ आजाती हैं और आध्यात्मिक शान्तिका लाभ होता है। प्राणायाममें जिस मन्त्रका जप होता है उसका अर्थ है—'जिस ज्योतिःस्वरूप, जीवके एकमात्र वाञ्छनीय, सृष्टिकर्ता देवताके परम प्रकाशमान ज्योति हैं—ऊपरके सातों लोक और नीचेके सातों लोक, उस परमात्माका हम चिन्तन करते हैं, वह हमारी बुद्धिको शुद्ध करें। वही जल, तेज आदिके रूपमें व्यक्त हो रहा है। वास्तवमें वही ब्रह्म है, वही ॐकार है। प्राणायामकी शक्ति, मन्त्रकी शक्ति और ध्यान-की शक्ति—तीनों मिलकर साधकको जो लाभ पहुँचाते हैं; वह वर्णनातीत है।

उपासना-शास्त्रमें अघमर्षणकी बड़ी महिमा है, इसके अनेकों प्रकार हैं। तन्त्रोंमें इसे भूतशुद्धि कहा गया है और यह विधिपूर्वक किया जाय तो बिना किसी विशेष क्रियाके ही कुण्डलिनी जाग जाय। इसकी क्रिया इस प्रकार बतलायी गयी है कि साधक अपनी भावनाकी आँखोंसे देखे कि मेरी बायीं कोखमें एक बड़ा भयङ्कर पापपुरुष है। बीज मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ प्राणोंके साथ जल खींचकर वहाँ ले जाय और उस पापपुरुषको भस्म करके फिर एक पुण्यपुरुषकी सृष्टि करे। इस प्रकारकी भावना करते रहनेसे पाप-प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है और जीवन पुण्यमय बन जाता है। इसकी एक प्रक्रिया ऐसी भी है कि नाभिस्थानसे धर्मकी जड़ और ज्ञानकी नालसे युक्त

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

एक भाव-कमल प्रकट हुआ है, हृदयमें स्थित उस कमलकी कर्णिकापर दीपशिखाके समान जीव निवास करता है, उसका ध्यान करके सुषुम्नामार्गसे उसे सहस्रारमें स्थित परमात्मामें ले जाकर मिला दे और जबतक एकीभावसे स्थित रहा जाय, रहे। जब ध्यान टूटने लगे तब जीवात्माको पुनः उसी मार्गसे हृदयमें लाकर उस कमलपर विराजमान कर दे। इस प्रकार थोड़ा ही अभ्यास करनेसे यह अघरूप संसार दबा दिया जाता है। रसका चिन्तन कम हो जाता है। जीवन सदाचारमय और जीव परमात्माके आनन्दमें मस्त रहने लगता है।

अघमर्षणकी एक और प्रक्रिया बड़ी गुप्त है और वह मुझे एक बड़े अच्छे महात्माके द्वारा प्राप्त हुई है। इस प्रक्रियासे बहुत ही शीघ्र भूतशुद्धि हो जाती है। मूलाधारसे लेकर सहस्रारपर्यन्त सुषुम्नामार्गका चिन्तन करते हुए इन चार मन्त्रोंका जप किया जाय—

१. ॐ भूत (मूल) शृङ्गाटात् शिरःसुषुम्नापथेन जीव-शिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।
२. ॐ यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।
३. ॐ रं सङ्कोचशरीरं दह दह स्वाहा।
४. ॐ परमशिव सुषुम्नापथेन मूल शृङ्गाटं उल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा।

इनसे बहुत ही शीघ्र लाभ होते देखा गया है। सन्ध्यामें जो अघमर्षणकी विधि दी गयी है, वह बहुत ही संक्षिप्त है, फिर भी उसका मन्त्र इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसमें सृष्टि प्रक्रियाका सम्पूर्ण वर्णन आगया है। उसका स्मरण करनेसे यह बात मनमें बैठ जाती है कि सारी सृष्टि भगवान्की बनायी हुई है और फिर पाप करनेकी इच्छा नहीं होती। मन्त्रका अर्थ इस

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रकार है—'परम ज्ञानस्वरूप परमात्मासे लौकिक और पारमार्थिक सत्य प्रकट हुए हैं, उनसे ही अविद्यारूपिणी रात्रि भी पैदा हुई है, फिर उसीसे भवसागर बना है। भवसागरमें संवत्सर, दिन, रात, और कालके सम्पूर्ण अवयव, जो जगत्के कम्पनशील होनेके प्रमाण हैं, प्रकट हुए। पूर्व कल्पके अनुसार ही सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथिवी अन्तरिक्ष आदिकी भी कल्पना हुई।' इस मन्त्रसे संसारके सब पदार्थोंका सम्बन्ध भगवान्के साथ जोड़कर साधक उस प्रभुका वैभव और उसकी लीला देखनेमें मस्त हो जाता है। आत्माके साक्षात्कारमें मल, विक्षेप और आवरण—तीन दोष माने जाते हैं; परन्तु भगवान्के दर्शनमें केवल दो ही दोष बाधक हैं—मल और विक्षेप। सन्ध्याके द्वारा मल अर्थात् पाप और विक्षेप अर्थात् मनकी चञ्चलता, दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। अघमर्षणका मन्त्र मलका नाश करता है, विक्षेपको दूर भगाता है, मनमें प्रसन्नता भर देता है और मेरे पाप नष्ट हो गये, इस भावको दृढ़ कर देता है। दृढ़तासे विक्षेप नष्ट हो जाते हैं और मन्त्रके अर्थपर विचार करते ही आवरण भङ्ग हो जाता है। इसलिए सब प्रकारके साधकोंको अघमर्षणका सविधि अनुष्ठान करना चाहिए।

इस पृथिवीमण्डल और इसपर रहनेवाले जीवोंका सूर्यके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यके ही प्रकाशसे, चाहे वह चन्द्रमाके रूपमें हो या दीपकके, हम इस संसारको देख पाते हैं। सूर्यकी ही उष्णतासे हमारा जीवन जीवन बना हुआ है और भोजनका परिपाक करके वही हमें रस भी देता है। यह पृथिवी सूर्यसे ही निकली हुई है और सूर्य स्वयं भगवान्की दृष्टि है, एक रूपमें स्वयं भगवान् हैं। सूर्यका भोजन जल है

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

और वह पृथिवी-स्थित एवं शरीरमें स्थित जलको खींच-खींकर हमें उसका कई-गुना रस एवं शक्ति प्रदान करते हैं। उन भगवान् सूर्यको भला हम दे ही क्या सकते हैं? परन्तु न दे सकनेपर भी हमारा एक कर्तव्य है कि समय-समयपर हमें अपनी ओरसे भगवान् सूर्यको कुछ-न-कुछ भेंट करनी ही चाहिए। पुराणोंमें कथा आती है कि—एक प्रकारके राक्षस भगवान् सूर्यको निगल जानेके लिए सचेष्ट रहते हैं, अर्घ्यदानके बलसे वे पराजित हो जाते हैं और भगवान् सूर्य अर्घ्य देनेवाले-पर बहुत ही प्रसन्न होते हैं। सूर्यदेवताकी प्रसन्नतासे हमारी आँखोंमें ज्योति आती है, बुद्धिमें प्रकाश आता है और हमारी आँखें बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रुक जाती हैं। क्योंकि बिना सूर्यकी शक्तिके आँखें कुछ कर ही नहीं सकतीं। इसलिए सूर्य-देवको अर्घ्य देना अपने अन्त:करण और शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए बहुत ही आवश्यक है। सभी इष्टदेवोंका ध्यान सूर्यकी ज्योतिमें ही होता है, इसलिए अपने हृदयमें सूर्यमण्डलका चिन्तन करनेके लिए अवश्य-अवश्य भगवान् सूर्यको प्रसन्न करना चाहिए।

सूर्योपस्थानका अर्थ है भगवान् सूर्यके दरबारमें उपस्थिति। उस समय हम सूर्यके सामने खड़े होकर प्रार्थना करते हैं कि इस अन्धकारमय जगत्से परे रहनेवाली उत्तम ज्योति जो कि प्रकाशस्वरूप सूर्य ही हैं, जिनसे उत्तम और कोई ज्योति नहीं है, हम उनकी शरण लेते हैं। ज्ञानके भण्डार प्रकाशमय सूर्यको, जिनकी किरणें संसारको दृष्टियुक्त बनानेके लिए ढो लाती हैं। दिनके अभिमानी देवता मित्र, रात्रिके अभिमानी देवता वरुण और दोनोंके अभिमानी देवता अग्नि, इन सबके प्रकाशक भगवान् सूर्यका उदय हो रहा है। वे स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्षको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अपने प्रकाशसे परिपूर्ण कर रहे हैं; वही सम्पूर्ण चराचर जगत्के आत्मा हैं। सम्पूर्ण इन्द्रियों और देवताओंका हित करनेवाले एवं सबके विशुद्ध नेत्र, उगते हुए भगवान् सूर्यको हम सौ वर्षतक देखें, सौ वर्षतक जियें, सौ वर्षतक आनन्दित रहें इत्यादि। इन मन्त्रोंसे सूर्यके सामने उपस्थान करनेसे शारीरिक, मानसिक दोनों प्रकारके बलकी अभिवृद्धि होती है और आध्यात्मिक चिन्तनमें बड़ी सफलता मिलती है। जो सूर्यमण्डलका ध्यान करनेमें समर्थ हो जाता है, वह बड़ी सुगमतासे अपने इष्टदेवका ध्यान भी कर सकता है।

उपासनाविधिमें न्यासका बड़ा ऊँचा स्थान है। आजकल समयके प्रभावसे अथवा उपासनाशास्त्रके अध्ययनाध्यापनके अभावसे कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा हो गयी है कि ध्यान अथवा सन्ध्याके लिए न्यासकी आवश्यकता नहीं; परन्तु न्यासतत्त्वपर विचार करनेसे मालूम होता है कि अनेक दृष्टियोंसे इसकी बड़ी आवश्यकता है। न्यास दो प्रकारका होता है—अन्तर्न्यास और वहिर्न्यास। ये भी मन्त्रन्यास और देवतान्यासके रूपमें भिन्न भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। तत्त्वन्यास, किरीटन्यास, व्यापक न्यास आदि अनेकों भेद हैं। यहाँ विस्तारसे उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सन्ध्यामें दो प्रकारके न्यास आते हैं। एक तो ऋषि, छन्द और देवताओंका न्यास; दूसरा व्याहृति और मन्त्रका न्यास। न्यासका अर्थ है स्थापन। अपने शरीरके अवयवोंमें मन्त्र और देवताओंका स्थापन ही न्यास है। किसी-किसी न्यासके फलमें बतलाया गया है कि इससे साधकका जड़ शरीर भी चिन्मय हो जाता है। जब न्यास करनेसे साधक अपने शरीरको देवतामय और मन्त्रमय अनुभव करता है; तब उसकी वृत्तियाँ स्वयं पवित्र हो जाती हैं। पवित्रता शान्तिकी जननी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

है और शान्तिमें ही ध्यान लगता है। ऋषि, छन्द और देवताओंके स्मरणसे मन्त्रका वास्तविक अर्थ समझनेमें बड़ी सुविधा होती है।

आसनशुद्धिसे लेकर न्यासपर्यन्त कर्म करनेपर जब बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि सम्पन्न हो जाती है, तब मन्त्रजप किया जाता है। उस समय वृत्तियोंके पवित्रतम हो जानेके कारण मन मन्त्रके अर्थमें लग जाता है और शब्दकी शक्ति बाहर जानेवाली इन्द्रियोंको समेटकर अन्तर्मुख कर देती है और स्वयं ही ध्यान होने लगता है। विष्णुपुराणमें कहा गया है कि जपसे ध्यान और ध्यानसे जपकी साधना होती है। जो साधक इन दोनोंका अभ्यास कर लेता है, उसके सामने परमात्मा प्रकट हो जाता है।[1]

इस प्रकारके साधनसे बड़ा लाभ होता है। मन्त्रके शब्दोंकी शक्ति, अर्थका चिन्तन और उसका बार-बार आवर्तन एक प्रकारकी वृत्ति तैयार कर देता है। सारी वृत्तियाँ संकुचित होकर एक वृत्तिके रूपमें हो जाती हैं और यही ध्यान है। यदि जपके समय पहले वृत्तियाँ एकाग्र न होती हों तो निराश होनेका कोई कारण नहीं है, बिना एकाग्रताके भी जप करनेसे बड़ा लाभ होता है। यदि हम वृत्तियोंके एकाग्र होनेकी प्रतीक्षामें जप ही न करें; तो उनके एकाग्र होनेकी कोई आशा ही नहीं है। यथार्थ तो यह है कि जो श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक सन्ध्या करता है, जपके समय उसकी वृत्तियाँ एकाग्र हो ही जाती हैं।

सन्ध्याकी सम्पूर्ण क्रियाओंका लक्ष्य है अन्तःकरणकी शुद्धि

१. स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमभ्यसेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

और परमात्माकी प्राप्ति। उपासनाकी सिद्धि अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धि, निष्कामभावकी पूर्णता अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धि। अन्तःकरण जितना ही अधिक शुद्ध होगा उतना ही गाढ़ा ध्यान लगेगा। ध्यान इष्टदेवका होता है। माता गायत्री इष्टदेवी हैं, उनके ध्यानमें सपूर्ण देवताओंका ध्यान अन्तर्भूत है। वेदोंके समस्त मन्त्र और उन मन्त्रोंमें प्रतिपादित देवता माता गायत्रीके बालक हैं। माता सन्तुष्ट हो जाय तो अपने किसी बालकको साधकके पास भेज सकती है। गायत्रीके विभिन्न प्रकारके ध्यान सन्ध्यापद्धतियोंमें वर्णित हैं। गायत्रीका ध्यान सूर्यमण्डलमें होता है और सृष्टिकर्ता सविता देवता ही उसके प्रतिपाद्य हैं। सविधि ध्यान करनेसे बहुत ही शीघ्र माता गायत्री प्रसन्न होती हैं।

ऐसे अनेक साधकोंको मैं जानता हूँ, जो वर्षोंसे ध्यान करनेकी चेष्टा करते हैं; परन्तु उनसे मूर्ति ही नहीं बँधती। कभी कोई अंग दीख जाता है तो कभी कोई, सो भी पत्थर-सरीखा जड़। कईको तो नींद आ घेरती है और वे अज्ञान-समाधिमें मग्न हो जाते हैं। इसके कई कारण हैं—श्रद्धा और प्रेमकी कमी, लगनका अभाव, साथ-ही-साथ ध्यानकी पद्धति न जानना भी। इस विषयके ग्रन्थोंमें इष्टदेवके ध्यानके पूर्व और भी कई वस्तुओंके ध्यानका वर्णन आता है; जो कि इष्टदेवकी लीलासे सम्बद्ध हैं। मान लें, किसीको अपने हृदयमें श्रीकृष्णका ध्यान करना है, यदि वह पहले ही श्रीकृष्णका ध्यान करने लगता है तो श्रीकृष्ण उसके हृदयमें नहीं आते। बहुत हठ करनेपर वही चित्र जो कि उसने देखा है या वही भावना जो कि उसने सुन रक्खी है; उसके सामने आजाती है। मुरली मुँहमें लगी है तो लगी ही रहती है, वहाँसे हटती नहीं, मानो श्रीकृष्ण अपना हाथ कभी हिलाते ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नहीं। इस प्रकारका ध्यान भी उपयोगी है; परन्तु इसमें इतने आनन्दका अनुभव नहीं होता। श्रीकृष्णके ध्यानसे पूर्व उनके लीलाक्षेत्रका ध्यान होना जरूरी है। वृन्दावन हो, यमुनाका तट हो, कदम्बका वृक्ष हो, गौएँ हों, ग्वाल-बाल हों और वे उनकी प्रतीक्षामें हों और साधक उनके लिए तड़प रहा हो; इसी छटपटीमें हँसते-खेलते हुए, उछलते, पीताम्बर फहराते हुए, कभी गाते और कभी बाँसुरी वजाते हुए, श्रीकृष्ण आजायँ—बस, ध्यान हो गया।

तन्त्रोंमें पहले हृदयमें न्यास करनेका विधान है। पहले हृदयकमलपर द्वादशकलात्मक सूर्य, षोडशकलात्मक चन्द्रमा और दशकलात्मक अग्नितत्त्वका न्यास किया जाता है। यह तत्त्वन्यासका एक अंश है। इसके बाद पीठन्यास होता है जिसमें क्रमश: आधारशक्ति, प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, क्षीरसमुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमण्डल, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका और रत्नसिंहासनका न्यास किया जाता है। इनकी स्थापना करते-करते साधक एक दूसरे ही लोकमें चला जाता है, बाह्य-विस्मृति हो जाती है और वहाँ वह बड़ी उत्सुकतासे अपने प्राणोंके प्राण प्रियतम प्रभु श्रीकृष्णके लिए व्याकुल हो उठता है। एकाएक उसके सामने गोपीमण्डल या गोपमण्डलके साथ भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते हैं और वह ध्यान-मग्न हो जाता है। वह अपने प्रभुकी लीलामें सम्मिलित होकर उनकी सेवा करके कृतकृत्य हो जाता है। इस प्रकार अपने-अपने इष्टदेवका ध्यान अलग-अलग होता है।

ध्यान करनेवालेको ऐसा सङ्कल्प करना चाहिए कि आज मैं जो ध्यान करने जा रहा हूँ; वह कभी भंग नहीं होगा। आज मैं सर्वदाके लिए अपने प्रभुकी सन्निधिमें जा रहा हूँ। एक घण्टे या

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दो घण्टे बाद अमुक काम करनेके लिए जाना है, तबतक ध्यान तोड़ दूँगा। ऐसी वासना लेकर जो ध्यान करने बैठता है वह अन्तर्देशमें प्रवेश करनेमें असमर्थ ही रहता है। यदि इतना ही समय हो तो यह दृढ़ सङ्कल्प करना चाहिए कि इसके अन्दर तो कोई दूसरी बात मनमें आने ही नहीं देंगे। ध्यानके साधकके लिए सम्बन्धकी भी बड़ी आवश्यकता है। सम्बन्धियोंसे ही प्रेम करनेकी हमारी आदत पड़ गयी है। भगवान् गुरु हैं, स्वामी हैं, सखा हैं, माँ-बाप हैं, बालक हैं और अपने पति हैं, इनमेंसे कोई-सा सम्बन्ध जोड़कर प्रेमके साथ उनका स्मरण करना चाहिए; स्मरण ही गाढ़ा होकर ध्यान बन जाता है।

यह तो ध्यानका एक रूप है। चाहे जिस प्रकारका ध्यान हो, सन्ध्याकी प्रत्येक क्रिया उसके निकट पहुँचा देती है। सभी प्रकारके ध्यान अन्तःकरणकी शुद्धिसे ही सम्भव हैं और उसके लिए सन्ध्यासे बढ़कर और कोई साधन नहीं है। हमारे पूर्वज ऋषियोंने बड़ी कृपा करके हमारे साथ यह पवित्र क्रिया जोड़ दी है और ऐसी पद्धति बना दी है कि चाहे सकाम-से-सकाम पुरुष क्यों न हो, उसे सन्ध्या तो निष्कामभावसे करनी ही पड़ेगी। जहाँ हमारे सारे कर्म कामनाओंसे दूषित हो गये हैं वहाँ एक सन्ध्या ही निष्कामकर्मके रूपमें बची है; इसको न करनेसे बड़ा पाप बतलाया है। यहाँतक कहा गया है कि जो यज्ञोपवीतधारी बारह दिनोंतक लगातार सन्ध्या नहीं करता वह पतित हो जाता है—उसका किसी भी वर्णाश्रमोचित क्रियामें अधिकार नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक द्विजातिको श्रद्धा और प्रेमके साथ सन्ध्योपासना करनी ही चाहिए।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

स्वयंप्रकाश ब्रह्मसुख

जीवमात्र सुख चाहता है—सुख भी ऐसा, जो सर्वदा मिले, सर्वत्र और सबसे, जिसके लिए परिश्रम न करना पड़े, जो पराधीन न हो एवं जिसका भान होता रहे। इतनी उच्च-कोटिकी महत्त्वाकाङ्क्षा होनेपर भी यह एक विचित्र-सी बात लगती है कि उसकी प्राप्तिके साधनके सम्बन्धमें सब एकमत नहीं हैं। कोई किसी देशमें पहुँचकर सुखी होनेका विश्वास रखते हैं; तो कोई परिस्थितिविशेष उत्पन्न करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। कोई किसी वस्तुकी प्राप्तिके लिए क्रियाशील हैं; तो कोई लोकहितकारी श्रमकी प्रतिष्ठामें ही लगे हुए हैं। कोई हाथ जोड़कर किसी दूसरेसे सुखकी भिक्षा माँग रहे हैं; तो कोई चेतनाशून्य होनेका उपक्रम कर रहे हैं। जितने जीव, उतनी मति और उतने ही मत—जैसे कुएँमें ही भाँग पड़ गयी हो। सुखके लिए भोग करें कि संयम? त्याग करें कि संग्रह? कर्म करें कि संन्यास? नाचें-कूदें कि समाधि लगायें? किसीकी स्मृति करें अथवा सबका विस्मरण कर दें? होशमें रहें कि बेहोश हो जायँ? स्पष्ट देखनेमें आता है कि सुख चाहनेवाले इन विभिन्न स्थितियोंमें अपनेको डालकर सुखी होनेके लिए आशावान् एवं तत्पर हैं। इसका कारण क्या है? अपने इष्ट सुखका ठीक-ठीक स्वरूप निर्णय न होनेसे तात्कालिक, अपूर्ण, श्रम-साध्य स्थिति और पराधीनता आदिमें ही अपना इष्ट सुख मिलनेकी भ्रान्तिसे ग्रस्त हो रहे हैं और शान्तिके स्थानपर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्रान्ति और क्लान्तिका अनुभव कर रहे हैं। सीमित देश-कालमें सीमित वस्तु, व्यक्ति और श्रमसे सीमित चित्त-वृत्तिमें सीमित 'अहं'को असीम सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। सीमा असीमको आत्मसात् करनेमें असमर्थ है। तब क्या असीम श्रम ही इष्ट सुख है? नहीं-नहीं; श्रमकी प्रतिक्रिया तो विश्राम है, वह सुषुप्ति हो चाहे समाधि। तब अपने इष्ट सुखकी प्राप्तिके लिए हम किसका द्वार खटखटायें! निश्चय ही इष्टके स्वरूपको गम्भीरतासे यथार्थ रूपमें समझा नहीं गया है। आइये, एकबार सर्वदा, सर्वत्र और सर्वमें-से 'अब', 'यहाँ' और 'यह' को अलग-कर लें। आयास और याचना छोड़ दें। देखें, सुख भासता है या नहीं! यदि नहीं भासता है अर्थात् वह सुख 'अब', 'यहाँ' और 'यह' नहीं है तो वह सर्वदा, सर्वत्र रहनेवाला और सर्वरूप कैसे होगा? वह तो अनायाससिद्ध और अपराधीन भी नहीं होगा। निश्चय ही अपने इष्ट सुखको पहचाननेमें भूल हो रही है। हम सर्वदा रहनेवाला सुख' चाहते हैं और उसको अब और अबसे पहले भी नहीं मानते हैं; सर्वत्र सुख चाहते हैं, परन्तु उसको यहीं अपरोक्षरूपसे नहीं पहचानते, सिद्धरूपसे चाहते हैं और उसके लिए आयास, स्थिति अथवा कृपाकी अपेक्षा एवं प्रतीक्षा करते हैं। यह एक बौद्धिक असंगति, असमञ्जस विचार अथवा भ्रान्तिका विलास है। इष्ट सुखकी प्राप्तिके लिए यही दूर होना चाहिए।

वस्तुतः हम भासमान सुख चाहते हैं; क्योंकि सुखकी परोक्ष सत्ता होती ही नहीं। वह जब होता है, तब अपरोक्ष ही होता है। अपरोक्षताका अर्थ प्रमाण और प्रमेयके व्यवहारसे होनेवाली अपरोक्षता नहीं, साक्षिभास्य अपरोक्षता है। साक्षी स्वयं सुखस्वरूप होनेपर भी अविद्यावृत्तिसे अर्थात् अपनी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ब्रह्मताका ज्ञान न होनेके कारण सुखको अन्यरूपसे प्रकाशित करता है। इसीसे भास्यगत अवस्थाओंके परिवर्तनके कारण सुखका भी परिवर्तन मान बैठता है और स्वप्नवृत्ति, जाग्रत्-वृत्तिसे तादात्म्यापन्न होकर अपनेको कभी सुखी, कभी दुःखी मानने लगता है।

यह विचार करने योग्य है कि हम चित्तवृत्तिके किसी सविषय, निर्विषय आकारविशेषको ही तो सुख मानने नहीं लगते ! यदि ऐसा है तो वह आकारविशेष औपाधिक होगा, कालिक होगा, दैशिक होगा। इसलिए आकारविशेषसे सुखकी उपलब्धि भ्रान्तिसिद्ध होगी। इसका अभिप्राय यह है कि जीवको जैसा सुख इष्ट है, वह कोई संसारी आकार नहीं, प्रत्युत उससे सर्वथा रहित है। केवल ऐसा सुख ही दैशिक, कालिक, सविषय, निर्विषय आकारोंमें परिवर्तन होते रहनेपर भी—सृष्टि और महाप्रलयके प्रचण्ड ताण्डवमें भी अविनाशी, एकरस और परिपूर्ण रह सकता है। तत्त्वदृष्टिसे सुख भानमात्र ब्रह्म है। व्यावहारिक सुखकी क्षणिकतासे भानमात्र सुख—ब्रह्म क्षणिक नहीं हो सकता; क्योंकि क्षणिकता उपलब्धिका विषय है और सुख उपलब्धिस्वरूप, अकाल, अदेश और अविषय है। इसका तात्पर्य यह है कि उपलब्धि ही ब्रह्म है और ब्रह्म अविनाशी सत्, सर्वावभासक, परिपूर्ण, चित् तथा जीवमात्रका इष्ट और सुखस्वरूप प्रज्ञान ही है। किस कालमें, किस देशमें, किस स्थितिमें, किस रूपमें, श्रमसे या बिना श्रमसे, किसीके दिये या बिना दिये, होशमें या बेहोशीमें, किस आकार या आकाराभावकी उपलब्धि हो रही है—इससे उस प्रज्ञान स्वरूप सुखका कोई प्रयोजन नहीं है। वे सभी उपलब्धियाँ प्रज्ञानमात्रसे भिन्न तो हैं ही नहीं, परिणाम भी नहीं है। प्रज्ञानके तात्त्विक-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

रूपसे विपरीत वर्तनेके कारण उन्हें विवर्त तो कहा जाता है; परन्तु परमार्थतः वे सब प्रज्ञान ब्रह्मस्वरूप ही हैं।

प्रज्ञान क्या है? प्रकृष्ट ज्ञान। ज्ञानमें प्रकृष्टता अथवा श्रेष्ठता है उसकी शुद्धि। लोक-व्यवहारमें ज्ञान शब्दका प्रयोग ज्ञेय और ज्ञातासे युक्त अर्थमें ही होता है। ज्ञानका विषय है ज्ञेय और अभिमानी है ज्ञाता। ज्ञेय घट है, ज्ञाता जीव है, ज्ञान दोनोंके बीचकी कड़ी है। यहाँ प्रमाण-वृत्ति अथवा करणके अर्थमें ज्ञान शब्दका प्रयोग होता है। वस्तुतः ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनोंमें तत्तदवच्छिन्न चेतनके एक होनेके कारण शुद्ध ज्ञान ही तीन रूपों और तीन नामोंके द्वारा व्यवहृत होता है। व्यवहारमें ही द्वैत-त्रैत हैं, परमार्थमें नहीं। इन्हींकी निवृत्तिके लिए व्यावहारिक अद्वैताकारवृत्तिमें ज्ञान शब्दका प्रयोग होता है। लोक-व्यवहारमें ऐसा कोई ज्ञान नहीं हो सकता। जिसका कोई-न-कोई विषय न हो और कोई-न-कोई अभिमानी न हो। यद्यपि तत्त्वदृष्टिसे मिश्रदशामें विद्यमान ज्ञान भी शुद्ध ही है, तथापि अज्ञानकी निवृत्ति हुए बिना द्वैतका मिथ्यात्व नहीं होता और उसकी केवलता आवृत रहती है। अज्ञानदशामें भासमान यह त्रिपुटी ही ज्ञानमें आरोपित अशुद्धि है। इस अशुद्धिके निराकरणके लिए ज्ञानके शुद्ध स्वरूपका निरूपण आवश्यक है। वस्तुतः ज्ञान ज्ञेय-सापेक्ष नहीं है। ज्ञान ज्ञेयके अभावको भी प्रकाशित करता है। अभाव अधिष्ठानसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है। अधिष्ठानके अज्ञानपर्यन्त ही उसकी भिन्नता रहती है। ज्ञेय और ज्ञाता सापेक्ष हैं; क्योंकि जब कोई ज्ञेय होगा तब उसका कोई-न-कोई ज्ञाता भी होगा। ज्ञान ज्ञातृ-सापेक्ष नहीं है। ज्ञान ज्ञातृत्वके अभावका भी प्रकाशक है। ज्ञान और ज्ञान भी सापेक्ष नहीं हैं, क्योंकि ज्ञान

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

तो एक ही है। इसलिए ज्ञेयत्व और ज्ञेयत्वाभाव, ज्ञातृत्व और ज्ञातृत्वाभाव—इन सबसे अपरिच्छिन्न, इनमें परिपूर्ण इनका अधिष्ठान और इनका प्रकाशक जो स्वयंप्रकाश ज्ञान है, वह किसीके प्रति सापेक्ष नहीं है। वह भेदमात्रका प्रकाशक अधिष्ठान है; भले ही वह भेद दैशिक-कालिक, सजातीय-विजातीय, स्वगत वस्तु-सम्बन्धी अथवा विशेष ज्ञान या अज्ञानका हो। इसलिए ज्ञानका शुद्ध स्वरूप ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित ही है। यहाँ 'ज्ञेय' शब्दका अर्थ दृश्यमात्र है और 'ज्ञाता' शब्दका अर्थ जीव और ईश्वर दोनों हैं; इसलिए जगत्, जीव और ईश्वरके विभागसे रहित, अपने लिए किसी दूसरे प्रकाश अथवा अधिष्ठानसे शून्य, असत् द्वैत्का प्रकाशक अतएव प्रकाशकत्वहीन प्रकाश ही अद्वितीय ब्रह्म है। यह अज्ञान-सापेक्ष भी नहीं है, क्योंकि यह उसका भी प्रकाशक ही है। अज्ञान अनिर्वचनीय है। वह परमार्थ दृष्टिसे सत् और व्यवहार दृष्टिसे असत् नहीं कहा जा सकता। अधिष्ठानमें आवरकरूपसे वह कल्पित है। कल्पित पदार्थसे स्वयंप्रकाश ज्ञानमें सापेक्षता नहीं आ सकती। सापेक्ष पदार्थ मिथ्या होता है और निरपेक्ष सत्य। यही निरपेक्ष सत्य ब्रह्म है तथा यही ब्रह्म उपनिषदोंमें 'प्रज्ञान' शब्दसे कहा गया है।

अब इस बातको और सरल रीतिसे समझनेका प्रयत्न करें। जैसे हमारे हाथमें यह माला है। माला ज्ञेय है, नेत्र इसके ज्ञानका करण है, और नेत्रवाला 'मैं' इसका ज्ञाता है। वस्तुतः इस परिच्छिन्न ज्ञाताका जो 'अधिष्ठान चेतन है, वही ज्ञेयका भी है। नेत्रवृत्तिका भी अधिष्ठान वही चेतन है। इसलिए अपरिच्छिन्नताका ग्रहण न होनेके कारण वह तीन रूपोंमें भास रहा है। अपरिच्छिन्नताका बोध होनेपर ज्ञाता,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ज्ञान और ज्ञेय—तीनोंकी आभासमात्रता नष्ट हो जाती है। इसलिए अधिष्ठान चेतनरूप प्रज्ञान सत्य है और परिच्छिन्न ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयका भेदभाव अध्यस्त, मिथ्या एवं प्रतीतिमात्र है। यह जो माला, मोसम्बी, घड़ी, पुस्तक अलग-अलग भास रहे हैं, इनके ज्ञानके करण नेत्र, त्वचा, रसना आदि अलग-अलग भास रहे हैं और भिन्न-भिन्न करणोंके अभिमानीके रूपमें विराजमान ज्ञाता पुरुष अलग-अलग भास रहे हैं—यह सब अद्वितीय प्रज्ञानब्रह्मका ही विवर्त है। विषय, करण अथवा विषयीके अलगावसे भासक चेतनका जो कि भानमात्र ही है, टुकड़े-टुकड़े हो जाना अविचारसिद्ध है। प्रज्ञानकी अखण्डताको न जानना अज्ञान है। अपनेको और विषयोंको खण्ड-खण्ड जानना भ्रान्ति है। इस भ्रान्तिके निराकरणके लिए प्रज्ञान पदार्थका शोधन उपयोगी है।

प्रज्ञानब्रह्ममें पृथक्-पृथक् भासमान त्रिपुटियोंको समझानेके लिए सूर्यकी किरणोंकी उपमा देना उपयुक्त नहीं है; क्योंकि यह तो एक परिपूर्ण पदार्थ है और सूर्य परिच्छिन्न। सूर्य एक स्थानमें रहता है, दूसरेमें नहीं। इसलिए वह जहाँ नहीं रहता है, वहाँ अपनी किरणें भेजता है। किसी कालमें सूर्य दीखता है, किसी कालमें नहीं। अन्यत्र अन्धकारके रूपमें उसका विरोधी भी विद्यमान है। उसके प्रकाश्य स्थावर-जंगम भी विद्यमान हैं। ऐसी स्थितिमें सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रज्ञानब्रह्मकी किरणें नहीं हो सकतीं, जो देश, कालमें गतिशील होकर दूसरे पदार्थका स्पर्श करें। तब ये त्रिपुटियाँ क्या हैं? निश्चितरूपसे ये चिदाभास हैं। प्रकाशक चेतन प्रकाशनके लिए भिन्न-प्रकाश्य न होनेके कारण और अपनी अपरिच्छिन्नता एवं चेतनताके प्रकाशन योग्य न होनेके कारण

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अपने आपको ही अपने स्वरूपसे विपरीत रूपमें प्रकाशित कर रहा है। जैसे आकाशकी अपरिमेयता जब नेत्र द्वारा प्रकाशित नहीं हो पाती, तब नीलिमाके रूपमें—निराकारताके विपरीत साकारताके रूपमें भासने लगती है। इसी प्रकारका अपना प्रत्यगात्मा ही अविषय होनेके कारण पराक् विषयके रूपमें भास रहा है। चेतन जड़के रूपमें, अविनाशी विनाशीके रूपमें, पूर्ण परिच्छिन्नके रूपमें, अद्वितीय द्वैतके रूपमें, स्व अन्यके रूपमें, भासनेका एकमात्र कारण यही है कि स्वयं प्रज्ञान प्रज्ञानका विषय नहीं है। जो भी प्रज्ञानको विषय बनानेका प्रयत्न करेगा, वह प्रज्ञानको जड़ अथवा परिच्छिन्न-रूपमें ही विषय करेगा। इसलिए वह प्रज्ञान न होकर प्रज्ञानका विवर्त ही होगा। अतः श्रुति प्रज्ञानका शोधन करके उसको अन्यके रूपमें नहीं, शोधक जिज्ञासुके स्वरूपके रूपमें ही उपदेश करती है कि तुम्हीं प्रज्ञान ब्रह्म हो। इसीसे किसी भी धर्म, उपासना अथवा योगके फलरूपमें या किसी भी करणके विषयरूपमें या स्वयं अपने ही भास्यरूपमें प्रज्ञानका साक्षात्कार नहीं हो सकता। सभी साधन अपने-अपने व्यावर्त्य-की व्यावृत्ति करके कृतार्थ हो जाते हैं। यहाँतक कि महा-वाक्यजन्य ज्ञान भी अज्ञानकी निवृत्तिके साथ ही साथ स्वयं निवृत्त अथवा बाधित हो जाता है और पूर्ववत् प्रज्ञान-ही-प्रज्ञान शेष रहता है।

प्रज्ञानमें व्याप्य-व्यापकभाव भी कल्पित रीतिसे ही है। तेजोबिन्दु श्रुतिने स्पष्टरूपसे कहा है—**'व्याप्यव्यापकता मिथ्या'**। इसको समझनेके लिए दृष्टान्त लीजिये—जैसे भूत, भविष्य, वर्तमान व्याप्य हैं, और काल व्यापक। कितनी उपहासास्पद बात है कि जब कालसे भिन्न भूत, भविष्य, वर्तमान नामका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कोई पदार्थ ही नहीं है, तब कौन किसमें व्याप्त होगा ? वस्तुतः विषयनिष्ठ परिणामको देखकर ही, क्रमको स्वीकृति देकर कालमें त्रित्वकी कल्पना की गयी है। इस त्रित्वके अधिष्ठान कालको अथवा प्रकाशक चेतनको इस त्रित्वका कुछ भी पता नहीं है। यह मनुष्यकी बुद्धिका विलास है। इस बुद्धि-विलासको ही पारिभाषिक शब्दोंमें अध्यास कहते हैं। अब दूसरा दृष्टान्त लीजिये—विभागशून्य दिक्तत्त्वमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण या ऊपर, नीचेका विभाग सर्वथा कल्पित है। दिक्तत्त्वकी कल्पनासे उपहित चैतन्य अथवा उसके अधिष्ठानभूत सत्में दिग्विभाग ही अनुपपन्न है। फिर भी विषयनिष्ठ विभाग अर्थात् घट-पटादि पदार्थोंकी लंबाई, चौड़ाई, गोलाई, बाहर-भीतर आदिको सारी कल्पनाएँ दिक्तत्त्वके सिर मढ़ी जाती हैं। यह अन्यका अन्यपर आरोप है। क्या दिक्तत्त्वका पूर्व-पश्चिम, बाहर-भीतर आदिके साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है ? राम कहो ! अपने स्वरूपके साथ किसी वस्तुका कोई सम्बन्ध नहीं हुआ करता, तादात्म्य भी नहीं। पूर्णका किसके साथ तादात्म्य हो ? अब तीसरा दृष्टान्त लीजिये—एक अद्वितीय अखण्ड सत्तामें आकाशादिका विभाग न कालमूलक है, क्योंकि परिणाम नहीं है; न गतिमूलक है, क्योंकि क्रिया और देश नहीं हैं; और न तो स्वभावमूलक है, क्योंकि किसी भिन्न-से-भिन्न स्वभावका निरूपण ही सम्भव नहीं। नाम-रूपमूलक भी नहीं है, क्योंकि वे तो प्रमाण-प्रमेयके व्यवहार-कालमें ही होते हैं। तब असलमें कालमें वर्तमानादि विभागके समान और देशमें पूर्वादि विभागके समान ही मूलभूत सत्तामें पञ्चभूत और उसमें कल्पित नाम-रूप सर्वथा ही मिथ्या हैं। इसी बातको समझानेके लिए श्रुति, शास्त्र एवं महात्मागण स्वप्न तथा रज्जु-सर्पादिका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दृष्टान्त देते हैं। त्वं-पदार्थशोधनमें स्वप्नका दृष्टान्त है, तत्-पदार्थशोधनमें रज्जु-सर्पका दृष्टान्त है और तत्त्वत: ऐक्यके बोधनमें कोई भी दृष्टान्त नहीं है। इसलिए प्रज्ञानब्रह्मकी व्यापकता समझानेके लिए प्रत्यक् चैतन्यकी दृष्टिसे यह कहना उचित ही है कि स्वप्नके पदार्थ उस देश और कालमें भास रहे हैं, जब और जहाँ वे सर्वथा असत् हैं। इसी प्रकार प्रज्ञानब्रह्ममें दृश्यमान प्रपञ्च सर्वथा मिथ्या है। साथ ही जैसे रज्जु देशमें अपनी प्रतीतिके कालमें ही प्रतीयमान सर्प मिथ्या है, इसी प्रकार तत्पदार्थरूप अखण्ड चेतन सत्तामें यह दृश्यमान प्रपञ्च प्रतीति-समकाल ही मिथ्या है। दृश्यमान प्रपञ्चका मिथ्यात्व निश्चय हो जानेपर प्रत्यक् चैतन्यरूप आत्मा और अधिष्ठान चैतन्यरूप परमात्मामें भेद करनेवाली कोई भी वस्तु नहीं रहती। वस्तुत: भेद ही प्रपञ्च है और यह अपने स्वरूपभूत प्रज्ञानब्रह्ममें बिना हुए ही भास रहा है। प्रज्ञानब्रह्ममें व्यापकता और व्याप्यता दोनों व्यवहारकी दृष्टिसे कल्पित हैं, परमार्थत: व्याप्तिमात्र ही है।

वेदान्तविचारमें अन्यमें अन्यकी व्याप्तिको व्यापकता नहीं कहते। लोहेमें अग्निकी व्यापकता अथवा दूधमें घीकी व्यापकता—ये सब दृष्टान्त वास्तविक व्यापकताके नहीं हैं; क्योंकि इनकी व्यापकता कालपरिच्छेद्य अथवा क्रियापरिच्छेद्य है। वास्तविक व्यापकता तो उपादान कारणकी अपने कार्यमें उपस्थिति है। कार्य नष्ट होनेपर जिसमें मिल जाता है अर्थात् कार्य जिस धातुसे बना है, कार्यका आकार जिसमें गढ़ा गया है, कार्यमें उसके वजनके रूपमें जो उपस्थित है, उसीको उपादान कारण कहते हैं—जैसे घटमें मृत्तिका, तरङ्गमें जल, लपटमें अग्नि, प्राणमें वायु, घटाकाशमें महाकाश, स्वप्नमें स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टि। घट-मृत्तिकाके

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

उदाहरणमें भी केवल मृत्तिका ही घटका उपादान नहीं है, बल्कि पञ्चभूत ही उसके उपादान हैं। इसलिए घटके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—सबमें पञ्चभूतोंकी उपस्थिति है। घट पञ्चभूतोंसे भिन्न नहीं है। घट फूट जानेपर भी पञ्चभूत रहता है। इसी तरह तरङ्ग, लपट आदिके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिए। स्वप्न दृष्टिकी उपादानताका और रज्जु-सर्प अधिष्ठानके अज्ञानसे होनेवाले कार्यके दृष्टान्त हैं। वे भी अपने उपादानसे भिन्न नहीं होते। प्रज्ञानब्रह्मकी व्यापकता समझानेके लिए इन सभी दृष्टान्तोंके उपयोगी होनेपर भी वस्तुतः उसकी व्यापकता ठीक-ठीक नहीं समझायी जा सकती; क्योंकि ये सब दृष्टान्त दृश्य अथवा जड़से सम्बद्ध हैं; प्रज्ञानब्रह्म चेतन है। जहाँ भी चेतन उपादान कारण होता है; वहाँ वह वस्तुतः कार्य-कारणके भेदसे रहित ही होता है।

इसलिए चेतनकी व्यापकता चेतनसे भिन्न अन्य पदार्थका न होना अर्थात् उसकी पूर्णता ही है।

कार्य-कारणरूप व्याप्य-व्यापकभाव दृश्यमें ही होता है, उसके प्रकाशक एवं अधिष्ठान चेतनमें नहीं। इसलिए दैशिक परिमाण, कालिक परिणाम और वैषयिक परिणममानता—तीनोंका सम्बन्ध प्रज्ञानब्रह्मके साथ नहीं जोड़ा जा सकता। देशाभाव, कालाभाव और कार्यकारणाभावके अधिष्ठान प्रकाशक प्रज्ञानब्रह्ममें; प्रज्ञानब्रह्मसे प्रकाशित देश, काल एवं विषय अधिष्ठाननिष्ठात्यन्ताभावके प्रतियोगी होनेके कारण मिथ्या हैं। दृश्यत्व, विकारित्व परिच्छिन्नत्वके कारण भी वे स्वतन्त्र, अविनाशी तथा परिपूर्ण नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें प्रज्ञानब्रह्मकी उपलब्धिके लिए कब, कहाँ, किस रूपमें और किस रीतिसे अनुसन्धान करना चाहिए ?

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आश्चर्य है कि प्रज्ञानब्रह्मको ढूँढ़नेके लिए हम किसी समय, अवस्था एवं परिस्थितिकी प्रतीक्षा अथवा अपेक्षा करते हैं; क्योंकि जब यह अविनाशी हो, कालकी कोई कला इससे खाली नहीं है। भूत, भविष्य, वर्तमानरूपमें कल्पित त्रित्वसे विलक्षण होकर भी वह इसमें परिपूर्ण है। इसीसे यह त्रित्व प्रकाशित है। अपनी मृत्यु, परिवर्तन अभाव एवं जन्मकी कल्पना भी यह अपनेमें नहीं कर सकता; क्योंकि उनका साक्षी और प्रकाशक है। तब इसी क्षण-क्षणके अधिष्ठान और प्रकाशकके रूपमें उपलब्धि क्यों नहीं हो रही है ?

आश्चर्य है कि वह विषयनिष्ठ परिमाणमूलक देशकी कल्पना-जल्पनासे अल्प मात्रामें भी संस्पृष्ट न होनेपर भी अन्तर्देश, बहिर्देश, अन्तराल देशके त्रित्वसे सर्वथा विनिर्मुक्त होनेपर भी, उस त्रित्वकी कल्पनाका अधिष्ठान एवं प्रकाशक होनेपर भी, अन्तर्मुखता, बहिर्मुखता आदि दैशिक अवस्थाओं, परिस्थितियों तथा गमनागमन, अणुत्व, विभुत्व, मध्यमपरिमाणत्व आदिसे सर्वथा रहित होनेपर भी इसी समय, इसी देशमें समय और देशकी परिच्छिन्नताके अधिष्ठान एवं प्रकाशकरूपसे क्यों नहीं उपलब्ध हो रहा है, जब कि वह अपनेमें कभी अपूर्णता, परिच्छिन्नता आदिरूप परिमाणको आरोपित ही नहीं कर सकता; क्योंकि वह देशकी भावाभावकी कल्पनाका साक्षी चिन्मात्र वस्तु है। उस उपलब्धिस्वरूप परिपूर्णकी उपलब्धिके लिए अन्तर्देशके निभृततम प्रदेशमें प्रवेशकी प्रतीक्षा और अपेक्षा क्यों है ? इसी क्षणमें उसका समीक्षण एवं निरीक्षण क्यों नहीं होता ?

आश्चर्य है कि इसी देशमें, इसी समय जो भी आकार, विकार, प्रकार, संस्कार अनुभवके विषय हो रहे हैं, वे सब-के-सब अपने विवर्ती उपादान चेतनमें उसीके द्वारा प्रकाशित

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

होनेपर भी और तत्त्वत: उससे अभिन्न होनेपर भी क्यों उससे भिन्न रूपसे बुद्धिके विषय हो रहे हैं, जब कि वह अविनाशी, परिपूर्ण, अद्वितीय चेतन सत्ता देश-कालसे रहित सर्वके रूपमें भास रही है। जिसने कभी अपनेको विषय-विषयीके भेदसे युक्त अनुभव नहीं किया; क्योंकि विषय और विषयी दोनों ही भिन्न रूपसे प्रतीत होनेपर भी वस्तुत: भिन्न नहीं हैं, ऐसी वस्तुस्थितिमें जब कि कोई अन्य है ही नहीं, उसकी उपलब्धिके लिए प्रमाण-प्रमेयरूप व्यवहारकी क्या आवश्यकता है? यदि वह घटादिके समान विषय होता तो प्रत्यक्षकी, जगत्कर्ता ईश्वरके समान परोक्ष होता तो अनुमानकी, उसके सदृश्य कोई और होता तो उपमानकी, अज्ञातरूपसे अन्य होता तो आप्त-वचनकी अपेक्षा होती। सुख-दु:ख आदि मानस-आभासोंके समान होता तो साक्षिभास्यता होती। परन्तु इस सर्वाधिष्ठान सर्वावभासक, स्वयंप्रकाश, प्रज्ञानब्रह्मकी उपलब्धिके लिए किस करणकी अपेक्षा है या कौन-सा नवीन करण उत्पन्न करना है जब कि वह कभी किसी वस्तुको अपनेसे भिन्न अनुभव करता ही नहीं और किसीके अनुभवका विषय होता ही नहीं।

सब आश्चर्योंमें बड़ा आश्चर्य तो यह है कि हम प्रज्ञानब्रह्मको समाधि आदि किसी कालविशेषमें, ब्रह्मलोक आदि किसी देशविशेषमें और बुद्धिके विषय किसी आकारविशेषमें प्राप्त करना चाहते हैं। उत्क्रान्ति और गतिमें देश, चित्तके प्रतिलोम परिणाममें काल और तदाकारवृत्तिमें विषयविशेषका अति-क्रमण, उल्लङ्घन अथवा बाध नहीं हो पाता, इसलिए प्रज्ञान-ब्रह्मकी उपलब्धिमें ये सारी प्रणालियाँ साक्षात् साधन नहीं बन सकतीं। जैसा कि पहले प्रज्ञानब्रह्मका निरूपण किया गया है, उसकी उपलब्धिके लिए शोधित अहमर्थकी उपलब्धि—प्रणाली

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ही सर्वोत्तम है; क्योंकि इसमें कालधर्म-मृत्यु, परिवर्तन आदिसे, देशधर्म आन्तरबाह्य आदिसे और विषयधर्म दृश्यता आदिसे विलक्षणता स्पष्टरूपसे प्रतिभात होती है। कोई भी अपने अभाव, जड़ता और अप्रियताका अनुभव नहीं कर सकता। इसलिए सुखस्वरूप प्रज्ञानब्रह्मकी उपलब्धिके लिए दैशिक, कालिक एवं वैषयिक आकारोंमें सुखकल्पना एवं सुखभावना करनेकी अपेक्षा प्रज्ञानस्वरूप आत्माका अनुसन्धान ही कर्त्तव्य है।

यह शोधित अहमर्थ आत्मा क्या है? इस अनुसन्धानके लिए अपने 'अहं' पदके लौकिक प्रयोग और उपयोगपर ध्यान देना चाहिए। अर्थात् जिस वस्तुके लिए हम 'मैं' शब्दका व्यवहार करते हैं, वह वस्तु क्या है? इसपर हमको विचार करना आवश्यक है। जहाँ हम हैं, जब हम हैं, जो हम हैं वहींसे हमारी खोज प्रारम्भ होगी, तब हम लक्ष्यको प्राप्त कर सकेंगे। इसलिए स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरमें, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-अवस्थामें, तत्तद् दृश्य परिस्थितियोंके अभिमानीके रूपमें, जिस-जिसमें हम 'मैं' 'मैं'—ऐसा व्यवहार करते हैं, उस-उस वस्तुकी परीक्षा करनी चाहिए कि तत्त्वतः वह 'मैं' है या नहीं। यदि 'मैं' शब्दका प्रयोग अशोधित अर्थमें होगा तो वह अवश्य ही प्रत्यक्ष 'यह'के लिए अथवा परोक्ष 'वह'के लिए होगा। निश्चयरूपसे 'मैं' पदका यह प्रयोग अशुद्ध अर्थमें होगा। और तब तो हम अपनी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंको भी नहीं पहचान सकेंगे? उनसे विलक्षण जो आत्मस्वरूप है; उसकी तो कथा ही न्यारी है। इससे पहले परिच्छिन्न पञ्चकोशका विवेक करना पड़ता है। तब एक शरीरकी जाग्रत् अवस्था अपनी जाग्रत् अवस्था नहीं रह जाती, बल्कि एक पग पीछे हटकर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हम अपनेको जाग्रत् अवस्थाके अभिमानीके रूपमें प्राप्त करते हैं। इसी अवस्था-विवेकसे वेदान्तका विचार प्रारम्भ होता है और हम अपने तुरीय-स्वरूप प्रज्ञान-ब्रह्मको अपने स्वरूपके रूपमें जानकर अविद्या और अविद्याके कार्यसे मुक्त हो जाते हैं। इसलिए अब इस अवस्थाके क्रमसे ही विचार करते हैं। इस समय जब हम यहाँ मनुष्यरूपमें बैठकर 'मैं' पदके अर्थका शोधन, अनुसन्धान अथवा खोज करने जा रहे हैं, स्थूल शरीरमें स्थित अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके द्वारा व्यवहार कर रहे हैं, यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि यह जाग्रत् अवस्था है। इस अवस्थामें मनुष्य-व्यक्ति 'मैं', 'मैं' पदका प्रयोग इस शरीरके लिए करता रहता है। मोटा-दुबला, काला-गोरा, लम्बा-नाटा इत्यादि शरीरके अनेक गुणधर्मोंको अपनेमें आरोपित करता है और अपनेको स्थूल शरीर मानता है। यही पुरुष शरीरमें स्थित कर्मेन्द्रियोंके द्वारा किये हुए कर्मको अपना किया हुआ मानकर, मैं पाप-पुण्यका कर्ता हूँ, ऐसा अभिमान कर लेता है। करनेवाला, चलनेवाला, बोलनेवाला मैं हूँ, यही इस अभिमानका स्वरूप है। जब यह अपनेको ज्ञानेन्द्रियवाला मानता है तब मैं देखता हूँ, सुनता हूँ, स्वाद लेता हूँ इत्यादि अभिमान कर बैठता है और अपनेको ज्ञाता, भोक्ता मान बैठता है। अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके द्वारा सम्पन्न कर्म और ज्ञानको अपने आपमें थोपकर और उसके फल अथवा प्रतिफलके साथ अपनेको एककर स्वतः सिद्ध होनेपर भी यह अपनेको फलरूपमें सुखी अथवा दुःखी समझने लगता है। कर्म और ज्ञानके अनुसार संस्कार बनते हैं। संस्कारके अनुसार संकल्प उठते हैं और फिर संकल्पके अनुसार कर्म होते हैं। यह चक्र जीवन भर तो चलता ही है, जन्म-पर-जन्म और मृत्यु-पर-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मृत्युका भी कारण बनता है। यदि यह स्थिति वास्तविक हो तो यह कर्ता, भोक्ता जीव सर्वदा संसारी बना रहेगा। और इस जन्म-मरणके चक्रसे कभी मुक्त नहीं हो सकेगा। इसी जन्म-मरणके प्रवाहको ही संसार कहते हैं और इसमें पड़े हुए 'मैं'को संसारी जीव। अब यह विचार करना है कि कर्मेन्द्रियोंको उपाधिसे कर्ता, फलवृत्तिकी उपाधिसे भोक्ता और जन्म-मरणरूप उपाधिकी कल्पनासे संसारी। यह जीव वस्तुतः है क्या ? यदि यह तत्त्वतः परिच्छिन्न ही होता तब तो कर्म, विशेष ज्ञान, सुख-दुःख आदि संसारके प्रवाहमें इसका रचपच जाना एक सहज बात होती, और मुक्त होनेके लिए प्रयत्न करना भी व्यर्थ होता। परन्तु यह परिच्छिन्नता ही तो बिना खोज बीनके, बिना किसी अनुभवके अविचारित ही मान ली गयी है। इसलिए इस अन्धपरम्परासे प्राप्त मान्यता अथवा अविचारित अज्ञानमूलक स्वीकृतिको तत्त्वज्ञानके द्वारा निवृत्त करना आवश्यक है। तत्त्वज्ञान=ब्रह्मात्मैक्यज्ञानके अतिरिक्त इसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिए उसके सम्पादनका प्रयत्न करना चाहिए।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पवित्रताके प्रयोग

(१)

भगवन् ! कई बार अपमानका बड़ा कटु अनुभव होता है, लोग तरह-तरहसे अपमान कर देते हैं, क्या करूँ ?'

'जब तुम्हें अपमानका अनुभव होता है, तब तुम ऐसी भूमिमें उतर आये रहते हो, जहाँ अपमान तुम्हारा स्पर्श कर सकता है। तुम ऐसी भूमिमें—ऐसी स्थितिमें रहा करो, जहाँ अपमान-की पहुँच ही नहीं है।'

[मैं सोचने लगा, जब मुझे अपमानकी अनुभूति होती है, तब मैं कहाँ रहता हूँ ? अपमान होता ही किसका है ?

(i) मैं उस समय सम्मान या और किसी कामनाके पाशमें बद्ध रहता हूँ। उस समय मेरा निवास स्थान होता है—काम, राम नहीं।

(ii) मैं उस समय शरीर, मन और बुद्धि, इनके अभि-मानमें मत्त रहता हूँ या इनके विलासोंमें भूला रहता हूँ।

(iii) मैं अपने भगवान्को भूलकर, आत्माको भूलकर अहंकार या ममकारके अधीन रहता हूँ।

अपना अपमान स्वयं मैं ही करता हूँ, मुझे स्वयं अपनेको ही दण्ड देना चाहिए। दूसरोंके द्वारा हुआ अपमान मेरा स्पर्श नहीं कर सकता।]

'ठीक है गुरुदेव ! अपमान मेरा स्पर्श नहीं करता।'

'इतना ही नहीं बेटा ! अपमान तो तुम्हारी आत्म-ज्योतिको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जाग्रत् करनेवाला है। तुम्हारी विस्मृतिको नष्ट करके स्मृतिको ताजी बनानेवाला है। अपमान क्षोभका नहीं, प्रसादका जनक है। अपमान होते ही प्रसन्नतासे खिल उठना चाहिए कि 'मेरी स्मृति ताजी करनेके लिए साक्षात् भगवान्के दूत, नहीं-नहीं स्वयं भगवान् आये हैं। महान् सौभाग्य है—जीवनमें यह अपूर्व अवसर है।' 'ठीक है—गुरुदेव ! आपकी कृपा और आशीर्वचन सर्वदा मेरे साथ हैं।

(२)

मुझे तो कभी-कभी क्रोध आ जाता है प्रभो ! मैं दूसरोंके उद्वेगका कारण बन जाता हूँ।'

'दूसरोंके उद्वेगसे पहले अपने उद्वेगके कारण ! यह आग है—आग, पहले अपनी जन्मभूमिको जलाकर तब दूसरेको जलाती है।

[बात तो ऐसी ही है। पहले अपने ही कलेजेमें जलन होती है। चेहरा तमतमा उठता है। आँखें लाल हो जाती हैं। ऐसे शब्दोंको मुँहमें स्थान मिल जाता है—जिन्हें हम सुनना नहीं चाहते। ऐसे कृत्य हो जाते हैं; जिनकी स्मृति भी दुःखद है।

मैं क्रोध क्यों करता हूँ ?

अपनी क्रिया, कामना, कल्पना और विचारोंपर ठेस लगनेसे। और जब मैं दूसरोंके विपरीत आचरण कर बैठता हूँ तब ? तब तो मुझे अपनेपर क्रोध नहीं आता ! कैसा मोह है !!

अपना है ही क्या ?

क्रिया, सो तो भगवान्की इच्छासे, समष्टिके प्रवाहमें, प्राक्तन कर्मानुसार स्वयं हो रही है। अपने सिरपर कर्तृत्वका भार ? हरे राम, हरे राम !

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कामना और कल्पना, ना, ना, ऐसी कामनाएँ और कल्पनाएँ तो न जाने कितने लोगोंने की हैं। किसीकी पूर्ण रहीं, किसीकी अधूरी। इनका परिणाम अपने हाथमें नहीं। इनसे ममता करनेवाले, इन्हें अपने समझनेवाले मारे गये, मारे जाते हैं।'

विचार, विचार अपने हैं, यह तो सबसे उपहासास्पद बात है। ऐसे विचार अबतक न जाने कितनोंकी बुद्धिमें आये और गये। उनसे ममता यह विचार मेरी बुद्धिकी मौलिक देन है— मूर्खता है।

तब फिर मैं क्रोध क्यों करता हूँ? केवल अविचारसे, अज्ञानसे, मूर्खतासे। अपनेको जलानेके लिए—अपनेको ही उद्विग्न करनेके लिए।]

'ठीक है, महाराज! क्रोधसे पहले मैं ही उद्विग्न होता हूँ।'
'उद्विग्न होनेकी आवश्यकता नहीं। क्रोध आनेका आसार देखते ही प्रसन्नतासे फूल उठो, खिल-खिलाकर हँसो, तुम्हारी प्रसन्नताकी बाढ़में क्रोध बह जायगा और तुम्हारी अशान्ति आनन्दके रूपमें परिणत हो जायगी।'

'गुरुदेव! आपका प्रेम अनन्त है।'

(३)

'गुरुदेव! जब प्रलोभन सामने आता है तब एकाएक मैं पराजयके स्थानपर पहुँच जाता हूँ। पता ही नहीं चलता कि मैं कब कैसे कहाँ आगया।'

'परन्तु उन प्रलोभनोंकी सृष्टि कौन करता है? उन्हें सामने कौन लाता है? लोभ उन प्रलोभक वस्तुओंमें है या तुम्हारे अन्दर। वे जड़ वस्तुएँ तुम्हें पराजित करनेकी शक्ति कहाँसे प्राप्त करती हैं?'

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

[वास्तवमें दृश्य पदार्थों में सुन्दरता और रमणीयताका आरोप मन ही करता है। भावना ही उन्हें आकर्षक बनाती है। सौन्दर्यकी कल्पना देश, समय, व्यक्ति और रुचिके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती रहती है। मेरे मनने ऐसी वस्तुओंको सुन्दर मान रखा है; जो जीवको परमात्मासे विमुख बनानेवाली हैं। इच्छासे ही उन वस्तुओंके सान्निध्यकी अनुभूति होती है। लोभ मनमें ही रहता है, उन वस्तुओंमें नहीं। जिन वस्तुओंको देखकर बालक, वृद्ध, ज्ञानी, दूसरी जाति और देशके लोग आकृष्ट नहीं होते; उन्हींको देखकर मेरा मन आकृष्ट हो जाता है। इसलिए उनमें आकर्षण नहीं, मेरे मनमें ही उन्हें पानेकी ललक है। मनका अन्धापन ही पराजित करता है। वही विवश और अज्ञान बन जाता है। वही तन्मय होकर उन्हें प्रलोभक भी बनाता है।]

'हाँ भगवन् ! दोष तो सब अपना ही है। उन्हें स्वयं ही नष्ट करना चाहिए। परन्तु करूँ क्या, अपना किया तो कुछ होता नहीं।'

'करना क्या है ? न विषयों—प्रलोभनोंको नष्ट करना है और न तो मनको ही। विषय रहेंगे ही और मन भी रहेगा ही। केवल भावनाका परिवर्तन करना है। किसी भी सुन्दर वस्तुको देखकर उसमें भोग्य-भावना न हो। सब सुन्दर और मधुर वस्तुएँ इसलिए सामने आती हैं कि उनको देखकर सुन्दरतम एवं मधुरतम भगवान्‌की स्मृति हो। केवल उतनेसे ही सन्तुष्ट हो जाना, उनमें ही रम जाना तो महान् हानि है। उन्हें देखते ही अनन्त सौन्दर्य एवं अनन्त माधुर्यकी स्मृतिमें मस्त हो जाओ। उन वस्तुओंका सामने आना विक्षेप नहीं, प्रसाद है। प्रसाद भी ऐसा, जो साधारण नहीं, अनन्त शान्ति और अनन्त

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आनन्दका उद्गम है। तुम अपने मनको उस महात्माके मन-सा बना लो, जो एक वेश्याके आनेपर मातृस्नेहसे मुग्ध और समाधिमग्न हो गया था।'

'मैं आपके अनन्त दया-समुद्रमें डूब उतरा रहा हूँ।'

(४)

'भगवन्! अमुक व्यक्ति तो संन्यासी होकर संग्रह करते हैं, अमुक व्यक्ति गृहस्थ होकर संन्यासियोंकी निन्दा करते हैं, बड़ा क्षोभ होता है।'

नारायण, नारायण, तुम बड़ी भूलमें हो। कहाँ संन्यासी और कहाँ गृहस्थ! यह सब तुम्हारे मनकी कल्पना है। यह सब नारायणका नाटक है। वे ही कहीं संन्यासी बने हैं, कहीं गृहस्थ। संग्रह भी नाटक, निन्दा भी नाटक। तुम अपनी दृष्टि नटपर जमाये रखो। मस्त रहो। दूसरेकी कल्पना ही मत आने दो।

'श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे जब यह निश्चय हो चुका है कि सब कुछ परमात्मा ही है, तब यह भला है, यह बुरा है, इस प्रकारकी दृष्टि ही क्यों होती है? यह भला है इस प्रकारकी दृष्टि तो यथाकथञ्चित् क्षम्य भी है, परन्तु बुरेकी कल्पना तो सर्वथा विपर्यय है। यदि सर्वथा समत्व न रहे, वैषम्य हो ही जाय, तो अपनी दृष्टि भलेपर ही जानी चाहिए। परन्तु भले-बुरेकी भावना और सत्ताको दृढ़ करनेकी क्या आवश्यकता, उन्हें तो शिथिल करना चाहिए। यदि प्रतीत होता है भला-बुरा, तो यह लीलाविलास ही है, नाटक मात्र है, नाटकके भीम और दुर्योधन दोनों ही मनोरञ्जनके लिए हैं। नाटककी मृत्यु, रोग और उत्पीडन रसानुभूतिके लिए हैं। अद्भुत, रौद्र, भयानक और बीभत्स भी तो रस ही हैं, तब इनको देखकर क्षुब्ध होनेका क्या कारण है?'

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'हाँ भगवन् ! यह सब है तो नाटक ही ।'

'यह भी आवश्यक नहीं कि नाटकको नाटकके रूपमें स्मरण रखा ही जाय, नाटक देखते-देखते उसका नाटकत्व भूल जाना तो नाटककी अपूर्व सफलता और मनोहरताका चिह्न है। उस विस्मृतिमें भी यह निश्चय अडिग रहे कि यह नाटक है। जो अभिनय अपनेको मिले उसको पूर्ण करो और खूब सफलताके साथ। वैसे कठोर कर्तव्योंका भी पालन करो, भगवान् श्रीकृष्णके प्रति जिनका पालन भीष्मको करना पड़ा था। फिर भी एक दृश्य समाप्त होनेपर और बीचमें भी उस सत्यरूपसे प्रतीयमान नाटकका नाटकत्व तो ध्यानमें आ ही जाता है।'

'सत्य है प्रभो !, व्यावहारिक जगत् एक नाटक है और मैं उसका पात्र तथा द्रष्टा हूँ, भला-बुरा कुछ नहीं, सब लीला है। मैं आपकी कृपासे अनन्त शान्तिका भाजन हूँ।'

(५)

'प्रभो ! स्वादवृत्तिके कारण कभी-कभी बड़ा विक्षेप होता है। कई वस्तुओंके तो स्मरण मात्रसे ही जीभपर पानी आ जाता है। कितना कमजोर मन है !'

'इसी कमजोर मनसे तो काम निकालना है, बलवान् मन कहाँसे लाओगे ? प्रसादकी भावना करो; प्रसादका निश्चय करो, ऐसा न हो सके तो भगवान्को नैवेद्य लगाकर खाओ, भगवान्को ही खिलाओ। तुम्हारी यह जिह्वा-लोलुपता अथवा मनकी कमजोरी साधन बन जायेगी और अधिकाधिक भगवान्का स्मरण होने लगेगा। फिर तो यह 'भोजन'का रस 'भजन'का रस बन जायेगा।

मेरे गुरुदेवकी वाणी कितनी अद्भुत है। मैं जिस अवस्थामें हूँ—जहाँ हूँ, वहीं वे भगवान्का दर्शन करा देते हैं। वे कहते

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हैं—प्रसादकी भावना और निश्चय करनेको। यह सारा जगत्, जगत्‌की सारी वस्तुएँ भगवान्‌का प्रसाद ही तो हैं। वही एक मात्र भोक्ता है और सब भोग्य। सबका रस—वास्तवमें अपना रस—वे स्वयं अपने-आप ही ले रहे हैं। किसी भी वस्तुका रस भगवान्‌का रस है, ऐसा स्मरण ही साधन है। दूसरी वस्तु हो तब न ? वस्तु तो केवल भगवान् ही हैं। यदि भगवान् और प्रसादका विस्मरण हो गया है तो स्मरण कर लें, स्मरणमें सन्देह हो तो पुनः नैवेद्य लगा लें और यह भी न हो तो भगवान्‌को ही खिलायें। जब मैं स्वादिष्ट ग्रास उठाता हूँ, तब नन्हेंसे भगवान् अपनी हथेली फैला देते हैं और उन नन्हीं-नन्हीं लाल-लाल हथेलियोंपर—हृदयमें ही ग्रास लेकर जल्दीसे खा जाते हैं। बच्चे हैं न, खानेके लिए मचलते रहते हैं। इस प्रकार स्वादिष्ट वस्तुएँ ही खिलाना चाहिए। भाव ही सब कुछ है, जिसे वह प्राप्त है; उसे कभी विक्षेप नहीं होता। भाव 'कु'में भी 'सु'की सृष्टि कर लेता है। मैं प्रसादकी भावना कभी न छोड़ूँ।

'भगवन् ! वास्तवमें भगवान्‌का प्रसाद ही है सब। कहीं भी विक्षेपकी सम्भावना नहीं है।'

'बेटा, विक्षेपकी तो सत्ता ही नहीं है। उसका उद्‌गम है—अज्ञान, मोह या मूर्खता। उसपर तूने विजय प्राप्त की है। तुम 'प्रसाद'का अनुभव करते हो यही तुम्हारा सहज स्वरूप है।'

'प्रभो ! भगवान्‌का—आपका प्रसाद ऐसा ही है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ब्रह्मचर्य

१. जिस देश, जाति और वंशके लोग चाहते हों कि हमारी सन्तान-परम्परामें ब्रह्मचारी उत्पन्न हों, उन्हें ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारीका विशेष आदर करना चाहिए और स्वयं शास्त्रोक्त आश्रमोचित ब्रह्मचर्यके नियमोंका यथाविधि पालन करना चाहिए। वंशपरम्परा और माता-पिताके भावका ब्रह्मचर्यपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अनैतिक रीतिसे उत्पन्न सन्तानसे ब्रह्मचर्यकी आशा रखना उपहासास्पद है। यदि माता-पिताका संयोग केवल उद्दाम भोगलालसाकी तृप्तिके लिए ही होता है तो भावी सन्तान वासना-पूर्तिपरायण हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है? भावी शिशुके शरीरगत सारे ही उपादान माता-पिताके मन और धातुओंसे ही संघटित होते हैं। यदि मूलमें ही दोष रहा तो कार्य निर्दोष कैसे हो सकता है? इसलिए माता-पिता-को धर्मबुद्धिसे ऋतुकालमें शास्त्रोक्त रीतिसे संयोग करके सन्तानोत्पादन करना चाहिए। माता-पिताके मनमें आदर्श ब्रह्मचारी सन्तान ही उत्पन्न करनेका सङ्कल्प होना चाहिए। जबतक शिशु गर्भमें रहे, माता-पिताको वासनारहित जीवन व्यतीत करना चाहिए। माता-पिताके भाव-बीज ही सन्तानमें अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं।

२. जबतक शिशु माताका दूध पीता है, तबतक माताके शरीरसे और भावसे कामकी वृत्तिका स्पर्श न होना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि मनमें कामावेश होनेपर शरीरके प्रत्येक अवयव एवं

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परमाणुमें उसकी व्याप्ति हो जाती है। इससे बच्चोंके मनमें भोगसम्बन्धी संस्कार तो पड़ते ही हैं, स्नायुओंमें उत्तेजना भी होने लगती है। छोटे-छोटे बच्चोंके मस्तिष्क और शरीरके अवयव बहुत ही कोमल एवं स्निग्ध होते हैं। शैशवमें उनपर जैसी छाप पड़ जाती है, वही जीवन भर प्रकाशित होती रहती है। जो माता-पिता अपनी सन्तानको ब्रह्मचारी बनाना चाहते हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि जबतक वह दूध पीता रहे, तबतक अपनी वासनाको शान्त रक्खें।

३. माता-पिताको शिशुके सम्मुख ऐसी कोई चेष्टा कभी नहीं करनी चाहिए, जिसको देखकर उसके जीवनमें भी बुरी आदतें उतर आयें। खट्टा, चरपरा, चाट, मिठाई न तो स्वयं खाना चाहिए और न बच्चोंको ही खिलाना चाहिए। शरीरकी चरम धातु (वीर्य) रग-रगमें अनुस्यूत रहती है। बचपनमें भी उत्तेजक पदार्थोंके सेवनसे उसका पृथक्करण होने लगता है। इसीसे छोटे-छोटे बच्चोंको भी प्रमेह, धातुक्षय आदि हो जाते हैं। बचपनसे ही आहार-शुद्धि ब्रह्मचर्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है। आहार-शुद्धिके सम्बन्धमें चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिए :—

(अ) आहार स्वभावसे ही उत्तेजक न हो। मांस, शराब, प्याज, लहसुन आदि जन्मसे ही उत्तेजक हैं।

(आ) भोज्य पदार्थमें कोई ऐसी वस्तु न मिली हो, जिससे वह वीर्यक्षरणका हेतु बन जाय—जैसे अमचूर, राई, गरम मसाले, लाल मिर्च इत्यादि। धूम्रपान ब्रह्मचर्यका शत्रु है।

(इ) भोजनकी वस्तु रजस्वला एवं प्रबल कामवासनावाली स्त्रीके द्वारा छुई या बनायी हुई न हो। कुत्ते और गीध आदिकी दृष्टि भोजनपर नहीं पड़नी चाहिए। भोजनपर भावका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

बहुत प्रभाव पड़ता है। रोती हुई स्त्रीके हाथका भोजन करनेसे रोना पड़ता है।

(ई) भोज्य पदार्थपर अपना न्यायसंगत स्वत्व होना भी आवश्यक है। दूसरेका हक मनको बाहर खींचता है। गृहस्थको बिना परिश्रम अथवा बिना मूल्यका भोजन नहीं करना चाहिए। इससे विकारोंकी वृद्धि होकर गृहस्थोचित ब्रह्मचर्यका भङ्ग हो जाता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीका भिक्षापर न्यायोचित स्वत्व है; परन्तु यदि वे आश्रमोचित कर्मानुष्ठान न करें, केवल भिक्षाजीवी बन जायँ तो उनका पतन हो जाता है। ब्रह्मचारीके लिए श्रम अपेक्षित है, चाहे वह किसी भी आश्रममें क्यों न रहता हो। श्रमसे ही शुक्रका पाचन होता है।

४. जब बालक थोड़ा बड़ा हो जाय, तब उसे भोगमय वातावरणसे अलग रखना चाहिए। प्राचीनकालमें इसके लिए गुरुकुल अथवा ऋषिकुलकी प्रणाली थी। इससे अनेक लाभ हैं—

(१) अध्ययनकी निश्चिन्त सुविधा।

(२) आदर्श आचार्यसे आचरणसम्बन्धी व्यावहारिक शिक्षा।

(३) आचार्य एवं आश्रमकी सेवासे स्वार्थत्याग एवं सार्वजनिक हितका अभ्यास।

(४) एक विशेष परिवारकी ही मोह-ममतामें शिथिलता का होना।

(५) भोगमय जीवनसे पृथक् रहकर अपने लिए प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गमें-से कोई एक चुननेके लिए सन्तुलित बुद्धि द्वारा विचार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

(६) संग्रह-परिग्रहके आडम्बरके बिना भी सुखी रहनेकी आदत पड़ जानेसे अर्थासक्ति और भोगलिप्साकी निवृत्ति, जिससे भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार आदिमें स्वयं घृणा होना।

(७) शान्तचित्तसे आत्मस्वरूप एवं परमात्मस्वरूपका विवेचन होनेसे तत्त्वसाक्षात्कार होकर परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें स्वाभाविक स्थिति।

(८) विश्व, राष्ट्र, सम्प्रदाय, समाज, परिवार एवं व्यक्तिकी सेवाकी योग्यता प्राप्त होना।

५. माता-पिता एक पुत्रसे अधिक उत्पन्न न करें तो सर्वोत्तम है। यदि अधिक पुत्र उत्पन्न करना ही हो तो बालकको ब्रह्मचर्याश्रममें निश्चित रूपसे भेज दें, जिससे बालकके स्वाभाविक ब्रह्मचर्यके भावपर कोई ठेस न पहुँचे और वह आदर्श आचार्यकी शरणमें रहकर सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणोंको सीख सके और ज्ञानोपार्जन कर सके।

६. आचार्यका आदर्श होना परम आवश्यक है। वह भी ब्रह्मचारी हो तो सर्वोत्तम। यदि गृहस्थ हो तो अपनी स्त्रीको आश्रमसे सर्वथा पृथक् रक्खे। स्वयं सन्ध्या-वन्दन, बलिवैश्वदेव आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करे। सत्य, अहिंसा आदि नियमोंका पालन करे। स्वाध्यायशील और परिश्रमी हो। उद्धत वेष-भूषा धारण न करे। शौकीनी न करे। सादगीसे रहे। ब्रह्मचारियोंको अपने पुत्रके समान समझे। अपने आचरणके द्वारा उनके हृदय पर स्वार्थत्याग, विश्वसेवा, श्रद्धा, अभय आदि दैवी सम्पत्तिके भाव अङ्कित करे। आचार्यके गुण ही ब्रह्मचारीमें उतरते हैं। आचार्यको आलस्य, प्रमाद, परनिन्दा-आदि दोष भूलकर भी नहीं अपनाने चाहिए। काशीके एक विद्वान् आचार्य एक बार

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja ga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपने पुत्रके सामने सन्ध्या-वन्दनमें किञ्चित् प्रमाद कर बैठे थे, जिससे उनके पुत्रने सन्ध्या-वन्दन करना ही छोड़ दिया।

७. ब्रह्मचारियोंके जीवनकी आधार-शिला श्रद्धा और विश्वास ही है। बाल्यावस्थामें उनके विचार, ज्ञान और अनुभवकी मात्रा अत्यन्त स्वल्प होती है। इसलिए ब्रह्मचर्य-आश्रममें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे ब्रह्मचारियोंके अन्तःकरणमें शास्त्रके प्रति महत्त्व-बुद्धि, धर्ममें निष्ठा और ईश्वरमें विश्वासकी वृद्धि हो। प्राथमिक शिक्षामें खण्डन-मण्डनके ग्रन्थोंको स्थान नहीं देना चाहिए। एक समाजके प्रति राग और दूसरेके प्रति द्वेष उत्पन्न करनेवाली शिक्षा अनर्थकी जननी है। इसीसे व्यापक वैमनस्य, संघर्ष, कलह एवं गृहयुद्धोंकी उत्पत्ति होती है। शिक्षा सर्वतोमुखी होनी चाहिए। उसमें साधारण उठने-बैठने, खाने-पीने, बोलने आदिकी शिष्ट रीति बतानेके साथ-ही-साथ घरेलू काम-धन्धे, चिकित्सा, व्यापार आदिकी बातें भी होनी चाहिए। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शासन-प्रणाली, संविधान, देश-विदेशकी संस्कृति, अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध आदिका प्रशिक्षण भी आवश्यक है। पाठनकी रीति ऐसी होनी चाहिए, जिससे केवल किताबी ज्ञान न होकर रचनात्मक और अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त हो। कूपमण्डूकवत् सङ्कीर्ण प्रवृत्तियों और भावनाओंका अन्त कर देना चाहिए। यदि अन्तःकरणमें ईश्वर और धर्मपर विश्वासकी स्थापना नहीं की गयी तो संसारकी कोई भी शिक्षा मनुष्यको ईमानदार, चरित्रवान् बनानेमें सफल नहीं हो सकती। कोई भी शासन, विधान, पुलिस, सेना एवं अस्त्र-शस्त्र मनुष्यके हृदयको नहीं गढ़ सकता। श्रद्धा, भावना, विचार और आचारके द्वारा ही उसका निर्माण हो सकता है।

८. ब्रह्मचारियोंको अपने आचार्यके प्रति निश्छल, नम्र एवं

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अत्यन्त श्रद्धालु होना चाहिए। उनके सामने और परोक्षमें बड़ी सभ्यता, समझदारी, विनय और मर्यादासे वर्ताव करना चाहिए। आचार्यसे पीछे सोना और पहले उठना चाहिए। स्नान, सन्ध्या-वन्दन, हवन, व्यायाम और स्वाध्यायसे शरीर एवं बुद्धिका पोषण होता है। उपासनाके बिना चित्तमें एकाग्रता और सूक्ष्मता नहीं आती। आसनके अभ्यासके साथ-साथ थोड़ा प्राणायाम भी लाभकारी है। इससे शास्त्रका तात्पर्य ग्रहण करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारीको कब्ज कभी नहीं होने देना चाहिए। कब्जसे ही आलस्य, प्रमाद और आगे चलकर स्वप्नदोषकी सृष्टि होती है। पेटकी खराबीसे मनमें विकार आने लगते हैं। इसके लिए भोजनपर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है। अत्याहार और अनाहार दोनों ही कब्जके कारण बनते हैं। सात्त्विक भोजन भी मात्रासे अधिक लेनेपर विष हो जाता है। इसलिए भोजनमें मात्राका परिमित होना बहुत ही जरूरी है। आजके संसारमें भोजन न मिलनेसे उतने मनुष्य रुग्ण एवं कालकवलित नहीं होते; जितने अधिक भोजनके कारण होते हैं। अपनी उन्नति, अन्तर्मुखता और संयमका लेखा-जोखा चाहिए। जीवनको आत्मबल, उत्साह और आशासे पूर्ण कर देना चाहिए। ब्रह्मचारीका सङ्कल्प दृढ़ एवं अविचल हो।

९. ब्रह्मचर्याश्रमके सञ्चालकोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि ब्रह्मचारी भीतर कुछ और और बाहर कुछ और न होने पाये। ब्रह्मचारीके जो दोष-दुर्गुण निवृत्त करने हों, उनके पहले दोष-बुद्धि उदय करानी चाहिए और जो काम कराना हो उसके प्रति महत्त्व बुद्धि, जिससे उनकी वर्द्धिष्णु विचार-शक्ति पर कोई आघात न लगे। विशेष दबाव डालकर जो नियम पालन कराये जाते हैं, उनका प्रभाव प्रतिक्रियात्मक पड़ता है।

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ब्रह्मचारीकी बुद्धि ज्यों-ज्यों विकसित होती जाय, त्यों-त्यों उनके आचार सम्बन्धी विज्ञानमें वृद्धि होनी चाहिए। अन्यथा ब्रह्मचर्याश्रमसे निकलते ही वे एकाएक समस्त नियमोंको तोड़ डालते हैं और जिस जीवन-निर्माणके लिए उनसे तपस्या करायी जाती है, वह नहीं हो पाता। एक बात और ध्यानमें रखनेकी है। ब्रह्मचारियोंके द्वारा जो उनकी विद्या-बुद्धिके सार्वजनिक प्रदर्शन कराये जाते हैं, वे सच्चे हों। उनमें दम्भकी मात्रा बिलकुल नहीं होनी चाहिए। ब्रह्मचारी छात्रको जिस विषयका ज्ञान नहीं है, यदि वह दूसरेसे उधार लेकर, रटकर, नकल करके या अन्य किसी अनुचित रीतिसे जनसमाजमें उसका प्रदर्शन करता है; तो थोड़ी देरके लिए सञ्चालकों, आचार्यों एवं ब्रह्मचारियोंको तात्कालिक वाहवाही और प्रशंसा प्राप्त हो जाती है। कुछ आर्थिक लाभ होना भी सम्भव है; परन्तु इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव प्रतिकूल पड़ता है। झूठे अभिमान और दम्भसे बढ़कर कोई पतन नहीं है। अपनी कमजोरियोंको जानना, अज्ञानको पहचानना, सतत आत्मनिरीक्षण करना सबसे बड़ी शिक्षा है।

१०. अध्ययन-अध्यापनमें एक हदतक भाषा और व्याकरणका ज्ञान आवश्यक है; परन्तु वही सब कुछ नहीं है। वस्तुके ठोस ज्ञानपर ही मुख्य दृष्टि रखनी चाहिए। केवल 'गौ' शब्द, उसके धेनु, सुरभि, वृषभ आदि पर्याय एवं इन शब्दोंके भिन्न-भिन्न प्रयोगोंकी रीति जान लेना ही पर्याप्त नहीं। कोष, व्याकरण, साहित्य, यमक-अनुप्रास आदिकी जानकारी ठीक होनेपर भी यदि गायसे परिचय नहीं है तो सब व्यर्थ है। इसी प्रकार जिस विषयका अध्ययन हो, उसका क्रियात्मक, रचनात्मक, प्रयोगात्मक, व्यावहारिक अनुभव भी होना चाहिए।

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

किसीको झाडुओंके बहुतसे नाम और प्रकृतियाँ मालूम हों, परन्तु झाड़ू लगाना न आता हो तो उस ज्ञानका क्या महत्त्व है ? इसी प्रकार धर्म, ब्रह्म, प्रेम आदि पदार्थोंका साक्षात्कार होना चाहिए। केवल पदवाक्य और प्रमाणके ज्ञानसे ही अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेना चाहिए। सारे अध्ययन, अध्यापन, संयम, नियम, जप, तप, धारणा, ध्यान आदि साधन सत्य-वस्तुके साक्षात्कारके लिए हैं। यदि इसी जीवनमें सत्यका साक्षात्कार नहीं हो गया तो बहुत बड़ी भूल—जीवनका विनाश समझना चाहिए।

११. ब्रह्मचर्य-रक्षाके लिए छान्दोग्योपनिषद्में छः बातोंपर विशेष बल दिया गया है—

(१) इष्ट अर्थात् अग्निहोत्र, शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपस्या, वेदोंका स्वाध्याय, वेदोक्त आचरणका अनुष्ठान, अतिथिसेवा और बलिवैश्वदेव।

(२) यज्ञ अर्थात् देवाराधन, अपने हककी वस्तुओंको औरोंके प्रति वितरण, पञ्चभूतोंकी शुद्धि, समष्टिकी सेवा।

(३) **मौन**—मनमें वासनाओंका स्फुरण न होना, मनोराज्य न होना। आवश्यकतासे अधिक भाषण न करना।

(४) **अरण्यायन**—शान्त, एकान्त, पवित्र निर्जन वनमें वास करना।

(५) **सत्रायण**—सत्सङ्गमें निवास करना।

(६) **अनाशकायन**—भोजनके सम्बन्धमें एक निश्चित शैली रखना।

१२. शतपथ ब्राह्मणमें ब्रह्मचारीकी चार शक्तियोंका उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) अग्निके समान तेजस्विता।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(२) मृत्युके समान दोषों—दुर्गुणोंके मारणकी शक्तिका होना।

(३) आचार्यके समान दूसरोंको शिक्षा देनेकी शक्तिका विद्यमान होना।

(४) संसारके किसी भी स्थान, वस्तु, व्यक्ति आदिकी अपेक्षा रक्खे विना आत्माराम होकर रहना।

१३. गोपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों, धर्मसूत्रों, गृह्य-सूत्रों एवं मन्वादि धर्मसंहिताओंमें सर्वत्र ही ब्रह्मचारियोंके लिए नृत्य, वाद्य, सङ्गीत, नाट्य आदिका निषेध प्राप्त होता है। ललित कलाएँ अन्तस्तलकी सुषुप्त वासनाओंको धीरे-धीरे कुरेदती हैं और उन्हें उकसाती तथा भड़काती हैं। भगवद्विषयक ललित कलाएँ उतनी बाधक नहीं हैं। फिर भी ब्रह्मचारियोंको शृङ्गार सम्बन्धी अभिनय और भावभङ्गिमासे सर्वथा पृथक् रहना चाहिए। रासलीलाके श्रवण-श्रावणके द्वारा कामविजयकी प्रणाली भी शृङ्गार-रसाकृष्ट व्यक्तियोंके लिए ही है। ब्रह्मचारियोंके लिए वह हानिकारक है। ऐसी अवस्थामें नाटक, सिनेमा आदि विकारवर्धक एवं उद्दीपक प्रसङ्गोंसे पृथक् रहनेमें ही ब्रह्मचारियोंका कल्याण है।

१४. समावर्तन-संस्कारके पूर्व अपने स्वभाव, रुचि, महत्त्वाकांक्षा, योग्यता, स्वहित, परहित आदिका गम्भीर विवेचन कर लेना चाहिए। पूरी सच्चाईसे इस बातका अनुशीलन कर लेना चाहिए कि हम सांसारिक भोग्य पदार्थोंकी प्राप्तिसे सुखी होते हैं। हमें सुन्दर वस्त्र-आभूषण, भोजन, मान-प्रतिष्ठा, बड़ाई और धन आदिकी प्राप्तिसे सुख होता है अथवा इनके त्यागसे। यदि किञ्चित् भी लौकिक वासना अन्तःकरणमें शेष हो तो त्यागमय आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा धारण न करके निस्संकोच

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिए और तदनुकूल ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। गृहस्थोचित ब्रह्मचर्यमें निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिए—

(१) गृहस्थाश्रम भोग भोगनेके लिए नहीं है, अपितु भोगवासनाओंको नियन्त्रित करके उनका नाश करनेके लिए है। ब्रह्मचर्यमें जैसा शक्तिसञ्चय, ज्ञानका प्रकाश, तपस्याकी वृद्धि, लौकिक सुख एवं पारमार्थिक सुखकी प्राप्ति है, भोगमें उसका लक्षांश भी नहीं है। जैसे फोड़ा होनेपर उसकी मवाद निकलते समय एक प्रकारका सुख होता है, वैसे ही मनमें विकार या मन्थनकी पीड़ा होनेपर वीर्यपातसे एक प्रकारका हल्कापन अथवा आभासमात्र सुखका अनुभव होता है। जैसे भाँगका नशा उतर जानेपर सुस्ती, कमजोरी और उदासी मालूम पड़ती है, वैसे कामावेश शान्त हो जानेपर भी स्त्री-पुरुषका पारस्परिक सङ्ग कोई सुख, स्वाद, विलास नहीं है। यह एक प्रकारका रोग, विवशता, पराधीनता और दुःखका मूल है। इसका न होना ही अच्छा है। संयमपर दृष्टि रखते हुए ही भोग करना चाहिए।

(२) एक पुरुषका एक स्त्रीसे और एक स्त्रीका एक ही पुरुषसे संयोग होना चाहिए। मनमें विकार आजानेसे भी शील, संयम और व्रतका भङ्ग हो जाता है और इस प्रकार मनोवैज्ञानिक पतन हो जानेसे जीवन अनियमित, उच्छृङ्खल एवं अधोगामी हो जाता है।

(३) स्त्री-पुरुषके संयोगके सम्बन्धमें अवस्था, शक्ति, समय, स्थान आदिका भी ध्यान रखना चाहिए।

(४) व्यभिचारको प्रोत्साहन देनेवाली गर्भ-निरोधकी प्रणालियोंको कभी काममें नहीं लाना चाहिए। संयम अवश्य रखना चाहिए।

• • •

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0 In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(५) पति-पत्नीको अलग-अलग शयन करना चाहिए।

(६) सम्भव हो तो एक पुत्र उत्पन्न होनेपर इस शक्ति-क्षयकारिणी क्रियासे विरत हो जाना चाहिए और वैराग्य हो तो वानप्रस्थ अथवा संन्यास-आश्रममें प्रवेश करना चाहिए अथवा विश्वसेवाके कार्यमें लग जाना चाहिए। यह विश्व ही परमात्माका मूर्तरूप है।

(७) गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी यथाशक्ति स्वार्थत्याग करके विश्वसेवाके आदर्शको पूर्ण करना चाहिए।

१५. आजीवन त्यागमय ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करना अथवा ब्रह्मचर्याश्रमके बाद संन्यासाश्रममें प्रवेश करना आपत्तिकी बात नहीं है; किन्तु इसके पूर्व अपने अधिकार (योग्यता और शक्ति)का भलीभाँति विचार कर लेना आवश्यक है। केवल तात्कालिक आकांक्षा, रुचि और आवेशसे प्रेरित होकर ऐसा करना बुद्धिमानीकी बात नहीं है। लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए पूर्ण निश्चय और वज्रकठोर दृढ़ताकी आवश्यकता है। जिसमें इन्द्रियदमन, मनपर विजय, तपस्या एवं द्वन्द्व-तितिक्षा एवं कष्टसहनमें ही सुख भाव है, वही त्यागमय जीवनका अधिकारी है। बिना वैराग्यकी तीव्र भावना हुए आजीवन ब्रह्मचर्यका संकल्प निष्फल ही नहीं है, पतनका हेतु भी है। ईश्वर, आचार्य, शास्त्र एवं आत्मदेवकी कृपाका संबल लेकर ही इस मार्गपर अग्रसर होना चाहिए।

१६. आजीवन ब्रह्मचारीके लिए सबसे पहली बात यह है कि वह अपनी एक निष्ठाका निर्णय, निश्चय कर ले। इसे चार निष्ठाओंमें-से अपने लिए कोई एक चुन लेना चाहिए—

(१) कर्म—यज्ञ-यागादि, वेदोक्त कर्मकाण्ड, अशिक्षा-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

निवारण, रोग-निवारण, स्वच्छताका प्रचार, लोगोंमें नैतिक जीवनकी ओर रुचि उत्पन्न करना।

(२) **उपासना**—गायत्री जप, नाम जप, देवाराधन, सङ्कीर्तन, कथा-श्रवण, भक्तिके विभिन्न अङ्गोंका अनुष्ठान।

(३) **योग**—आसन, प्राणायाम आदिके द्वारा चित्त-वृत्तियोंके निरोधका अभ्यास।

(४) **ज्ञान**—श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा आत्मसाक्षात्कारके लिए प्रयत्न।

इन चारोंमेंसे किसी एकको प्रधान और शेषको गौणरूपसे धारण करना चाहिए। सभी निष्ठाओंमें इन्द्रियसंयम, मनोनिरोध एवं सदाचारयुक्त मृदु व्यवहारकी अपेक्षा है। किसी एक निष्ठाको स्वीकार किये विना अकर्मण्यता—बेकारी आनेका डर रहता है, जिससे मनमें विकारोंके आजानेकी सभावना रहती है। निकम्मे आदमीका जीवन प्रमादका घर होता है।

१७. ब्रह्मचारीको कामविजयके साथ-ही-साथ अत्यन्त सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिसे अन्य दोषोंपर भी ध्यान रखना चाहिए। काम बड़ा मायावी है। वह तरह-तरहके रूप धारण करके आक्रमण करता है, जैसे—

(क) **मोह-ममता**—यह मेरा प्रिय व्यक्ति अथवा प्रिय वस्तु है, पहले इस प्रकार सम्बन्ध जोड़कर पीछे भोगबुद्धि उत्पन्न करा देता है।

(ख) **लोभ**—पहले साधनाकी सुविधा और आवश्यक सामग्रीके छलसे द्रव्य इकट्ठा कर लेता है और पीछे वासनापूर्तिके लिए उसका उपयोग करता है।

(ग) **क्रोध**—पहले अपने आलोचक अथवा निन्दकको अपने मार्गसे हटा देता है और फिर इच्छा-पूर्तिकी छूट दे देता है

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(घ) **मान-प्रतिष्ठा**—पहले लोगोंके चित्तपर अपनी धाक जमाकर फिर मनमानी कराता है।

(ङ) **मिथ्या अभिमान**—अब मेरा चित्त निर्विकार हो चुका है, मैं योगी हूँ, ज्ञानी हूँ, भक्त हूँ, सिद्ध हूँ—इस प्रकारकी अन्धता उत्पन्न करके फिर भोगके गड्ढेमें डाल देता है, इत्यादि।

कामके इन मायावी रूपोंसे बचनेके लिए सतत सावधानीकी आवश्यकता है। इसके लिए इन उपायोंपर चलना चाहिए—

(१) किसीसे विशेष हेल-मेल न बढ़ाना; सम्बन्धी एवं परिचितोंके देशमें न रहना और न आना-जाना।

(२) पैसे एवं वस्तुओंका संग्रह न करना।

(३) आलोचक एवं निन्दकोंको अपना हितैषी समझना और उनकी आलोचनाका आत्मनिरीक्षणमें सदुपयोग करना। कभी-कभी निन्दकोंके द्वारा अपने ऐसे छिपे दोषोंका पता चल जाता है, जिनका ज्ञान स्वयं साधकको भी नहीं रहता है।

(४) अपने ऊपर लोगोंकी विशेष श्रद्धा कभी न कराये। मान-प्रतिष्ठाका अत्यन्त निषेध भी न करे; क्योंकि वह निषेधसे ही बढ़ती है। जहाँतक हो सके स्वयं उससे बचना चाहिए।

(५) किसी प्रकारका अभिमान धारण न करे। अभिमान ही कामका आश्रय है। अभिमानके सहारे ही वह फलता-फूलता है। परिपूर्णतम परब्रह्म परमात्मामें द्वैत नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, फिर कौन किसका अभिमान करे?

१९. प्राकृत पदार्थोंके सेवनसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती है, विकृत पदार्थोंके सेवनसे नहीं; जैसे पीली एवं सोंधी, ठंडी मिट्टीका शरीरमें लेप करनेसे और गन्ध सूँघनेसे जितना लाभ होता है, तेल-फुलेल-इत्र आदिसे उसका शतांश भी नहीं। पेडू-पर ठंढी मिट्टीकी पट्टी बाँधनेसे स्वप्नदोष नहीं होता। गङ्गा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आदि नदी, समुद्र एवं वर्षाका जल भी पान-स्नानके द्वारा ब्रह्मचर्यके लिए हितकारी है, सोडावाटर, नल इत्यादिका नहीं। अग्नि एवं सूर्यका सेवन—उपस्थान, नमस्कार आदि वीर्यको पचाता है। हवन और सूर्योपस्थानका यह भी एक प्रयोजन है। बिजलीकी रोशनीसे ब्रह्मचर्यमें कोई सहायता नहीं मिलती। खुली हवा एवं अनाहत नाद जितने उपयोगी हैं, उनके सामने पंखेकी हवा और आहत शब्दकी कोई गिनती ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारीको कृत्रिम पदार्थोंसे दूर ही रहना चाहिए। फल, शाक, दूध, कच्चे और अंकुरित अन्न ब्रह्मचर्य रक्षामें बड़े सहायक हैं। घी, दही लाभकारी नहीं हैं। घीसे मेदोवृद्धि, अपच और पाचनयन्त्रोंपर भारका आधिक्य होता है। दहीकी अम्लता धातुको क्षीण करती है। जहाँतक हो सके स्वाभाविक, स्वच्छ और अन्तर्मुख करनेवाले प्रदेशमें रहना चाहिए और वैसी ही वस्तुओंका सेवन भी करना चाहिए।

१९. रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। रसना जो रस ग्रहण करती है, वही शुद्ध और पक्व होकर वीर्यके रूपमें परिणत होता है। यदि रसपर काबू नहीं है तो वीर्यपर भी नहीं रह सकता। कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियका ही पूरक औजार है। रसना यदि रस ग्रहण करेगी तो ठीक पाचन न होनेपर उसका क्षरण अनिवार्य है। इसलिए रसनाकी रसासक्तिपर कड़ी नजर रखनी चाहिए—

(१) भोजनमें स्वादपर दृष्टि नहीं रखना। केवल जीनेभरके लिए हितकारी वस्तुओंसे उदरपूर्तिमात्र कर लेना। शौकसे खट्टी, मीठी, चरपरी वस्तु नहीं खानी चाहिए। न स्वादके लिए ही खानी चाहिए।

(२) स्वयंपाकी हो तब तो नमक, मीठे, खट्टे, मसालेका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रयोग ही नहीं करना चाहिए। शुद्ध सात्त्विक एवं परिमित अल्प भोजन समयपर ही करना चाहिए। अनेक बार भोजन नहीं करना चाहिए।

(३) यदि किसी समुदाय या आश्रममें रहना हो तो जो कुछ वहाँ स्वाभाविक एवं अविरुद्ध भोजन बनता हो वही खाना चाहिए। अपनी व्यक्तिगत इच्छा प्रकट नहीं करनी चाहिए। अलगसे माँगकर, खरीदकर जिह्वा-तृप्ति नहीं करनी चाहिए।

(४) यदि भिक्षा करते हों तो जो विरुद्ध वस्तु भिक्षामें आये उसको त्याग दें; परन्तु अनुकूल वस्तु माँगें नहीं। बड़ोंकी अधीनता, श्रद्धा, सेवा, श्रम और व्यर्थ समय न खोना—यह ऐसे उपाय हैं जिनसे हम क्या खायँगे, इसपर ध्यान ही नहीं जाता।

(५) आवश्यक भोजन एक बार ही परोसवा लें; बार-बार न लें। ठंढे-गरमका विचार न करें। दूसरा क्या खा रहा है यह देखे बिना मौन होकर भोजन करें। सम्भव हो तो वस्तुओंकी और ग्रासोंकी गिनती निश्चित कर लें।

(६) भोजनके प्रारम्भमें भगवान्‌को भोग लगाना चाहिए। इससे स्वत.प्राप्त स्वादिष्ट भोजनके प्रति स्वाद-वासनाका दोष मिट जाता है।

(७) भोजनके पहले पाँच ग्रास प्राणोंको आहुतिके रूपमें देने चाहिए, 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा' इत्यादि। इससे 'मैं भोक्ता हूँ अथवा स्वाद ले रहा हूँ', यह भ्रान्ति छूट जाती है।

(८) 'मैं नहीं खा रहा हूँ, मेरे नाभिचक्रमें वैश्वानर अग्निके रूपमें बैठे हुए स्वयं भगवान् ही भोजन कर रहे हैं—इस भावसे भोजन करनेपर स्वादकी वृत्ति चली जाती है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

स्वयंपाकी ब्रह्मचारीको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने लिए ही भोजन न बनाये। और किसीको खिला करके ही खाय 'केवलाघो भवति यः केवलादी।'

२०. किसी व्यक्तिका सौन्दर्य अथवा उसके द्वारा निर्मित वस्तुका सौन्दर्य देखनेकी वासना अन्ततोगत्वा भोगमें परिणत हो जाती है। इस नेत्रवासनाने बड़े-बड़ोंको विकारके अग्नि-कुण्डमें झोंक दिया है। नेत्रवासनाने केवल पतिंगेको ही भस्म नहीं किया, बड़े-बड़े विद्वानों, योगियों और सदाचारियोंको भी पतनके गड्ढेमें ढकेलकर सर्वनाशतक पहुँचा दिया। विल्व-मङ्गलने आँख फोड़कर इससे पिण्ड छुड़ाया। इसपर विजय प्राप्त करनेके लिए बहुत जागरूक रहना चाहिए।

(१) मन-ही-मन चामका पर्दा हटाकर तब व्यक्तियोंको देखना चाहिए।

(२) जगज्जननी जगदम्बाको ही सर्वत्र देखना चाहिए। परमहंस रामकृष्णके सम्बन्धियोंने उन्हें गृहस्थ-जीवनसे उदासीन देखकर एक वेश्याकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न किया, जब वेश्या अपने हाव-भाव-कटाक्षसे उन्हें आकृष्ट करनेका प्रयत्न करने लगी, तब परमहंसजी तीन बार 'मा ! मा !! मा !!!' कहकर समाधिस्थ हो गये। वे जगज्जननीके उपासक थे।

(३) अपने इष्टदेवकी अनुपम रूप-माधुरीका प्रेमसे चिन्तन करना चाहिए। एकबार श्रीरामानुजाचार्यने श्रीरङ्ग क्षेत्रमें वेश्याके रूप-सौन्दर्यपर आसक्त व्यक्तिको देखा। वह वेश्याके सामने उसकी ओर मुँह करके छाता लगाये हुए आगे और पीछेकी ओर चलता था। आचार्यचरणने उसपर कृपा की और अपने निवास-स्थानपर बुलाकर अपने आराध्य देवके ऐसे अलौकिक सौन्दर्यका दर्शन करा दिया, जिसपर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उसने अपना जीवन, अपना सर्वस्व ही न्यौछावर कर दिया और प्रभुके चरणोंका सेवक बन गया।

(४) चलते समय चार हाथसे अधिक न देखना। इधर-उधर न देखना। तिरछी और चुभती हुई नजरसे किसीको न निहारना। दृष्टि पक्की करनेका अभ्यास करना।

(५) रंगोंके उभार और आकृतियोंके आड़े-तिरछेपनमें कभी महत्त्व बुद्धि न करना।

(६) अन्तःसौन्दर्यकी अनुभूति, ईश्वरीय सौन्दर्यका अनुसन्धान और प्राकृत सौन्दर्यके निरीक्षणसे व्यक्तिगत सौन्दर्यका आकर्षण एवं प्रलोभन नहीं रह जाता।

(७) सौन्दर्यका सच्चा स्वरूप निर्विकारता है, यह बात ध्यानमें रहनी चाहिए।

२१. वैसे तो सभी सांसारिक सुख स्पर्शजन्य ही हैं। कानकी झिल्लियोंसे जो स्पर्श होता है; उसे शब्द कहते हैं और आँखकी किरणें जिससे टकराती हैं, उसको रूप; परन्तु इस प्रसंगमें स्पर्श का अभिप्राय त्वचा इन्द्रियके कार्यसे है। दाद खुजलानेसे जैसा सुख होता है, कामसम्बन्धी सुख भी प्रायः वैसा ही है। स्पर्श भोगका अवश्यम्भावी पूर्वरूप है। इसलिए ब्रह्मचारीको स्पर्शसे बचना चाहिए। यह बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों एवं योगियोंको भी बेसुध करके बन्धन-स्थानपर पहुँचा देता है।

स्पर्शके सम्बन्धमें ये सावधानियाँ रखनी चाहिए—

(१) स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्रीका स्पर्श कभी न करे।

(२) लड़कियों और लड़कोंका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। एक बड़े अनुभवी, ईमानदार एवं सच्चे बाल ब्रह्मचारीने मुझे बताया कि वे थोड़ी आयुके बालक और बालिकाओंको अपनी गोदमें बैठाकर प्यारसे उनके कपोल आदिका

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

स्पर्श कर लिया करते थे। उनके मनमें अपनी निर्विकारताका अभिमान था। धीरे-धीरे भक्त शिष्योंकी बालक-बालिकाएं वयस्क हुई। स्पर्शकी क्रिया पूर्ववत् चलती रही। अब बुढ़ौतीमें उन युवतियोंके स्पर्शसे मनमें विकार आने लगा है। उन्होंने अब स्पर्श न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, यद्यपि पंद्रह वर्ष पूर्व वे मना करनेवालोंकी खिल्ली उड़ाया करते थे।

(३) कोमल शय्या, वस्त्र, चन्दन, पुष्पमाला आदि भक्तोंके आग्रहपर भी स्वीकार नहीं करने चाहिए।

(४) साबुन, क्रीम आदिके द्वारा अपने शरीरको मुलायम नहीं बनाना चाहिए।

(५) अपने ही शरीरके कपोल, गुह्याङ्ग आदिका बार-बार स्पर्श करना भी ब्रह्मचर्यका घातक है।

(६) गायत्री-जप, शरीरके प्रत्येक अवयवमें न्यास, ध्यान, त्रिकालस्नान, हाथोंमें कुश-मुष्टि, दण्ड आदिका धारण, वल्कल-वसन, भस्म धारण, आदिके द्वारा जनसाधारणसे अपनेमें एक प्रकारकी पृथक्ता एवं अपनी पवित्रता तथा दिव्यताकी भावना जाग्रत् कर लेनी चाहिए। इससे दूसरोंके एवं अपने गुह्यांगोंके स्पर्शसे रक्षा हो जाती है।

(७) ईश्वर, गुरु एवं अन्तरात्माको साक्षी बनाकर यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि ब्रह्मचर्यव्रतके विपरीत स्पर्श होनेपर मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा। मेरे पास एक एम्० ए०, डी०, लिट्० महाशय आया करते थे। उनमें रूपवती युवतियोंकी ओर घूरना तथा चलते फिरते उन्हें छू देनेका दोष था। उन्होंने मेरे सामने यह प्रतिज्ञा की कि बुरी नीयतसे स्पर्श होनेपर गङ्गाजीमें कूदकर प्राण दे दूँगा। थोड़े ही दिनोंमें उनकी घूरनेकी आदत भी छूट गयी। जिस रास्तेपर जाना

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही नहीं है, उसके मीलके पत्थरोंकी गिनती मालूम करनेसे क्या लाभ है ?

(८) ऐसे ग्रन्थोंका अनुसन्धान करना चाहिए, जिनमें अस्पर्श व्रतकी महिमाका उल्लेख है; जैसे वाल्मीकि-कृत रामायणके सुन्दरकाण्डमें सतीशिरोमणि श्री जानकीजीकी कथा है। उन्होंने अपने पुत्रवत् परम भक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री हनुमान्जीको भी स्पर्श करनेसे मना कर दिया था।

एक बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिए। रूप, स्पर्श आदिकी वासनाएँ मनकी कमजोरी हैं। दृढ़ प्रतिज्ञा, निश्चय और सावधानीसे ही इनपर विजय प्राप्त की जा सकती है।

२२. यद्यपि शास्त्रोंमें केवल जननेन्द्रियके संयमको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं, तथापि समस्त इन्द्रियोंका संयम हुए बिना ब्रह्मचर्यकी रक्षा सम्भव नहीं। जब किसी इन्द्रिय-द्वारसे मनको बाहर निकलनेका अवकाश नहीं मिलता, तब उसमें एकाग्रता और निरोध-दशाका उदय होने लगता है। यह बड़े-बड़े खेल खेलता है। विक्षेपप्रिय होनेके कारण एकाग्रता इसे जेलके समान मालूम पड़ती है। निरोध तो मानो कालकोठरी ही हो। एक इन्द्रियका संयम करो; तो यह दूसरी इन्द्रियसे भाग निकलनेकी कोशिश करता है। वाणीको बन्द करते ही हाथसे लिखनेकी कलासे मोहित कर लेता है। यदि ब्रह्मचारीने समस्त इन्द्रियोंके निग्रह और संयमका कौशल प्राप्त करनेमें कुछ निपुणता प्राप्त कर ली तो शरीरमें हनुमानका-सा बल, भीष्मकी-सी इच्छामृत्यु, शाण्डिलीके समान गरुड़को गलानेकी शक्ति, सनकादिके समान नित्य शैशव आदि प्राप्त करानेकी लालसाका रूप धारण करके चमत्कारोंके चक्करमें डाल देता है। अथवा प्रचार आदि कार्योंकी तीव्र वासनाको प्रोत्साहित करता है। परमार्थ-पथके पथिकोंको

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

इनसे परहेज करना चाहिए। उन महापुरुषोंमें वे सिद्धियाँ स्वाभाविक थीं, उन्होंने ब्रह्मचर्यसे उन्हें खरीदा नहीं था। साधारण साधकका मन निरोधके भयसे ही उनकी इच्छा उपस्थित करता है।

२३. यदि चमत्कारोंके चक्कर और प्रचारकी वासनासे बचकर मन और इन्द्रिय गोलकोंका सम्बन्ध रोक दिया गया, इन्द्रियाँ शान्त और स्थिर हो गयीं; तो स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि विषय और इन्द्रियोंमें कोई भेद नहीं है। एक ही जड़ सत्ता दो रूप धारण किये हुए हैं। वही विषय है और वही इन्द्रिय है। विषयगत रूप और नेत्रगत रूपमें कोई भेद नहीं है। ऐसी अवस्थामें मन स्वतन्त्र विषयोंकी सृष्टि करने लगता है। साधारणतः अनुभूयमान प्रपञ्चसे विलक्षण गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्दकी संवित् होने लगती है। अनेकों प्रकारके दिव्य दृश्य, चित्र-विचित्र अनुभूतियाँ, देवता, दानव, स्वर्ग ब्रह्मलोक आदिके दर्शन होने लगते हैं। यह सब मनके ही आकारविशेष हैं। शास्त्र, सम्प्रदाय, मत, पन्थ, व्यक्तिगत जानकारी, मान्यता एवं भावनाएँ जो बुद्धिमें संस्कार रूपसे निहित रहती हैं, उदय हो-होकर एक जाल-सा बिछा देती हैं और साधकको उन्हींमें नित्यबुद्धि उत्पन्न कराकर फँसा देती हैं। इस अवस्थामें साधक ऐसा समझने लगता है कि अब मेरा प्रवेश दिव्य राज्यमें हो गया है और मैं भागवतसत्ता एवं भगवल्लीलाका अनुभव कर रहा हूँ। यह भी भ्रम है। जहाँतक नाम और आकृतियोंका भेद है, वहाँतक वास्तविक सत्ताका अनुभव नहीं है। इसका भी निरोध आवश्यक है। तत्पश्चात् एक अपूर्व आनन्दका अनुभव होने लगता है। इस आनन्दका भोग भी ब्रह्मचर्यका विघ्न ही है। जब आनन्दकी वृत्ति भी शान्त हो जाती है, तब अस्मितामात्र शेष रह जाती

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है। इस अवस्थामें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि अस्मितासे लेकर विषयपर्यन्त एक ही प्रकृतिका, जड़ सत्ताका विलास है। मैं तो केवल द्रष्टामात्र हूँ। मैं अकर्ता, अभोक्ता अर्थात् मैं नित्य ब्रह्मचारी हूँ।

२४. यह अनुभूति भी वास्तविक नहीं है। इसमें भी संस्कार शेष—विद्यमान रहते हैं। विषयगत भेदके संस्कार ईश्वरके सम्बन्धमें अन्यत्वकी कल्पना और द्रष्टाके अनेक होनेकी भ्रान्ति इस अवस्थामें विद्यमान होते हैं। कोई भी अभ्यासजन्य समाधि चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न रख लिया जाय, अज्ञानकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहीं है। उसकी निवृत्ति तो तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य वृत्ति-ज्ञानसे ही होती है। समाधिके द्वारा अन्तःकरणके समस्त संस्कार अथवा अशुद्धियोंके धुल जानेपर स्वतःसिद्ध निरुपद्रव पूर्णबोधात्मक अखण्ड चिति ही शेष रह जाती है और वही आत्माका, ईश्वरका और जगत्का भी सच्चा स्वरूप है। ब्रह्मचर्यका भी वास्तविक स्वरूप वही है। इस पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति, समस्त साधन, वेद-शास्त्र आदिका लक्ष्य है। इसीका अनुभव, साक्षात्कार अथवा बोधात्मक उपलब्धि होनेसे मनुष्य-जीवन, जीव-जीवन सफल चरितार्थ होता है।

२५. पूर्ण ब्रह्मचर्यमें बोधात्मक स्थिति होनेपर ये शुभ सद्गुण जीवनमें स्वाभाविक ही रहने लगते हैं—व्यवहारशुद्धि, अन्तःकरणकी निर्मलता और सहज स्थिति। साधन कालमें इनके लिए प्रयास करना पड़ता है और सिद्धिकालमें विना प्रयत्नके स्वतःसिद्ध होते हैं—

(१) व्यवहारशुद्धि—संयम, सरलता, सादगी, समता, सत्यता, सदाचार आदि सद्गुण स्वाभाविक ही जीवनमें उतर

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आते हैं। वाह्य वस्तुओंमें सुखबुद्धि न रहनेके कारण अन्यायसे संग्रह-परिग्रहका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भोगलिप्सासे उत्पन्न होनेवाली हिंसा स्वतः निवृत्त हो जाती है। किसी वस्तुके नाशका भय नहीं रहता। छोटे-से-छोटे कार्यमें भी दैवी सम्पत्तिके महान् गुणोंका प्राकट्य होने लगता है। जाति, पन्थ और भाषाका दुराग्रह मिट जाता है। वह समाज, जाति, राष्ट्र, मानवता, विश्व एवं विश्वात्माका सच्चा सेवक होता है। उसके शरीरके कण-कण, रोम-रोम, रग-रग विश्व-हित; भगवत्प्रेम और आत्मज्ञानसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनकी ऐसी रश्मियाँ एवं धाराएँ बिखरती रहती हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रेमसे परिप्लुत हो जाय।

(२) **अन्तःकरणकी निर्मलता**—अन्तःकरणके अच्युत तत्त्वमें स्थित हो जानेसे विषय-सम्बन्धी सारे विकार स्वयं ही दूर हो जाते हैं। निर्विकार अन्तःकरणकी जो अपने सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन-आश्रयसे अभिन्न स्थिति है, वही शुद्धि है; क्योंकि उसमें वृत्ति और विषयका मिश्रण नहीं है। मिश्रण ही अशुद्धि है। चित्तमें जितने भी दोष, दुर्गुण, अशुद्धि, विकार होते हैं, उनमें कोई-न-कोई विषय वृत्तिके गर्भमें विद्यमान रहता है; यथा, काममें कामिनी, क्रोधमें शत्रु, लोभमें धन इत्यादि। परन्तु सत्य, अहिंसा, निष्कामता, निर्लोभता आदि सद्गुणोंमें अन्तःकरण सर्वथा निर्मल एवं निर्विषय रहता है। उस समय वृत्ति अपने शान्त आश्रयसे भिन्न करके अपनेको नहीं दिखाती। सत्य, अहिंसा, निष्कामता आदि किसके प्रति यह प्रश्न ही नहीं उठता। वृत्तिकी सत्तामात्र स्थिति ही सद्गुण है। इसपर यह प्रश्न होता है कि ऐसी अवस्थामें सद्गुण अनेक क्यों? इसका उत्तर यह है कि एक ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

शान्त स्थितिरूप सद्गुणोंको हिंसा, लोभ, काम आदि भिन्न-भिन्न दुर्गुणोंकी निवृत्ति करनेके कारण विभिन्न नामोंसे व्यवहार करते हैं। दुर्गुण अनेक हैं, इसीसे उनकी व्यावर्तक वृत्तिमें भी अनेकताका व्यवहार होता है। जैसे कामका विषय कामिनी है, वैसे ब्रह्मचर्यका कुछ विषय नहीं है। यह तो चित्तकी शान्ति ही है। काम केवल जाग्रत्, स्वप्नमें रह सकता है और समाधिमें नहीं। ब्रह्मचर्य जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि आदि सभी अवस्थाओंमें एकरस रहता है, इसलिए यह अखण्ड सत्य है। अतएव अखण्ड ब्रह्मचर्यमें स्थिति ही अन्तःकरणकी सच्ची शुद्धि है।

(३) सहजस्थिति—समाधि हो चाहे विक्षेप ब्रह्मचारीकी सहज स्थिति भंग नहीं होती। उसके लिए प्रवृत्ति और निवृत्ति सम है। उसके अपने स्वरूपसे भिन्न द्रष्टा, दर्शन, दृश्य कुछ भी नहीं है। वह सहज भावसे रहता है। अपने जीवनमें किसी प्रकारकी विशेषताका आरोप नहीं करता। उसका व्यवहार सम है, वृत्ति सम है, स्वरूप सम है और विषमता भी सम है। वह जीवन्मुक्त है, उसकी स्थिति सहज है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

भीमा और नीराके पवित्र संगमपर

(१)

अभी सूर्योदय होनेमें विशेष विलम्ब था। अरुणोदयकी अरुणिमा भी स्पष्टरूपसे नहीं दीख रही थी। वायुमण्डल शान्त था, मलयज पवनके शीतल झोंके रह-रहकर छू जाया करते थे। इतनी शान्ति थी उस समय कि वृक्ष भी सोये हुए-से जान पड़ते थे। तारे ठिठके हुए और चन्द्रमा समुद्रके पास। भीमा और नीराके सङ्गमपर जो विशाल वटवृक्ष था, उसकी एक लम्बी शाखापर दो श्वेत पक्षी जाग रहे थे और केवल वे ही जाग रहे थे। जैसे भीमा शान्त थी और नीरा चञ्चल, वैसे ही उन दोनों पक्षियोंमें भी एक गम्भीर था और दूसरा उत्सुक। गम्भीर पक्षी बड़ा था और चञ्चल छोटा। छोटे पक्षीकी आँखें इधर-उधर दौड़ जाती थीं और कोई नयी वस्तु देखकर वह पूछ बैठता था कि वह क्या है? उस शान्त, नीरव ब्रह्मवेलामें केवल दो ही प्रकारके शब्द थे—एक तो नीरा नदीकी कलकल ध्वनि और दूसरे उस चञ्चल पक्षीके चापल्य-मिश्रित, उत्सुकता भरे बालोचित प्रश्न।

भीमा और नीराके मधुर सङ्गमकी ओर, जो दो प्रिय सखियोंके मिलन-जैसा आनन्दमय था, दृष्टि जाते ही छोटे पक्षीको एक नवीन दृश्य दीख पड़ा। एक युवक, जिसकी रेख अभी भिनी नहीं थी, झीनीसी चादरसे अपना शरीर ढके हुए, स्वस्तिकासनमें ध्यानमग्न बैठा हुआ था। न उसकी साँस चलती

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दीखती थी और न उसके शरीरमें तनिक भी स्पन्दन था। उसके जीवनका चिह्न इतना ही था कि वह शान्त, स्थिर और गम्भीर मुद्रासे बैठा था। छोटा पक्षी उसको जाननेके लिए चञ्चल हो उठा। उसने बड़े पक्षीको सम्बोधित करके पूछा—'भैया! यह कौन है, क्या कर रहा है? तुम तो अन्तर्यामी हो, इसके मनकी सारी बातें जानते हो, मुझे बताओ। इसके चित्तकी स्थिति जाननेके लिए मेरे मनमें बड़ा कुतूहल है।' बड़ा पक्षी, जो हंस था, उस समय बड़े शान्त भावसे उस युवककी ओर ही देख रहा था। मानो युवकके हृदयकी प्रत्येक गति-विधि उसकी आंखोंके सामने हो और वह उसे देखकर मुग्ध हो रहा हो। हंसने छोटे पक्षीको सम्बोधन करके कहा—वत्सल! मैं प्रायः तुम्हारे प्रश्नोंको टाल दिया करता हूँ। इसका यह कारण नहीं है कि मैं तुम्हारी उपेक्षा करता हूँ। बात इतनी ही है कि जब मैं स्थूल जगत्को छोड़कर सूक्ष्म जगत्के किसी गम्भीर रहस्यके चिन्तनमें संलग्न रहता हूँ, तब तुम इतने उथले प्रश्न करते हो ऐसी चर्चा छेड़ देते हो, जिसके कहने-सुनने, समझने-समझानेमें, रुचि ही नहीं होती। परन्तु आज अभी इस समय जो तुमने प्रश्न किया है, वह इस अवसरके अनुकूल ही है; क्योंकि जो मैं मनकी आँखोंसे देख रहा हूँ, वही तुम पूछ रहे हो। कितनी तन्मयता है उस युवकमें, कितनी लगन और तल्लीनताके साथ तत्पर है वह अपनी साधनामें! ऐसा मालूम पड़ता है कि साधनाका लम्बा मार्ग यह कुछ क्षणोंमें ही समाप्त कर देगा। मैं तो इसके अन्तर्देशके दर्शनसे ही ध्यानस्थ हो रहा हूँ। ध्यान करनेवाला किस प्रकार ध्यान कर रहा है, उसके चित्तमें इस समय किन-किन भावोंका उदय और विलय हो रहा है, उसके चित्तके चबूतरेपर कौन-कौन-सी मूर्तियाँ आकर नाच जाती हैं,

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

उनको देखकर वह किस प्रकार आनन्दविभोर हो जाता है—इन बातोंकी कल्पनासे ही अन्तःकरणमें एक अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। इस समय यह वीर युवक भगवान्‌की मधुर और मोहक लीलाओंमें रम रहा है; इसके मन प्राण शरीर और रोम-रोममें भगवान्‌की दिव्यता अवतीर्ण हो रही है। इसकी एक-एक वृत्ति भगवान्‌को लेकर ही उठ रही है और भगवान्‌में ही विलीन हो रही है। इस समय यह पवित्रता, शान्ति और आनन्दकी त्रिवेणीमें उन्मज्जन-निमज्जन कर रहा है, डूब-उतरा रहा है। कितनी मस्ती है इसमें! देखो तो सही, इसके शरीरमें-से प्रकाशकी कैसी किरणें निकल रही हैं! इसका मुखमण्डल ज्योतिर्मय हो रहा है, इसके हृदयसे शान्ति और आनन्दकी धारा प्रवाहित होकर आसपासके सम्पूर्ण जड़-चेतनको एक दिव्य प्रेम और रससे सराबोर कर रही है। ऐसा जान पड़ता है कि यदि इसी प्रकार इसका ध्यान चलता रहा तो थोड़े ही समयमें इसकी सम्पूर्ण प्रकृतिका परिवर्तन हो जायगा और न केवल इसका अन्तःकरण ही, बल्कि स्थूलशरीर भी अत्यन्त दिव्य और नारायणमय हो जायगा।

वत्सलने कहा—'हे राजमराल! शिव भगवान्‌की कृपासे आपको महान् सिद्धि प्राप्त है; आप दूरकी वस्तु देख सकते हैं, दूसरेके मनकी बात जान सकते हैं; भूत और भविष्य, दूर और निकटकी सभी वस्तुएँ आपके लिए करामलकवत् हैं। आपसे कोई भी रहस्य अज्ञात नहीं है। आप मेरी उत्सुकताको मिटानेके लिए कृपा करके यह बतलाइये कि इसने किस प्रणाली और किस क्रमसे ध्यान किया है, जिससे इसे इतनी तन्मयता प्राप्त हो गयी।' राजमरालने कहा—'वत्सल! यह विषय अत्यन्त गोपनीय है, फिर भी तुम्हारे आग्रह और प्रेमको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

देखते हुये न बताना अनुचित जान पड़ता है। इसलिए साव-धानीसे सुनो। मैं तुम्हें इसके ध्यानकी गाढ़ताका कारण बतलाये देता हूँ। नित्यकर्म—सन्ध्यावन्दन आदिके नियमपूर्वक अनुष्ठानसे इसके सम्पूर्ण अङ्गों और इन्द्रियोंके देवता अनुकूल तथा प्रसन्न हो गये हैं। वे ध्यानकी स्थिरतामें किसी प्रकारका विघ्न नहीं डालते। ध्यानके समय वे स्वयं ही इसके शरीर और इन्द्रियोंको स्थिर और अविचल कर देते हैं। यम-नियमके पालनसे और इस दृढ़ निश्चयसे कि 'अब मैं कभी पाप-कर्म नहीं करूँगा' पाप-वासनाएँ तो इसके चित्तमें उठती ही नहीं। प्राणायाम और विचारके द्वारा इसने शुभ कर्मकी वासनाओंका भी तनूकरण सम्पन्न कर लिया है। भूत-शुद्धि और मन्त्र-चैतन्यकी क्रियासे इसके अन्तःकरण और इष्ट-मन्त्रमें भी विशिष्ट शक्तिका विकास हो गया है और अब यह इच्छा करते ही एकाग्र हो जाता है। कितना निरुद्ध और भावप्रवण हो गया है इसका चित्त, इस बातको आज मैंने प्रत्यक्ष देखा। आज ब्रह्म-वेलाके पूर्व ही जब यह यहाँ आकर बैठा और मेरे देखते-देखते ही अन्तर्मुख होकर भावलोकमें प्रवेश कर गया, तब मैं आश्चर्य-चकित हो रहा था।

"इस युवकने पहले अग्नि-प्राकारकी भावना की, अनुभव किया कि 'मेरे चारों तरफ एक ज्योतिर्मय चहारदीवारी है और उसके बीचमें मैं सुरक्षित रूपसे बैठकर परमात्माका चिन्तन करने जा रहा हूँ। किसी प्रकारकी दुर्भावना और दुर्वासनाएँ मेरा स्पर्श नहीं कर सकतीं।' यह दृढ़ निश्चय करके इसने अपने सर्वाङ्गमें कीर्ति आदि शक्तियोंके साथ केशवादिका न्यास किया, जिससे इससे शरीरकी सम्पूर्ण अपवित्रताएँ धुल गयीं और शरीरमें दिव्यता आगयी। तत्पश्चात् पीठन्यास

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

करते हुए इसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमण्डल और लोकोंको यथास्थान शरीरमें स्थापित किया। इसने क्रमशः ऐसी भावना की कि यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममें स्थित है, इसके अधिष्ठान ब्रह्म हैं। इसलिए यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है, ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्मकी वह शक्ति भी ब्रह्म ही है, जिसने ब्रह्ममयी प्रकृतिको धारण कर रखा है। ब्रह्ममें आधारशक्ति, आधारशक्तिमें प्रकृति, प्रकृतिमें एक ब्रह्माण्डमण्डलको धारण करनेवाले व्यक्तरूपसे विराजमान कूर्म भगवान् और उनके आधारपर स्थित शेष भगवान्; जिन्होंने यह पृथ्वी धारण कर रखी है। पृथ्वीपर अनन्त विस्तृत उत्ताल तरङ्गोंसे तरङ्गायमान धवलातिधवल क्षीरसागर—जिसमें नाना प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे कमलोंके आसपास अनेकों हंस, सारस आदि दिव्य पक्षी क्रीड़ा कर रहे हैं और जिसके मध्य-मार्गमें बड़ा ही विशाल सात्त्विकताका साम्राज्य श्वेतदीप है—हिलोरें ले रहा है। श्वेतदीपमें लताओंके कुञ्जमें मणियोंका सुन्दर मण्डप है और उस मण्डपके अन्तर्गत प्रेमके पुष्प और आनन्दके फलोंसे परिपूर्ण एक दिव्य कल्पवृक्ष है, जिसकी दिव्य सुरभिसे सारा संसार सुवासित हो रहा है। कल्पवृक्षके नीचे मणियोंकी वेदी है और उसपर रत्नजटित सिंहासन है।"

राजमरालने कहा—'प्यारे वत्सल! अभी थोड़ी ही देर पहलेकी तो बात है, इन्हीं दिव्य वस्तुओंकी भावना करते-करते यह युवक इस स्थूल संसारका उल्लंघन कर गया है और दिव्य-लोकमें प्रविष्ट हुआ है। वहाँ जाते ही इसने उस रत्न-सिंहासनपर जो अपने शान्त स्वरूपमें अनन्तको छिपाये हुए था और अनन्त होनेपर भी सान्त दीख रहा था, द्वादशकलात्मा सूर्य, षोडश कलात्मा चन्द्रमा और दशकलात्मा अग्निको देखा और क्रमशः और भी अन्तर्जगत्‌में प्रवेश करता गया वहाँ इसने सत्त्व,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

रज, तम—इन तीनों गुणोंको देखा; तीनों अवस्थाएँ इसके सामने नाच गयीं; उनके अभिमानी भी आये और नमस्कार करके चले गये। इसने आत्मा, अन्तरात्मा और ज्ञानात्माको प्रत्यक्ष देखा। इस विशुद्ध प्रेम और ज्ञानके राज्यमें, जहाँ दोनोंका एकत्व है, पहुँचते ही इस युवकके सामने भगवान्‌का लीला-लोक प्रकट हो गया है। इस समय यह नारायणके शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वर्षाकालीन मेघके समान सुन्दर, पीताम्बर ओढ़े हुए, मधुर, मञ्जुल, मङ्गलमय स्वरूपकी सेवा कर रहा है। इसने अभी कुछ ही क्षण पहले भगवान्‌का चरणामृत लिया है, उन्हें अपने हाथसे माला पहनायी है, अनेकों प्रकारके फल-फूल और व्यञ्जनके नैवेद्य लगाये हैं और प्रेमपूर्वक आग्रह करके भगवान्‌को खिलाये हैं। कितने प्रेमी हैं भगवान्, प्रेमका प्रतिदान तो केवल वे ही जानते हैं। वे नित्यतृप्त हैं और अपनी अखण्ड महिमामें स्थित हैं, फिर भी प्रेमपरवश होकर अपने भक्तोंके लिए क्या-क्या नहीं करते? भगवान्‌ने इसकी सेवा स्वीकार की है, इसे अभयदान दिया है और अपनाया है। इस समय प्रेममुग्ध होकर आरती करता हुआ यह भगवान्‌के सामने नाच रहा है और इसके शरीरमें क्रमशः आठों सात्त्विक भाव उदय हो-होकर अपनेको सार्थक कर रहे हैं।"

वत्सलने पूछा—'राजमराल! तुम्हें तो इसका भविष्य भी ज्ञात है; अब आगे क्या होगा, यह बतलानेकी कृपा करो।'

राजमरालने कहा—'अब प्रातःकाल होनेपर आया। मुझे यहाँसे बहुत दूर, पण्ढरपुरसे पचास मीलपर गुप्तलिङ्ग भगवान् शङ्करका दर्शन करने जाना है; इसलिए मैं तो अब चलता हूँ। इसका ध्यान अभी शीघ्र टूटनेवाला नहीं, इसका शरीर भी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नारायणमय हो जायगा। अभी तो मैं चलूँ।' वत्सलने कहा— 'राजमराल! मुझे भी अपने साथ ले चलें।' राजमरालने अनुमति दी और दोनोंने एक ही साथ वहाँसे यात्रा की।

(२)

महाराष्ट्रमें भगवान् शङ्करके आठ लिङ्ग अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उनमें सात प्रकट हैं और अठवाँ गुप्त है। बड़े महादेव, जो कि हरिहरात्मक लिङ्गमूर्ति हैं, शिवाजीके पूर्वजोंके द्वारा चिरकालसे पूजित हैं। उनके दर्शनमात्रसे आज भी जीवोंके अन्तस्तलमें एक अलौकिक पवित्रताका सञ्चार होता है। वहांसे कुछ ही दूर, एक कोसके लगभग दो पर्वतोंकी सन्धिमें भगवान् शङ्करका गुप्त लिङ्ग है, वहाँ हरे-भरे, सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। बारहों मास बहनेवाले झरने हैं। दो-तीन छोटे-छोटे कुटीर हैं, जिनमें कभी-कभी दो-एक साधु रह जाते हैं और कभी कोई नहीं रहता। गुप्तलिङ्ग भगवान्के ठीक ऊपर पर्वत-शृङ्गपर पीपलके कई बड़े-बड़े वृक्ष हैं। उनमें एक तो मानो वहाँके वृक्षोंका राजा ही है। थोड़ी हवामें भी जब उनके पत्ते खड़खड़ा उठते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् शङ्करका डमरू बज उठा हो। उस स्थानकी अनन्त महिमा है और अनन्त सौन्दर्य है। राजमराल प्रतिदिन वहीं जाकर झरनेमें स्नान करते, शिवकी पूजा करते, पीपलपर बैठकर उनका ध्यान करते। यही उनका सहज कर्म था। न इसमें परिश्रम था और न कृत्रिमता। जैसे स्वभावत: प्राण चला करते हैं, वैसे ही उनके शरीरसे यह क्रिया हुआ करती थी।

प्रतिदिनकी अपेक्षा आज कुछ विशेषता थी। रोज वे अकेले रहते थे, आज दो थे। जब वे नित्य-कृत्य समाप्त करके बड़ी शान्तिसे पीपलकी एक शाखापर बैठे, तब वत्सलने पूछा—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'भैया ! उस युवककी क्या स्थिति होगी ? अब उसका इस समय क्या भाव होगा ? वह क्या अनुभव करता होगा ?' राजमराल उस समय ध्यानस्थ हो रहे थे, वे किसी भी प्रश्नका उत्तर देना नहीं चाहते थे। वत्सल उनका रुख देखकर चुप हो रहा। परन्तु उसके मनमें इस बातकी बड़ी छटपटी थी कि उस युवककी क्या स्थिति है। थोड़ी देरके बाद वत्सलने देखा राजमरालकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह रही है, शरीर काँप रहा है, सारे शरीरपर स्वेदबिन्दु हैं और मुखमण्डल प्रेमकी ज्योतिसे जगमगा रहा है। राजमरालकी यह दशा देखकर वत्सलको उनके शरीरकी बड़ी चिन्ता हो गयी और वह उन्हें अपने पंख-के-पंखेसे हवा करने लगा एवं अनेकों प्रकारसे उन्हें जगानेकी चेष्टा करने लगा। बहुत उपचारके बाद जब वे होशमें आये और स्वस्थ हुए, तब वत्सलने पूछा—'भैया, यह तुम्हारी क्या दशा हो गयी थी ? किस अनुभूतिमें तुम डूब गये थे ? तुम्हारे लिए ऐसी कौन-सी अनहोनी वस्तु है, जिसे देख-सुनकर या स्मरण करके तुम विह्वल हो जाते हो ? मेरे प्रश्नको सुना तक नहीं। यदि कोई अत्यन्त रहस्यकी बात हो तो बतलानेकी कृपा करो।' राजमरालने बड़े प्रेमसे कहा—'भाई वत्सल ! तुम तो मेरा समग्र जीवन ही पूछ रहे हो। मैं जब अपने जीवनकी अतीत घटनाओंका स्मरण करता हूँ तो भगवान्‌की अहैतुकी कृपा, उनके प्रेम और अपने मस्तकपर उनके वरद करकमलोंकी छत्रच्छाया देखकर उन्हींके स्मरणमें विह्वल हो जाता हूँ। मुझे अपने तन-बदनकी सुध नहीं रहती। देखो न मैं क्या था, क्या हो गया ? कहाँ तो एक पक्षी हंस और कहाँ भगवान्‌की इतनी महान् कृपा ! मेरा जीवन धन्य हो गया, प्रभुकी कृपासे"।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'सारी घटना स्मरण हो आयी है, कहे बिना रहा नहीं जाता' यह कहकर राजमरालने फिर बोलना आरम्भ किया—"तुम कैलास पर्वतको तो जानते ही हो, यहाँसे यदि वहाँ जाना हो तो शत-शत पर्वत मालाओंको पार करना पड़ता है। वहीं गौरीशङ्कर चोटीके पास बड़ा विशाल मानस-सर है, जिसमें-से भक्ति और ज्ञानके समान ब्रह्मपुत्र और सिन्धु—ये दोनों नद प्रवाहित हुए हैं। मैं उसी मानस-सरका निवासी हूँ। मैं वहाँ अकेला न था, कोटि-कोटि हंस वहाँ निवास करते हैं। उन्हींमें एक मैं भी था। सबके-सब मानस-सरमें क्रीडा करते थे, कमलोंसे खेलते थे; सबके-सब शुद्ध सात्त्विक थे, प्रेमी थे और नीर-क्षीरविवेकी थे। एक बारकी बात है—सभी हंस इकट्ठे थे, अपनी विवेकी शक्तिकी चर्चा चल रही थी। हंसोंकी जाति बड़ी विवेकवती है, पानीमें-से दूधको अलग कर लेती है, यही सबसे महान् जाति है। ऐसी एक भी समस्या नहीं, जिसे यह हल न कर सके। उसी सभामें एक प्रश्न छिड़ा—'हमलोग जो मोती चुगते हैं, वे क्या चीज हैं? उनकी उत्पत्ति कैसे?' इस प्रश्नका उत्तर सहसा कोई नहीं दे सका। अन्तमें यह निर्णय हुआ कि सब लोग इस प्रश्नका विचार करें। जो इसका ठीक-ठीक उत्तर देगा, वह हम लोगोंका राजा होगा और मानस-सरके बीचोबीच जो सबसे बड़ा कमल है, वही उसको आसनके रूपमें प्राप्त होगा। जिनकी विचार-शक्ति प्रखर थी, उन्होंने उस स्थानको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न आरम्भ किया। छः महीनेकी अवधि रखी गयी।

'मेरे मनमें न तो उस स्थानका प्रलोभन था और न मेरी विचार-शक्ति ही प्रखर थी। परन्तु यह प्रश्न मेरे चित्तमें भी उठा कि जो मोती हमलोग चुगते हैं; इन्हें किसने, किसलिए

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बनाया है ? केवल मोतीके ही सम्बन्धमें नहीं, सम्पूर्ण जगत्के और अपने सम्बन्धमें भी यही प्रश्न उठ खड़ा हुआ। मैंने तबतक कोई साधन-भजन तो किया नहीं था, सत्सङ्गका अवसर भी कम मिला था; ऐसी स्थितिमें मैं स्वयं विचार सकता ? सामने केवल निराशा ही निराशा थी। आशा थी तो बस, एक गौरीशङ्करकी चोटीपर रहनेवाले भववान् शङ्करको पानेकी—जिन्हें मैंने कभी देखा नहीं था, जहाँतक जानेकी मुझमें शक्ति नहीं थी, परन्तु जिनके पास आकाश मार्गसे जाते हुए सिद्धों, सन्तों, ऋषियों और देवताओंको मैं देखा करता था। आशा थी तो केवल उनकी ही। चित्तसे प्रश्न टलता नहीं था, समाधानका कोई उपाय न था। चित्तमें इतनी व्याकुलता हुई कि जीवन भार हो गया। भला, वह जीवन किस कामका जिसमें एक तिनकेका भी यथार्थ ज्ञान नहीं है—और तो क्या अपने आपका भी ज्ञान नहीं है। अब मैं चलूँगा भगवान् शङ्करके पास; यदि रास्तेमें मर जाऊँ तो इस अज्ञानावृत जीवनसे वह मरना भला ही है; और, यदि जीते जी वहाँतक पहुँच जाऊँ तो सारा भेद आप ही खुल जायगा। ऐसा निश्चय करके मैं उड़ा—गौरीशङ्करकी उस चोटीपर चढ़नेके लिए, जहाँ अवधूतके वेशमें भगवान् शङ्कर निवास करते हैं।

मैं उड़ा, उड़ता ही गया; न जीवनका मोह था न लोभ। इसलिए कष्टोंकी परवाह भी न थी। कितनी दूरतक कुहरा पड़ा और कितनी दूरतक अन्धकार, कहाँ जाड़ेसे ठिठुरकर गिर पड़ा, कहाँ ठोकर खाकर—इन सब बातोंकी कोई याद नहीं है। आगे चलकर तो मेरा शरीर उड़ रहा है या नहीं यह भी भूल गया, केवल मन ही मन उड़ता रहा। जब होशमें आता तब शरीर भी उड़ता और मूर्च्छित हो जाता तो कहीं

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

गिर पड़ता। एक बार ऐसे जोरकी ठोकर लगी कि मैं तिल-मिला उठा, शरीर बेबस हो गया; परन्तु ऐसी आश्चर्यजनक घटना घटी कि मैं अलग था और शरीर अलग। शरीरको ठोकर लगनेसे मुझे तनिक भी व्यथा नहीं हो रही थी। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हो बोल उठा—'अरे! तो क्या मैं शरीरसे अलग हूँ? क्या मेरा शरीर ही घायल होकर पड़ा है, उसके साथ मन मूर्च्छित नहीं हुआ? शरीर एक व्यक्ति है, मन भी एक व्यक्ति है, जगत्के सम्पूर्ण शरीर और मन भिन्न-भिन्न हैं। हैं। शरीरसे मनका और मनसे शरीरका सम्बन्ध है। ये सब जागरित रहते हैं तब पृथक्-पृथक्, सुषुप्त अथवा प्रलीन रहते हैं; तब एक यही समस्त व्यक्तियोंकी एक समष्टि है। मोती स्थूल है, मेघ सूक्ष्म है; समुद्र कारण है, उसमें मेघ और मोती अभिन्न हैं। स्थूल जगत् सूक्ष्म जगत्में, दोनों कारण-जगत्में सबसे पृथक्, सबको देखनेवाला। मुझसे कारणका क्या सम्बन्ध है? मैं ही तो कारणको देख रहा हूँ? यह कारण मेरे अन्दर है या बाहर? अन्दर है तो मुझसे भिन्न क्यों? क्या मैं ही कारण बन गया हूँ? मुझ अनन्त, एकरस, निर्विकार, देश-काल-वस्तु-परिच्छेदशून्य, सजातीय विजातीय-स्वगतभेदरहित चिद्घनमें कार्य-कारणकी परम्परा कैसी? केवल मैं-ही-मैं हूँ। ऐसा निश्चय होते ही मैं समाधिस्थ हो गया। कोई प्रश्न नहीं रहा। न आकुलता थी, न शान्ति; बस, केवल मैं था।

'जब मेरी समाधि टूटी और मैंने अपने शरीरकी ओर देखा तो वह कैलासके एक शिखरपर भगवान् गौरीशङ्करकी गोदमें था और वे अपने कृपा-कटाक्षोंसे उसे सींचते हुए मुस्करा रहे थे। माताकी वह स्नेहमयी मूर्ति, पिताका वह लोकोत्तर वरदान आज भी मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है। उन्होंने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपने करकमलोंके स्पर्शसे मुझे जीवनदान दिया और मैं सचेतन होकर उनके चरणोंके पास लोटने लगा। उनका वह कर्पूरोज्ज्वल श्रीविग्रह, उनकी वह करुणामयी मूर्ति कभी भुलायी नहीं जा सकती। उनकी आज्ञासे मैं हंसोंमें लौट आया; मेरा अज्ञान नष्ट हो गया, सम्पूर्ण समस्याएँ सुलझ गयीं।

'छठा महीना पूरा होते-होते, मानस-सरमें फिर हंसोंकी पञ्चायत इकट्ठी हुई; सबने अपने-अपने विचार सुनाये। एकने कहा—स्वाती-नक्षत्रपर जब सूर्य आते हैं; तब सीपमें वर्षाका जल पड़नेसे मोती बनते हैं। इसलिए सीप और मेघ तो निमित्त कारण हैं और जल उपादान-कारण। इसी क्रमसे मोतीकी उत्पत्ति होती है। जलमें जो मोती निहितरूपसे रहता है, वह स्वाती नक्षत्रकी सूर्य रश्मियों और सीपके संयोगसे अभिव्यक्त हो जाता है। मोती एक वस्तु है—कारण रूपमें नित्य और कार्य रूपमें अनित्य। इसलिए उसकी पवित्रता अक्षुण्ण है। उसके कारण स्वरूपपर दृष्टि रखी जाय तो वह कभी दुःखद नहीं हो सकता।'

दूसरेने कहा—'यदि कारणमें सब वस्तुओंका अस्तित्व अलग-अलग स्वीकार किया जाय, तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध जुड़ना असम्भव हो जायगा। जल पृथक् वस्तु है और उसमें स्थित मोती पृथक् वस्तु है। दोनोंका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं हैं—ऐसा मान लें तो जलसे मोतीके अभिव्यक्त होनेका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। इसलिए कारणमें सब वस्तुओंकी अलग-अलग सत्ता है, ऐसा मानना युक्तिसङ्गत नहीं है। कारण एक है, उसके परिणाम ही भिन्न-भिन्न कार्य हैं। मोती, सीप, मेघ, सूर्य, समुद्र और जगत्की समस्त भिन्नताएँ मूलतः एक ही वस्तुके परिणाम हैं। इसलिए प्रिय-अप्रिय

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

और अनुकूल-प्रतिकूलका भेद केवल कार्यपर दृष्टि रखनेके कारण है। यदि यह स्थूल दृष्टि निवृत्त करके वस्तु-दृष्टि रखी जाय तो शोक-मोहके लिए कहीं स्थान ही न रहे। इसलिए मोतीको मोतीके रूपमें नहीं, उस अद्वितीय कारणके रूपमें देखना ही निःश्रेयस है।'

'मैं भी वहीं था, मेरे मनमें भी बोलनेकी आयी और मैं बोल उठा—'भाई जब यह निश्चय किया जाता है कि कारण दृष्टिसे सब एक ही हैं, तब निश्चय करनेवाला अपनेको किस कोटिमें मानता है? उसका अस्तित्व तो निर्विवाद है और उसे किसी-न-किसी कोटिमें भी होना ही चाहिए। ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न उठता है कि निश्चय करनेवाला मैं कार्य हूँ तो कारणको जान ही नहीं सकता। और यदि कारण हूँ तो यह सम्पूर्ण जगत् मेरा ही परिणाम होना चाहिए। परन्तु मैं परिणामी तो नहीं हूँ। क्योंकि मेरा ज्ञान और साक्षित्व एकरस निर्विकार है; कार्य-कारण-परम्पराकी प्रत्येक स्थितिको मैं जानता हूँ। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ और यह कारण-कार्य-परम्परा मेरी दृष्टिके अन्तर्गत है। मुझे अनन्तमें दृष्टि और दृश्य सम्भव ही नहीं। यह कारण-कार्य-परम्परा एक विवर्त है, जो स्वरूपमें सर्वथा असम्भव है। कहाँ मोती और कहाँ जल। सब मैं ही मैं हूँ।'

मेरी बात सबकी समझमें नहीं आयी। कोई-कोई इस विषयको अज्ञेय कहकर मौन हो गये और किसी-किसीने इसे अस्वीकार कर दिया। परन्तु बात यहींतक नहीं थी, सर्वश्रेष्ठ कमलके सिंहासनपर बैठना भी था। हंसोंमें मतभेद हो गया। उस कोलाहलमें कुछ निर्णय कैसे होता? परन्तु भगवान् शङ्करने बड़ी कृपा की। वे माँ गौरीके साथ उसी सर्वश्रेष्ठ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कमलपर प्रकट हो गये। अकस्मात् सबकी आँखें उनकी ओर खिंच गयीं और उनके सामने सबके सिर झुक गये। भगवान्ने कहा—'हंसो! तुम्हारे सामने जो प्रश्न है, वह केवल मोतीके सम्बन्धमें नहीं है; वह तो सम्पूर्ण जगत्के सम्बन्धमें है और अपना आप भी उससे अलग नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् निर्विकार आत्मस्वरूप ही है। न इसका आरम्भ है, न परिणाम और न विवर्त। यह एकरस, सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन है। ऐसी स्थितिमें राजमरालकी बातें ही सत्य हैं और वही सर्वोच्च आसनके अधिकारी हैं।'

"भगवान् शङ्करकी अहैतुकी कृपाको देख मैं चकित—स्तम्भित हो रहा था। परन्तु जब उन्होंने सर्वोच्च आसनकी बात कही; तब मेरी मुग्धता भङ्ग हुई और मैंने उनके चरणोंके पास जाकर आर्तस्वरसे प्रार्थना की—'हे प्रभो! इस उपाधिसे मेरी रक्षा कीजिये, ऐसे काममें न तो मेरी रुचि है और न प्रवृत्ति। अवश्य ही मेरे मनके सूक्ष्म प्रदेशमें इस विषयकी कोई गुप्त वासना होगी, जिसके कारण आप ऐसा कह रहे हैं; अन्यथा मैं तो यही चाहता था कि कहीं एकान्तमें रहकर आपके चरणोंका चिन्तन किया करूँ और फिर कभी इस जंजालमें न पड़ूँ।' मेरे भाई-बन्धु और जातीय लोग तो यही चाहते थे कि मैं वहीं रहूँ और उन्हींके समान संसारके झंझटोंमें फँसा रहूँ। परन्तु मेरा अतिशय आग्रह देखकर भगवान् शङ्करने मुझे मुक्त कर दिया और अब मैं उनकी कृपासे स्वच्छन्द विचरण करता हूँ। उनके स्वरूप और कृपाकी कभी विस्मृति नहीं होती। जगत्की परस्परविरुद्ध घटनाओंमें मेरे चित्तमें कभी किसी प्रकारका क्षोभ अथवा विकार नहीं होता। मैं प्रत्येक अवस्थामें ही अपनी मुक्तिको जानता और अनुभव करता हूँ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जब भगवान्की कृपा और घटनाएँ मुझे स्मरण हो आती हैं, तब मैं विह्वल हो जाता हूँ—न अपने शरीरकी सुधि रहती है न जगत्की।"

राजमरालकी आत्मकथा सुनते-सुनते वत्सल बहुत कुछ अन्तर्मुख हो गया था। वह उन्हीं घटनाओंको सोचते-सोचते, मन-ही-मन मानस-पर पहुँच गया था और उसे यह ध्यान ही न था कि मैं गुप्तलिङ्गके पास पीपलपर बैठा हुआ हूँ। राजमरालने वत्सलसे कहा—"अब पण्ढरपुर चलनेका समय हो गया; आओ आजकी रात्रि वहीं चलकर व्यतीत की जाय।" राजमरालकी बातसे वत्सलका ध्यान भङ्ग हुआ और दोनोंने पण्ढरपुरकी यात्रा की।

(३)

निस्तब्ध निशीथ। भीमा नदीका पावन तट। विठ्ठलनाथके मन्दिरसे थोड़ी दूर, जहाँ भगवान्के चरण-चिह्न हैं, ठीक सामने एक वृक्षपर दो पक्षी बैठे हुए थे। यदि कोई देख सकता तो यही देखता कि-उनके शरीर निष्कम्प हैं और उनके चित्तमें केवल पण्ढरीनाथ भगवान्की स्मृति है। चिरकालतक वे वैसे ही बैठे रहे। वे देख रहे थे कि विठ्ठल भगवान्की आरती हो रही है और उनकी श्रीमूर्तिपर बार-बार एक दिव्य ज्योति आती है और छिप जाती है। घण्टा-घड़ियाल बज रहे हैं और विठ्ठल, विठ्ठलकी आकाशभेदी ध्वनिसे दिशाएँ मुखरित हो रही हैं। बहुत समयतक वे इसी ध्यानमें मग्न रहे। जब आँखें खुलीं तब उन्होंने देखा सामने भगवान्के वे ही चरण-चिह्न विद्यमान हैं, जो भगवान्ने संसारी जीवोंके कल्याणार्थ वहाँ रख छोड़े हैं।

कुछ समयके बाद वत्सलने फिर वही प्रश्न दुहराया—'अब उस युवककी क्या स्थिति होगी, क्या करता होगा वह? राज

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मराल ! तुमसे तो उसकी कोई भी स्थिति छिपी नहीं है, कृपा करके बतलाओ न ।' अब राजमरालको भी उसकी कथा कहनेमें आपत्ति नहीं थी । क्योंकि अब वे बातचीत करनेकी भूमिमें उतर आये थे । उन्होंने कहा—'अब उसकी स्थितिका क्या पूछना है, वह भगवान्‌को प्राप्त करके कृतार्थ हो गया । हम लोगोंके वहाँसे चलनेके बाद उसकी साधना इतनी तेजीसे बढ़ी कि भगवान्‌की आरती करते-करते बेसुध होकर वह उनके चरणकमलोंमें लोट गया । उस दिव्य लोकमें उसका दिव्य शरीर भगवान्‌का स्पर्श और आलिङ्गन प्राप्त करके आमूल परिवर्तित हो गया और वह भगवान्‌के श्री विग्रह-जैसा ही चिन्मय और आनन्दमय हो गया । आनन्दकी इस बाढ़से उसका स्थूलशरीर, जो भीमा और नीराके सङ्गमपर बैठा हुआ था, प्रभावित हुए बिना नहीं रहा और उसमें भी स्पष्ट चिन्मयता आगयी । जब उसकी आँखें खुलीं और बाह्य जगत्‌की ओर उसने देखा तो वहाँ भी वही दृश्य, जो अन्तर्जगत्‌में उसने देखा था । उसकी टकटकी बँध गयी । वह इस प्रकार निर्निमेष नयनोंसे निहारने लगा कि उसके सारे प्राण और सम्पूर्ण अन्तःकरण उस रूपधारीके पानमें मस्त हो गये । प्रणाम करनेकी भी स्मृति न रही । भगवान्‌ने स्वयं अपने करकमलोंसे उठाकर उसका आलिङ्गन किया और उसे अपने साथ ही अपने दिव्य धाममें ले गये । उसका जीवन सच्चा जीवन हो गया, उसके जन्म-जन्मकी आराधना सफल हो गयी और वह भगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया ।'

वत्सलने पूछा—'राजमराल ! उसकी अवस्था तो बहुत छोटी थी, दीर्घ कालतक उसने कुछ साधन भी नहीं किया; फिर भगवान्‌की कृपाकी यह दिव्य अनुभूति इतनी जल्दी उसे

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

कैसे प्राप्त हो गयी ? राजमरालने कहा—'भगवान्‌की कृपाके लिए अवस्था अथवा साधनाकी कुछ भी अपेक्षा नहीं है, वे तो निस्कारण ही सबके ऊपर कृपा और प्रेमकी अनवरत वर्षा किया करते हैं। जिसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ, जिसके हृदयमें उसके लिए सच्ची व्याकुलता हुई, उसीने उसका अनुभव किया। पूर्वजन्ममें तीव्र तपस्या करनेके फलस्वरूप उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, वासनाएँ नष्ट हो गयी थीं और भगवत्प्राप्तिकी उत्कट उत्कण्ठा जाग गयी थी। यही कारण है कि विना किसी साधनाके ही उसे भगवत्प्राप्ति हो गयी।'

वत्सलने राजमरालसे पूछा—'भैया, क्या उसके पूर्व-जन्मकी साधना बतलानेकी कृपा करोगे ?' राजमराल बोले—'वत्सल ! जिस दिन पहले-पहल उस युवकसे मेरी जान-पहचान हुई थी, उसी दिन उसने अपने पूर्वजन्मकी बातें मुझे बतायी थीं—जो कि अन्तःकरणके शुद्ध होनेपर ध्यानके समय स्वतः ही उसके चित्तमें स्फुरित हुई थीं। उस युवकने मुझसे कहा था—'पूर्वजन्ममें मैं एक ब्राह्मण था, विशेष शास्त्रज्ञान तो था नहीं, यों ही किसी प्रकार अपना जीवन-निर्वाह कर लेता। कोई सुख नहीं था तो कोई दुःख भी न था। परन्तु एक बातसे मुझे बड़ी चोट लगी। जिनका मैं विश्वास करता, उन्हींसे धोखा खाना पड़ता। सब-के-सब स्वार्थके सङ्गी, निःस्वार्थ कोई बात पूछने वाला भी नहीं। मेरे जीवनमें सबसे बड़ी व्यथा, सबसे बड़ी पीड़ा यही थी। और इससे छुटकारेका कोई उपाय नहीं था। एक महात्माने मेरी यह मनोदशा ताड़ ली और कृपा करके उन्होंने मुझे एक साधन वतलाया। वह साधन शारीरिक नहीं, मानसिक था; इसलिए उसके अनुष्ठानमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम हुई। क्योंकि मन-ही-मन तो न जाने क्या-क्या

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सोचना ही रहता था, फिर एक निश्चित बातके सोचनेमें आपत्ति ही क्या हो सकती थी। हाँ, प्रातःकाल कुछ विशेष क्रिया करनी पड़ती थी।

'दो घड़ी रात रहते उठकर आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त होकर स्थिर आसनसे बैठ जाता। दोनों अँगूठोंसे दोनों कान बन्द करके, दोनों तर्जनीसे दोनों आँख, दोनों मध्यमासे दोनों नाक, और दोनों हाथकी अनामिका और कनिष्ठा अंगुलियोंसे मुखका स्पर्श करते हुए प्राण, मन और आत्माकी एकताका चिन्तन करता। कुछ दिनोंतक ऐसा अभ्यास करनेसे भौंहोंके बीचमें कुछ स्पन्दन मालूम होने लगा। उससे कुछ-कुछ आनन्दका विकास हुआ और साधनामें मन लगने लगा। फिर तो क्रमशः बहुत-से नदी, नद, पर्वत समुद्र और मूर्तियोंके दर्शन होने लगे! घण्टा, शङ्ख और मृदङ्गकी ध्वनियोंके साथ-ही-साथ वंशीके स्वर भी सुनायी पड़ते। भ्रमरोंका मधुर गुञ्जार भी गूँजता ही रहता। मैं प्रायः बाह्य चिन्तनसे विरत हो जाता और उसीके आनन्दमें मस्त रहता।'

'एक प्रक्रिया उन्होंने और बतायी थी—'जब मैं सन्ध्यावन्दन आदि नित्य-कर्म करके बैठता तो ऐसी भावना करता कि मेरी नाभिमें जो स्वाधिष्ठानचक्र है, उसमें एक त्रिकोण कुण्ड है; उस कुण्डमें चिन्मय अग्नि प्रज्वलित हो रही है और मेरे दुष्कर्म, दुर्भाव और दुर्गुणकी आहुतियाँ पड़कर भस्म हो रही हैं। मनके स्रुवासे **'ॐ अहंतां जुहोमि स्वाहा'** इस मन्त्रसे एक-एक दोष ढूँढ़-ढूँढ़ हवन करता। थोड़े ही दिनोंमें मुझे बड़ी पवित्रताका अनुभव हुआ और मेरा जीवन सदाचारमय बन गया। इस पवित्रता और सदाचारसे मेरी एकाग्रता बढ़ी और मैं श्रीकृष्णका ध्यान करने लगा।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'श्रीकृष्णके ध्यानमें मुख्यता लीलाकी ही थी, प्रातःकाल मैं प्रातःकालकी लीलाओंका ही चिन्तन करता। मैं भावकी आँखोंसे देखता श्रीवृन्दावनधाममें सबसे बड़ा, सबसे सुन्दर, सबसे विचित्र नन्दबाबाका राजमहल है। उसके मणिमय आँगनमें अनेकों दासियाँ दूध और दही मथ रही हैं। वे धीरे-धीरे श्रीकृष्णकी लीला और नामोंका भी गायन करती जा रही हैं। नीलमणिके चबूतरोंपर पड़े हुए दूध और दहीके बिन्दु इतने मनोहर जान पड़ते हैं कि आँखें उधरसे हटती ही नहीं। नन्द-रानी दासियोंको आज्ञा कर रही हैं—कोई जोरसे न बोले; मेरा लल्ला, मेरा कन्हैया, अभी सोया हुआ है; कहीं किसीकी कर्कश ध्वनिसे उसकी नींद न टूट जाय।' सभी दासियाँ बड़ी सावधानीके साथ अपने-अपने काममें सजग हैं। श्रीकृष्ण एक सजे हुए कमरेमें मणि-रत्नजटित शय्यापर सोये हुए हैं और दूसरोंकी दृष्टिमें सोते हुए होनेपर भी स्वयं जाग रहे हैं। उनके मुखकमल पर कृपा, प्रेम और आनन्दकी ज्योति स्पष्टरूपसे झलक रही है। ऐसा मालूम होता है; वे अब बोल उठते हैं, तब बोल उठते हैं। जब नन्दरानी कहती हैं कि मेरे लल्लाकी नींद न टूटे, कलका थका है, तब उनके होठोंपर मुस्कराहटकी एक रेखा खिंच जाती है। माँके वात्सल्यका दर्शन करनेके लिए आँखें खुलना चाहती हैं, पर वे उन्हे बन्द कर लेते हैं। माँके प्रेमका स्मरण करके उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता है। उसे वे रोक नहीं सकते, परन्तु माँके लिए और उसके प्रेम तथा आनन्दके लिए वे सोये ही रहते हैं। उनकी यह गाढ़ निद्रा तबतक नहीं टूटती, जबतक माँ उनके पास जाकर नहीं जगातीं।

'सूर्योदयके पहले ही बहुतसे ग्वालबाल आँगनमें इकट्ठे हो जाते हैं; बलराम भी उनके साथ हो लेते हैं और वे सबके सब

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

इस प्रतीक्षामें खड़े हो जाते हैं कि श्रीकृष्ण कब उठें और कब उनके दर्शन-स्पर्शनसे हम धन्य हों। कोई कहता—'मेरी माँ तो अभी आने ही नहीं देती थी, मैं उससे पल्ला छुड़ाकर भाग आया।' कोई कहता कि—'कन्हैयाके बिना न बछड़े दूध पीते हैं न गौएँ पिन्हाती हैं, इसलिए गौओंके पास न जाकर मैं यहाँ चला आया।' ग्वालबालोंकी उत्सुकता देखकर नन्दरानी श्रीकृष्णकी शय्याके पास जाकर कहती हैं—'लल्ला, तुम्हारे बाबा तुम्हें बिना जगाये ही गोठको चले गये। वे जानते थे कि गौएँ पिन्हायेंगी नहीं, तुम्हें देखे बिना। फिर भी प्रेमवश उन्होंने तुम्हें जगाना उचित नहीं समझा। ग्वालबाल तुम्हारी प्रतीक्षामें खड़े हैं। बछड़ोंकी आँख भी तुम्हारी तरफ लगी हैं। उठो, देखो, आज कितना सुन्दर सूर्योदय हुआ है।' वे श्रीकृष्णके सिरहाने बायें हाथके बल लटककर दाहिने हाथसे उन्हें सहलाने लगती हैं और श्रीकृष्ण अँगड़ाते हुए, देह तोड़ते हुए, जँभाते हुए उठकर शय्याके एक ओर बैठ जाते हैं—चरणकमलोंको एक ओर लटकाकर। वे अपने हाथों सोनेकी झारीमें पानी लाती हैं। श्रीकृष्णका मुँह धोती हैं, उनके बिखरे बालोंको सँवारती हैं और फिर कस्तूरी-केसरका तिलक करके, यह कहकर बाहर जाने देती हैं कि—'बहुत जल्दी लौट आओ, जिससे कलेऊमें देर न हो।' ग्वालोंमें-से कोई उनका हाथ पकड़ लेता है, कोई बाँसुरी, कोई पीताम्बर पकड़ लेता है तो कोई कमरसे ही लिपट जाता है। इस प्रकार सब नाचते-कूदते, हँसते-खेलते, उछलते-कूदते बाहर जाते हैं और मैं अपनी भाव-दृष्टिसे यह सब देख-सुनकर मुग्ध होता रहता।'

राजमरालने वत्सलसे कहा—'यह सब कहते हुए उस युवकका कण्ठस्वर गद्गद था, आँखोंसे आँसूकी धारा बह रही

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

थी और सारे शरीरमें रोमाञ्च हो रहा था। उसने आगे कहा—'परन्तु मेरी यह भावना पूर्ण नहीं हो सकी। मेरे चित्तका एक सुषुप्त संस्कार जाग उठा और तबतक मैं उससे नहीं बच सका, जबतक मेरी मृत्यु नहीं हो गयी। परन्तु उन्हीं साधनोंका यह फल था कि मुझे इस जन्ममें सद्गुरु और सत्-साधनकी प्राप्ति हुई और अब मैं कुछ-कुछ अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ रहा हूँ।'

राजमरालने वत्सलको सम्बोधन करके कहा—इसके बाद उस युवककी जैसी स्थिति हुई, तुम सब जानते हो। भगवान्की कृपामें ही ऐसे संतोंके दर्शन होते हैं। धन्य है वह भूमि, जहाँ ऐसे प्रेमी भक्त भगवान्का स्मरण, चिन्तन करते हैं। उनके दर्शनसे, वहाँके जल-वायुके संस्पर्शसे चित्तमें पवित्र भावनाओंका उद्रेक होता है। भीमा और नीराके सङ्गमपर, जहाँ बैठकर उस दिन वह युवक ध्यानमग्न था, जहाँ भगवान्ने प्रकट होकर उसे अपनाया था, आज भी वे ही दृश्य, यदि कोई भावकी आँखसे देखे तो दीख सकते हैं। क्या ही अच्छा हो कि हम भी अपना शेष जीवन वहीं व्यतीत करें।' वत्सलने कहा—'हाँ, ठीक तो है; चलिये वहीं चलकर रहा जाय।' दोनों चल पड़े।

बहुत दिनोंतक लोगोंने देखा कि दो श्वेत पक्षी बड़ी गम्भीरतासे अपना जीवन व्यतीत करते हैं उस वटवृक्षपर, जो प्राचीनकालसे स्थित है; भीमा और नीराके पवित्र संगमपर।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साधनाकी एक झाँकी

मन कल्पनाओंका पुञ्ज है। सुषुप्तिमें जो कल्पनाएँ विलीन रहती हैं, वे ही स्वप्नमें और जागरितमें उठा करती हैं और जिन वस्तुओं और घटनाओंका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है, उनका बनावटी सम्बन्ध जोड़कर व्यवहारकी विशाल एवं जटिल परम्परा खड़ी कर देती हैं। मैं तो कभी-कभी इन कल्पनाओंके जालमें ऐसा उलझ जाता हूँ कि उनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। ऐसा अनेकों बार होता है। किसी-किसी दिनकी कल्पनाएँ बड़ी मनोरञ्जक और लाभप्रद हो जाती हैं, पीछे उनके स्मरणसे भी मनोरञ्जन और लाभ होता है। इसलिए एक दिन ब्रह्मवेलामें, जब कि वृत्तियोंको निस्सङ्कल्प करके मुझे शान्त-भावसे बैठा रहना चाहिए था, जिन कल्पनाओं-के प्रवाहमें मैं बह गया था, उनका स्मरण किया जाता है।

दरबार लगा हुआ था। बहुत-से दरबारी मौन-भावसे अपने-अपने स्थानपर बैठे थे। सबसे ऊँचे आसनपर अपनी धर्म-पत्नी बुद्धिदेवीके साथ महाराज अहङ्कार विराजमान थे। उस सभाके सदस्योंमें मूर्तिमान् रूपसे दस इन्द्रिय, पाँच प्राण, पाँच भूत और मन उपस्थित था। कुछ अव्यक्त रूपसे थे और कुछ छोटे-मोटे दूसरे लोग भी थे; परन्तु उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं था। यह विशाल सभा-मण्डप और उसकी प्रत्येक क्रिया मेरी आँखोंके सामने थी। परन्तु मैं कहाँ हूँ और किस रूपसे देख रहा हूँ, यह मुझे पता नहीं था; मैं केवल देख रहा था।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

राजासाहबने मनको बुलाया और कहा कि यहाँ जितने सदस्य उपस्थित हैं, उनको एक-एक करके मेरे सामने लाओ; मैं उनका परिचय, जीविका और उनके जीवनका उद्देश्य जानना चाहता हूँ। मनने हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।

एक अधेड़ स्त्रीके साथ मन उनके निकट उपस्थित हुआ। अहङ्कारने पूछा—'तुम कौन हो ?' उस स्त्रीने उत्तर दिया—'मेरा नाम पृथिवी है।' उन्होंने पूछा—'तुम्हारी जीविका क्या है ?' पृथिवी—'मुझे जीविकाके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मुझे प्रत्येक समय सर्दी, गर्मी, हवा, और अवकाश मिलता रहता है और सहज रूपसे ही मैं समस्त भूत-प्राणियोंको धारण किये रहती हूँ। न मुझे कोई चिन्ता होती है और न तो अशान्ति। यही मेरी जीविका है और इसीमें मैं संलग्न रहती हूँ।' अहङ्कार—'तुम्हारे जीवनका उद्देश्य क्या है ?' पृथिवी—'मेरा स्वतन्त्र जीवन ही क्या है कि उसका कोई उद्देश्य हो ? जिसने मुझे अस्तित्व दिया, जिसने मुझे प्रकृतिकी गोदसे निकाला, जो मुझे धारण किये हुए है, वह जैसे नचाता है नाचती हूँ। मेरी एक-एक चेष्टा उसके इशारेसे ही होती है। शायद इससे वह रीझता हो; परन्तु मैं उसको रिझाती हूँ, ऐसी बात नहीं। मेरा कुछ उद्देश्य नहीं और उसके उद्देश्यका मुझे पता नहीं।' अहङ्कार—'वह यदि तुम्हें पानीमें गला दे, आगमें जला दे, तुम्हारा अस्तित्व नष्ट कर दे तो क्या तुम्हें दुःख नहीं होगा ?' पृथिवी—'बिल्कुल नहीं। उसकी इच्छा ही मेरा जीवन है और मृत्यु भी वही है। जीवन-मृत्यु नहीं हैं, उसकी इच्छा है। फिर अन्तर क्या ? मेरे चित्तमें दुःख और सुखकी कल्पना ही नहीं उठती।' अहङ्कार—'अच्छा, जाओ। अपने स्थानपर रहो। तुमसे कुछ नहीं कहना है।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मन एक दूसरे सदस्यके साथ पुनः उपस्थित हुआ। अहङ्कार—'तुम्हारा नाम ?' आगन्तुक सदस्य—'जल।' अहङ्कार—'तुम्हारी जीविका क्या है ?' जल—'मुझे चाहे जो अपने काममें लाये, मैं आपत्ति नहीं करता। पृथिवी मुझसे स्निग्ध हो, सूर्य मेरा पान करे, वायुमण्डल मुझसे शीतल हो और मैं आवश्यकताके अनुसार उनका उपयोग कर लूँ। बस, यही मेरी जीविका है। इसके लिए न मुझे चिन्ता करनी पड़ती है, न कोई श्रम।' अहङ्कार—'तुम्हारे जीवनका उद्देश्य क्या है ?' जल—'यह मैं नहीं जानता। जिसने मुझे अस्तित्व दिया है, उज्जीवित किया है, उसीकी प्रेरणासे बादलसे पर्वतपर, पर्वतसे भूमिपर, भूमिसे समुद्रमें और समुद्रसे बादलमें घूमा करता हूँ। जो घुमाता है, वह इसका रहस्य जानता होगा।' अहङ्कार—'तब इस यात्रामें तुम्हें रसका अनुभव होता होगा, कभी यह बन्द हो जाय तो ?' जल—'मैंने कभी नहीं चाहा था कि मुझे कोई घुमाये, यह भी नहीं चाहता कि यह घूमना बन्द हो जाय। जब घूमने-न-घूमनेकी इच्छा ही नहीं है, तब मेरे लिए कोई भी परिस्थिति नीरस कैसे हो सकती है ?' अहङ्कार—'तुम्हें कोई जला दे, सुखा दे, नष्ट कर दे तब ?' जल—'जल जाऊँगा, सूख जाऊँगा, नष्ट हो जाऊँगा।' अहङ्कार—'तुम्हें दुःख नहीं होगा ?' जल—'नहीं, बराबर ही तो हैं सब। जब जीना दूसरेकी इच्छासे, तब मरना भी दूसरेकी इच्छासे। दूसरेकी इच्छा ही अपना जीवन है। न इसमें दुःख है, न सुख।' अहङ्कार—'ठीक है, जाओ।'

मनने एक तेजस्वी मूर्तिके साथ प्रवेश किया। अहङ्कार—'कौन हो तुम ?' अग्नि—'मैं अग्नि हूँ।' अहङ्कार—'क्या जीविका है तुम्हारी ?' अग्नि—'जिसकी जितनी इच्छा हो,

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मुझसे उष्णता और प्रकाश ले ले। मैं भी वायु, जल, पृथिवी आदिका उपयोग कर लेता हूँ। यही मेरा स्वरूप है। न इसमें मेरा कर्तृत्व है और न आसक्ति ही।' अहङ्कार—'यह किस लिए करते हो तुम?' अग्नि—'कोई कराता है मुझसे।' अहङ्कार—'न कराये तो?' अग्नि—'नहीं करूँगा।' अहङ्कार—'वह तुम्हें नष्ट कर दे तो?' अग्नि—'नष्ट हो जाऊँगा।' अहङ्कार—'यह समत्व तुम्हें कहाँसे प्राप्त हुआ?' अग्नि—'यह भी उसीका दिया हुआ है। मुझे अभिमान था कि मुझमें भी कुछ शक्ति है; पर उसने मुझे अनुभव करा दिया कि वह शक्ति उसीकी है, मैं जो कुछ हूँ उसीका हूँ। चाहे वह नष्ट कर दे या रक्खे, उसकी मौज!' अहङ्कार—'अच्छा, जाओ तुम।'

वायुकी बारी आयी। अहङ्कारके पूछनेपर उसने कहा—'मैं वायु हूँ। मेरी जीविका है—सङ्घर्ष। मैं विद्युत्, प्राणशक्ति और अग्निका निर्माण करता हूँ। संसारकी सम्पूर्ण गतियाँ मेरा आश्रय लेती हैं।' अहङ्कार—'इतनी शक्ति तुममें कहाँसे आयी, वायु?' वायु—'जहाँसे मैं आया। ये मेरी शक्तियाँ हैं—यह तो कहनेकी बात है। यह सब सहज रूपसे होता है, मेरे सोच-विचारकर किये बिना ही। मैं तो एक यन्त्र हूँ। मेरी यन्त्रता भी किसीकी इच्छा ही है, तब मेरी क्या विशेषता है?' अहङ्कार—'यदि तुमसे यह सारी शक्तियाँ छीन ली जायँ तो?' वायु—'इसका अर्थ है कि मैं भी छीन लिया जाऊँगा। जिसका मैं हूँ, जिसकी ये शक्तियाँ हैं, वे यदि खींच लें अपने आपमें, अथवा नष्ट ही कर दें तो इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात क्या होगी?' अहङ्कार—'ठीक है, तुम जा सकते हो।'

आकाशने उपस्थित होकर अहङ्कारके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा—'मैं आकाश हूँ। अवकाश और शब्द ही मेरा स्वरूप

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है। मैं चारों भूत और उनसे बने हुए पदार्थोंको धारण करता हूँ। यह भी उन भूतोंकी दृष्टिसे ही मैं कह रहा हूँ। मेरी दृष्टि में तो वे पराये नहीं है। मुझे वे नहीं दीखते। जब मैं देखता हूँ—मैं ही दीखता हूँ। इसमें बनावट नहीं है, विभुका यह सहज स्वरूप ही है।' अहङ्कार—'यदि कोई तुम्हारा नाश कर दे तो ?' आकाश—'उस नाशके रूपमें तो मैं ही रहूँगा।' अहङ्कार—'मान लो तुम रहो ही नहीं; तब ?' आकाश—उस समय अवश्य ही वह रहेगा जिसका मैं हूँ, जिसमें मैं हूँ। यदि मेरा अस्तित्व नष्ट होकर उसका अस्तित्व प्रकट हो सके तो मेरा नष्ट होना ही अच्छा है।' अहङ्कार—'परन्तु तुम नष्ट हो जाओ और वह प्रकट न हो तब ?' आकाश—'अवश्य ही वह उसकी आँखमिचौनी होगी। उसकी लीलाके लिए मेरा मिट जाना ही सर्वोत्तम है।' अहङ्कार—'तुम पाँचोंका समर्पण पूर्ण है।'

अहङ्कारकी प्रेरणासे मन एक ऐसे व्यक्तिको लेकर उपस्थित हुआ; जो एक होनेपर भी पाँच रूपोंमें दीख रहा था। यों समझिये कि मूर्ति थी और चार उसकी छाया। पूछनेपर उसने बतलाया कि 'मेरा नाम प्राण है। एक होनेपर भी स्थानभेद और क्रियाभेदसे समष्टि और व्यष्टि दोनोंमें ही मैं पाँच प्रकारका हो जाता हूँ। जगत्‌में जितनी भी चेष्टाएँ हो रही हैं, वे हो रही हैं मेरे द्वारा। स्थूल जगत् यदि क्रिया है तो मैं उसके अन्दर रहनेवाली शक्ति हूँ।' अहङ्कार—'तुम समष्टि हो या या व्यष्टि ?' प्राण—'यों तो मैं समष्टि ही हूँ, मुझमें व्यष्टि-भेद है ही नहीं। परन्तु यह कहनेकी बात है। मैं व्यष्टि हूँ और इस प्रकार व्यष्टि हूँ कि समष्टिको जानता ही नहीं।' अहङ्कार—'तब तुम अपना मोह और बन्धन स्वीकार करते हो।' प्राण—'जी हाँ। मैं ऐसा मानता हूँ कि

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मेरे ही कारण शरीर जीवित है और रुधिराभिसरण, पाचन आदि क्रियाएँ मेरे ही द्वारा होती हैं—यहाँतक कि मेरे बिना पलक भी नहीं गिर सकती।' अहङ्कार—'यह शक्ति तुम्हारे अन्दर कहाँसे आयी?' प्राण—'मैं तो समष्टि-प्राणसे शक्ति लेता हूँ और समष्टि परमात्मासे।' अहङ्कार—'यदि तुम्हें शक्ति न दी जाय तो?' प्राण—'मैं तो वैसी स्थितिकी कल्पनासे ही काँपने लगता हूँ। मेरी रग-रगमें मृत्युकी भयानकता भरी हुई है।' अहङ्कार—'तब तो तुम्हारे अन्दर समत्वका अभाव है।' प्राण—'सत्य है।' अहङ्कार—'इस विषमताके अपराधका दण्ड भोगना पड़ेगा तुम्हें।' प्राण—'दण्ड तो मैं अभी भुगत रहा हूँ। जितना दण्ड मैं भोग रहा हूँ इस समय, इससे अधिक और क्या दण्ड होगा?' अहङ्कार—'अवश्य ही तुम बन्धनमें जकड़े हुए हो। परन्तु इससे छूटनेका उपाय भी यही है कि तुम और भी बाँध दिये जाओ। तुम्हारी क्रिया सीमित हो जाय। इडा और पिङ्गलाके मार्गमें तुम समरूपसे चलते रहो, यह समता सुषुम्नाका रूप धारण कर ले। तुम्हारा घटना-बढ़ना और स्वेच्छाचार सर्वथा बन्द हो जाय, तुम मेरे सामने रहा करो। एक क्षणके लिए भी मेरी आँखोंसे ओझल मत होओ। तुम्हारे लिए जो यह दण्डकी व्यवस्था की गयी है, यह तुम्हारी उद्देश्यहीनताके कारण है। अवश्य ही इससे तुम्हें दुःख होगा, परन्तु वह दुःख तुम्हारे वर्तमान सुखसे तो बहुत ही उत्तम होगा। तुममें जन्म और मृत्युके प्रति समत्व नहीं है, परमात्माके प्रति समर्पण नहीं है, उद्देश्यकी ओर तुम्हारी गति नहीं है। इससे प्राण! तुम कैद कर लिये गये। मेरी आँखोंके सामने स्थिर भावसे खड़े रहो।' प्राण खड़ा हो गया। परन्तु वह बहुत ही धीरे-धीरे काँप रहा था।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अहङ्कारने मनसे कहा—'इन्द्रिय दस हैं, सबको मेरे पास लानेकी आवश्यकता नहीं है। उनकी सम्मतिसे एक प्रमुख इन्द्रियको ले आओ, जो सबका प्रतिनिधित्व कर सके।' तत्क्षण मनने आज्ञा शिरोधार्य की और इन्द्रियोंकी सम्मतिसे वागिन्द्रियको लेकर उपस्थित हुआ। इन्द्रियोंके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर वाक्‌ने कहा—'हम लोगोंकी संख्या दस है—पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं और पाँच कर्मेन्द्रिय। कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियोंके पूरकमात्र हैं। जैसे—नेत्र कोई स्थान देखना चाहता है तो पैर वहाँ पहुँचा देते हैं। त्वक् स्पर्श करना चाहती है तो हाथ उसका स्पर्श करा देते हैं—इत्यादि। प्रधानता ज्ञानेन्द्रियोंकी ही है, उनकी जीविका और उनके जीवनके उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। कोई शब्दजीवी है तो कोई स्पर्शजीवी और कोई रूपजीवी। उनके जीवनका उद्देश्य है अपने-अपने विषयोंकी पूर्णता प्राप्त करना। जैसे कान चाहता है मधुर शब्दोंके केन्द्रमें स्थित होना, आँखें चाहती हैं रूपराशि और त्वक् सुकोमल स्पर्श। कटु शब्द, असुन्दर रूप और रूक्ष स्पर्श आदिसे उनका द्वेष भी है। सभी अपने-अपने लक्ष्यकी पूर्ति भिन्न-भिन्न दिशामें मानते हैं। इसीसे उन्होंने अपने जीवनमें द्वन्द्वकी सृष्टि कर रक्खी है।'

अहङ्कार—'क्या उन्होंने भगवान्‌के भी सम्बन्धमें कुछ विचार किया है? उन पाँचोंने यह भी सोचा है क्या कि हम सबके उद्देश्यकी पूर्ति एक ही भगवान्‌में होती है?' वाक्—'नहीं। वे अपने-अपने उद्देश्यको पृथक्-पृथक् समझते हैं और उनकी धारणा है कि इनकी पूर्णता ही भगवान् है।' अहङ्कार—'जहाँ उन विषयोंकी आंशिक अभिव्यक्ति रहती है, वहाँ क्या वे भगवत्-रसकी अनुभूति नहीं प्राप्त करते? जिन्हें वे कटु, रूक्ष एवं अप्रिय समझते हैं; उनमें भी तो उनके जीवनका

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

उद्देश्य किसी-न-किसी रूपमें है ही ? वैषम्य-भावसे द्वेषकी सृष्टि करके दु:खी होना उनका अपराध है। इसलिए उसको इसका दण्ड मिलना चाहिए।' वाक्—'वे दण्ड भोगनेको तैयार नहीं हैं।' अहङ्कार—यही तो उनका सबसे बड़ा अपराध है। पहला अपराध उनका यह है कि उन्होंने रूप, रस, गन्धादि सबके केन्द्रस्वरूप भगवान् ही हैं—इस बातको स्वीकार नहीं किया। दूसरा यह है कि उन्होंने सर्वत्र अपने प्रिय उद्देश्यको ही नहीं देखा और द्वेषकी सृष्टि की। द्वन्द्वको जन्म देकर उन्होंने सारे संसारको दु:खमय बना दिया। अब दण्ड भोगनेको भी तैयार नहीं। इसलिए मैं उन्हें दण्ड देता हूँ कि वे अपने-अपने गोलकोंमें स्थिर हो जायँ। न बाहर जायँ न भीतर। एक इंच भी यदि इधर-उधर हटीं, रागवश प्रिय वस्तुओंकी ओर बढ़ीं और अप्रिय वस्तुओंकी ओरसे हटीं तो उन्हें नष्ट कर डाला जायगा।' वाक्—'भगवन्, यह तो इन्द्रियोंके लिए मृत्यु-दण्ड है।' अहङ्कार—'जो जीवित रही हैं, उन्हें मरना भी पड़ेगा। जीवन और मृत्युकी एकरसताका अनुभव करना ही प्रत्येक व्यक्तिका भाग्य है, परन्तु यह मृत्यु वर्तमान जीवनसे सुन्दर है। सब सावधान हो जायँ। मेरी आज्ञा इसी क्षणसे जारी है।' वाक् जहाँ-की-तहाँ सन्न रह गयी। समस्त इन्द्रियाँ अपने-अपने स्थानमें गड़ गयीं। अब उस सभामण्डपमें मन, बुद्धि और अहङ्कारके अतिरिक्त और कोई नहीं था। मैं केवल देख रहा था।

बुद्धिदेवीने मनसे कहा—'और कोई हो तो उसे मेरे सामने ले आओ।' मन—'जब इन्द्रियाँ स्फूर्तिशून्य हो चुकी हैं, तब मैं और किसीका ज्ञान कैसे प्राप्त करूँ और किसे लाऊँ? मैं तो स्वरूपशून्य हो रहा हूँ।' बुद्धिने मुस्कराते हुए कहा—'तुम हो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही क्या ? मन—'मैं वासनाओंका पुञ्ज हूँ; मेरे अन्दर भूत, भविष्य और वर्तमानकी कोटि-कोटि वासनाएँ सञ्चित हैं।' बुद्धि—'परन्तु अब तो वे नष्ट हो जायँगी, क्योंकि उन्हें पूर्ण करनेवाली इन्द्रियाँ अब हिल-डोल नहीं सकतीं।' मन—'मैं उनके जीवित होनेतक प्रतीक्षा करूँगा। अवश्य ही इस समय मैं शून्य-सा हो रहा हूँ। परन्तु नहीं, नहीं; मैं मरना नहीं चाहता। मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।'

बुद्धि—'अब तुम्हारी रक्षा असम्भव है, तुमने अपनेको और सारे संसारको क्षुब्ध कर दिया। जिसके हो, उसको नहीं जाना। यन्त्र होनेपर भी यन्त्रताका अनुभव नहीं किया। जीवन और मृत्युकी समतामें तुमने ही वैषम्यका आरोप किया और उसे दृढ़ किया। अमृतको विष बना दिया। तुम्हारे अपराधका यही समुचित दण्ड है कि तुम नष्ट हो जाओ। हाँ, तुम नष्ट हो जाओ।' देखते-ही-देखते मनके शरीरकी छाया भी नहीं रही वहाँ, केवल बुद्धि और अहङ्कार दो ही व्यक्ति थे। मैं केवल देख रहा था।

बुद्धिने अहङ्कारसे कहा—'अब हम और तुम दो ही हैं, मेरा जीवन तुम्हारे आश्रयसे ही है। तुम न रहो तो मैं रह नहीं सकती। अबतक यथाशक्ति तुम्हारी सेवा करती रही हूँ। परन्तु तुमने मुझे अपना रहस्य नहीं बताया। भला, यह भी कोई प्रेम है ? जिनका जीवन समर्पित है, तुमने उनकी प्रशंसा की है; जिनमें अहंता थी, आसक्ति थी और ममता थी; उन्हें तुमने दण्ड दिया है। परन्तु क्या तुम्हारा जीवन समर्पित है ? क्या तुमने भी वही अपराध नहीं किया है, जो उन लोगोंने किया है ? तुम्हारे पास इन प्रश्नोंका क्या उत्तर है ?'

अहङ्कार—'तुम्हारे प्रश्न हम दोनोंके लिए ही हितकर नहीं

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हैं, मैं जान-बूझकर इस रहस्यको छिपाये हुए था। उसका भेद खोल देनेपर न तुम रहोगी न मैं।' बुद्धि—'यह तो तुम्हारे कथनके ही विरुद्ध है। अभी तुम हित-अहित और जीवन-मृत्युमें समत्वका पाठ पढ़ा रहे थे। हम दोनोंका नाश हो जाय, यह स्वीकार है; परन्तु हम सत्यके ज्ञानसे वञ्चित रहें यह स्वीकार नहीं।' अहङ्कार—'इस प्रकार आत्मनाश क्यों किया जाय।' बुद्धि—'जहाँ आत्माका ज्ञान ही नहीं, वहाँ आत्म-नाश कैसा ? 'क्यों'का प्रश्न तो वह कर सकता है जो आत्माको जानता हो। मेरा प्रश्न 'क्यों' नहीं, 'क्या' है।'' अहङ्कार—'अच्छा तो लो, जानो, यह सब मेरा एक खिलवाड़ था। इन्द्रियोंके साथ रमना, तुम्हारे साथ सोचना, फूलकर बैठे रहना और सो जाना यह सब मेरी एक लीला थी, केवल दिखावाभर था। मैंने सब कुछ किया, पर मैं कुछ नहीं था। मैं एक पोल हूँ, मैं एक प्रतीति हूँ। व्यवहारमें व्यवहारी बनकर रहा, साधकोंमें साधनके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ, परमार्थियोंमें परमार्थी हो गया। किसीने पूजा की और किसीने तिस्कार। परन्तु न मैं व्यावहारिक हूँ न प्रातिभासिक, पारमार्थिककी तो बात ही क्या है ? मैं हूँ नहीं और तुम देखो, मैं नहीं हूँ।' बुद्धिने आँख उठाकर देखा, वास्तवमें अहङ्कार नहीं है ! वह किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गयी। उसने चकित होकर कहा—'अरे ! जिसने सब कुछ किया वही कुछ नहीं, आश्चर्य है ! परन्तु तब यह सब किया ही क्यों ? ठीक है, यदि यह सब नहीं करते तो आज मैं उन्हीं प्रतीतियोंमें उलझी रहती। यह अवसर ही न आता, जिससे मैं सत्यको जान पाती। करनेसे ही कुछ न करनेका बोध होता है। उनका करना ठीक था, उनका कहना ठीक था। वे कुछ नहीं थे और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मैं भी कुछ नहीं हूँ। उनके बिना मैं कैसी ? वास्तवमें मैं कुछ नहीं हूँ।'

मैंने देखा बुद्धि भी नहीं है, परन्तु मैं देख रहा हूँ। सभा-मण्डप भी नहीं है, परन्तु मैं देख रहा हूँ। मैंने इतने बड़े प्रपञ्चके भाव और अभाव दोनोंको अपनी आँखोंसे देखा। पञ्चभूत, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कार—इतना ही क्यों, निखिल दृश्य-प्रपञ्च मेरी आँखोंके सामने नाचकर अदृश्य हो गये और मैं उनकी इस कार्य और कारण दोनों ही अवस्थाओंको देखता रहा और केवल देखता रहा। परन्तु यह देखना क्या है ? मैं देखनेवाला कौन हूँ ? यदि ये सब होते तो इनका अभाव न होता। परन्तु ये जब नहीं रहे तो इनका अस्तित्व ही सन्दिग्ध है। सन्दिग्ध ही क्यों, है ही नहीं। तब किसे कौन देख रहा था ? मैं ही मैंको देख रहा था ? भला, कर्त्ता कर्म कैसे हो सकता है ? कर्त्ता कर्म नहीं हुआ था, साक्षी साक्ष्य नहीं हुआ। कर्त्ता और कर्म, साक्षी और साक्ष्य—दोनों ही प्रतीतिमात्र हैं और सद्वस्तु अर्थात् मैं ('मैं' पदका लक्ष्यार्थ) प्रतीत-अप्रतीत सबका अधिष्ठान है और वस्तुगत्या सब कुछ है। केवल मैं-ही-मैं हूँ।

विचारोंकी धारा यहाँ आकर समाप्त हो गयी और मैं स्थिर एवं निष्कम्प स्वरूपसे स्थित हो गयी। अवश्य ही उस समयकी स्फुरणा नहीं हुई। जब मैंने आँखें खोलीं, तब सूर्योदय हो रहा था। मेरी आँखोंके सामने उन कल्पनाओंका नृत्य होने लगा। पञ्चमहाभूतोंका समर्पण, प्राणोंकी स्थिरता, इन्द्रियोंकी सजा, मनकी मृत्यु और अहङ्कारका खोखलापन सब-का-सब मुझे स्मरण हो आया और मुझे मालूम हुआ कि मेरी इस कल्पनामें परमार्थके साथ ही व्यवहारके

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सम्बन्धमें बहुत-सी उपादेय बातें हैं। यदि प्राण, इन्द्रिय आदि अपनी विषमताओं, द्वन्दोंका परित्याग करके पञ्चभूतोंके समान यन्त्रवत् व्यवहार करने लग जायँ तो इनके निरोधकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। ये स्वयं निरुद्ध हो जाते हैं। यदि ये समर्पित भावसे काम नहीं करते तो इनके निरोधकी आवश्यकता है और वही आवश्यकता इस कल्पनामें अभिव्यक्त हुई है और उसका फल भी प्रत्यक्ष है।

क्या यह कल्पना केवल मनोरञ्जन है अथवा इससे कुछ साधनाका मार्ग भी स्पष्ट होता है ?

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उद्दालककी साधना और समाधि

भारतवर्ष पृथिवीका हृदय है। पृथिवीका हृदय क्या है? सहिष्णुता, क्षमा, मातृत्व, समत्व और अबाधित अस्तित्व। जिनका जन्म भारतवर्षमें हुआ है, जो इसके अन्न-जलसे परिपुष्ट हैं, जिन्होंने अपने जीवनको भारतीयतामें ढाला है, उनमें अनिवार्यरूपसे पृथिवीके हृदय भारतवर्षका वास्तविक स्वरूप अर्थात् उपर्युक्त गुण किसी-न-किसी रूपमें रहते ही हैं और समय-समयपर व्यक्त होकर संसारके लोगोंको चकित करते रहते हैं। ऐसे एक नहीं अनेकों दृष्टान्त हैं, जिनके द्वारा इस बातकी पुष्टि होती है। प्राचीनकालके तपस्वी महर्षि उद्दालकका चरित्र भी इसका एक ज्वलन्त प्रमाण है। आज उन्हींकी साधना और परमसिद्धिकी चर्चा करके अपनेको पवित्र करना है।

भारतवर्षका दक्षिण प्रान्त बड़ा ही मनोहर है। उसके पश्चिम, पूर्व और दक्षिण ओर आकाशके समान विशाल और नीला समुद्र है। हरे-हरे जङ्गल और ऊँची-ऊँची किंतु स्निग्ध पर्वत-श्रेणियोंसे व्याप्त है वह प्रदेश। सीधे समुद्रमें मिलनेवाली अधिकांश नदियाँ वहीं हैं। और भक्तिकी तो जन्मभूमि ही है वह। ज्ञान और योगके स्रोत भी वहींसे निकलकर हिमालयके उत्तुङ्ग शृङ्गपर आरूढ़ हुए हैं। दक्षिणका गन्धमादन पर्वत, जिसपर भगवान् रामने श्री रामेश्वरकी प्रतिष्ठा की थी, जहाँसे सेतुबन्ध प्रारम्भ हुआ था, आज भी ऐसी दिव्य सुगन्धका विस्तार करता है; जिससे मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जाता। उसी गन्ध-

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मादन पर्वतकी एक गुफा महर्षि उद्दालककी तपोभूमि थी और उसके सामनेका वृक्ष, जिसके नीचे बैठकर वे ध्यान करते थे, प्रति दिन अपने सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षासे वहाँकी भूमिको घुटनों तक ढक दिया करता था। उद्दालक बुद्धिमान् थे, तपस्वी थे, सदाचारी थे। उनके अन्तःकरणमें संसारकी वासनाएँ बहुत ही कम थीं। वे मौन ही रहा करते थे। शास्त्रीय विधानोंके अनुष्ठानसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। वे परमात्माकी प्राप्तिके लिए उत्सुक हो रहे थे। उनके चित्तमें जितने भी विचार आते, वे परमात्मासे सम्बद्ध होते और भगवत्प्राप्ति होने-पर मेरी कैसी स्थिति हो जायेगी—इसके उत्तरमें अनेकों प्रकारकी आनन्दमय स्थितियोंकी उद्भावना किया करते। संसारकी क्षणिकता और परिवर्तनोंसे वे घबराये हुए थे और इनके चक्रसे ऊपर उठकर एकरस वस्तु-स्थिति प्राप्त करनेके लिए व्याकुल हो रहे थे।

वे एक दिन विचार करने लगे—"वह कौन-सी वस्तु है; जिसका साक्षात्कार हो जानेपर जन्म-मृत्युकी भूल-भुलैया समाप्त हो जाती है और फिर शोक, मोह एवं उद्वेगके चिह्न भी अवशेष नहीं रहते? जहाँ सम्पूर्ण भोग-वासनाएँ शान्त हो जाती हैं, एक भी सङ्कल्प नहीं रहता, यह कर चुका और यह करना बाकी है, इस प्रकारकी कर्तव्यबुद्धि निःशेष हो जाती है, वह पद मुझे कब प्राप्त होगा? संसारके प्राणी बहुत महत्त्वपूर्ण समझकर जिसकी प्राप्तिके लिए अपना जीवन खपा रहे हैं, तृष्णा-तरङ्गिणी-के भँवरमें भ्रम रहे हैं, उसको एक उपहासकी वस्तु समझकर, उसका पर्दा फाड़कर कब मैं ऐसी स्थितिमें स्थिर हो जाऊँगा, जब मुझे सम्पूर्ण संसार बाललीलाके समान मालूम पड़ने लगेगा? आज जो मन संसारके झूलेमें झूलता हुआ कभी डरता है, कभी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

रोता है, कभी हँसता है और कभी मूर्छित हो जाता है, वह इस प्रकार धीर, गम्भीर और स्थिर कब हो जायगा, जैसे संसारकी उथलपुथलमें परमात्मा ? वह क्षणं कब होगा, जब मैं संसारके लिए सोया होऊँगा और उस अन्तरात्मामें मेरा अनन्त जागरण होगा, जिसमें सुषुप्तिकी कल्पनाके लिए स्थान ही नहीं है ? मैं जो देखूँगा वह चिन्मय होगा, मेरी दृष्टि चिन्मय होगी, मैं चिन्मय होऊँगा—अजी, 'मैं', 'वह' का भेद नहीं होगा, केवल चिन्मय होगा। वह अनन्त प्रकाश जिसमें कालकी कला नहीं लगती—लगनेकी तो बात ही क्या, रहती ही नहीं; जिसमें देश-विदेशका अपदेश अपना कोई निर्देश नहीं रखता और जिसमें यह 'ना-ना' 'मा-मा' (नहीं-नहीं) का शिशु हो जाता है, वह समस्त आश्चर्योंका एकमात्र उद्गम मैं ही तो रहूँगा। कैसी शान्ति होगी—न इच्छा होगी न अनिच्छा; इच्छा-अनिच्छाकी इच्छा भी जो आज है, उस समय लापता होगी। आजका यह अन्धकारमय जीवन, जो मनोरथोंके उलूकोंका विश्राम-स्थान है; ज्ञान-सूर्यके प्रकाशसे परमोज्ज्वल हो जायगा। यह शरीर किसी कन्दरामें चट्टानकी तरह पड़ा होगा, अन्तःकरण परमात्मासे एक होगा। हाँ, हाँ; उस समय ये सुन्दर पक्षी मेरे सिरपर घोंसले बनाकर अण्डे देंगे और उनके बालक मेरे शरीरपर खेलेंगे और मैं निर्विकल्प समाधिमें स्थित होऊँगा।'

इस प्रकार विचार करते-करते कभी-कभी उनका मन शान्त हो जाता तो कभी-कभी वर्तमान जीवनकी विषमताएँ उन्हें घेर लेतीं और वे उद्विग्न हो जाते। सहज चञ्चल मन कभी-कभी तो उन्हें बैठने ही नहीं देता। कभी चित्त विषयोंकी ओर चला जाता तो वे वलात् उसे अन्तर्मुख करते; मानसिक

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

कल्पनाएँ बढ़ जातीं तो वे उन्हें शान्त करके एक भावमें स्थिर करते। फिर मन बाहर निकल जाता। कभी उनका मन सूर्यके समान प्रखर प्रकाशका अनुभव करता तो कभी अमावस्याकी रात्रिका-सा घना अन्धकार; कभी नींद आजाती, कभी लय हो जाता और कभी तन्द्रा आ घेरती। कभी-कभी उनका मन शुभ—सात्त्विक प्रकाशमें विचरने लगता और नाना प्रकारके दृश्योंको देखकर उन्हींमें उलझ जाता। मन-ही-मन सुन्दर-सुन्दर पर्वत, जङ्गल, झरने और पशु-पक्षियोंकी कल्पना करके उन्हींमें रम-से जाते। जब कोई ठेस लगती, तब एकाएक स्मरण हो आता और वे अपने मनकी गति देखकर आश्चर्य और पश्चात्ताप करते। परन्तु इससे वे हताश नहीं हुए, उनका उत्साह और बढ़ा। साधकोंकी यही प्रकृति है कि उनकी साधनामें जितना ही विघ्न पड़ता है, उतना ही वे और भी द्रुतगतिसे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते हैं।

उद्दालकने एक अत्यन्त एकान्त और परम शान्तिमय कन्दरामें प्रवेश किया। वह कन्दरा वायुसे क्षुब्ध नहीं होती थी। उसमें पशु-पक्षियोंकी गति नहीं थी। और तो क्या, देवता और गन्धर्व भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकते। उसमें कहीं-कहीं हरे-हरे दूर्वादल थे; तो कहीं-कहीं रङ्ग-बिरंगे फूल बिखरे हुए थे। इतनी सुन्दर वह गुफा थी, मानो पूरी-की-पूरी मरकत अथवा चन्द्रकान्त-मणिसे बनी हुई हो। जहाँ-तहाँ ज्योतिर्मय रत्न जगमगा रहे थे। उसमें न गरमी थी न सरदी, वह सब ऋतुओंमें एकरस सुख देनेवाली थी। उद्दालकको वह कन्दरा बहुत पसन्द आयी और उन्होंने कोमल-कोमल कोंपलोंका, रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पोंसे सुसज्जित, आसन बनाया। उसके ऊपर मृगचर्म बिछाकर पवित्र भावसे पद्मासन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बाँधकर वे बैठ गये और सबसे पहले उन्होंने ब्रह्मासे लेकर अपने गुरुतककी परम्पराका स्मरण करके नमस्कार किया। निर्विकल्प समाधिका निश्चय करके वे अपने चित्तको समझाने लगे। उन्होंने अपने मनसे कहा,—रे मूर्ख मन, संसारके व्यापारों-से तेरा क्या प्रयोजन है ? जिन्हें तू आकर्षक समझकर उनकी ओर दौड़ रहा है, वे दुःखके खजाने हैं, उनमें शान्ति नहीं है। तू जिस कल्पवृक्षकी छायामें उज्जीवित हुआ है, उसको छोड़-कर विषवृक्षोंके जङ्गलमें क्यों जाना चाहता है ? चाहे तू पातालमें जा और चाहे ब्रह्मलोकमें, बिना अपने मूलको ढूँढ़ निकाले तुझे शान्ति-सुधाका एक बूँद भी नहीं मिलेगा। तेरी आशा ही तो तेरे दुःखकी जननी है। 'यह प्रिय है, यह अप्रिय है, यह विभाग तेरी कल्पना ही तो है; उन्हीं दोनोंके पाने और हटानेके लिए तू श्रान्त और क्लान्त हो रहा है। तू अन्धा होकर उन विषयोंके लिए लोक-लोकान्तर और जन्म-जन्मा-न्तरमें भटकता रहता है, जो तेरे लिये व्यर्थ है। और जिसमें सुख एवं शान्ति है, जो परमानन्दस्वरूप है, उस समाधिके लिए तूने तनिक भी प्रयास नहीं किया। तू कानका रूप धारण करके मीठे शब्दोंके लिए, त्वक्‌का रूप धारण करके कोमल स्पर्शके लिए, नेत्रका रूप धारण करके सुन्दर रूपके लिए, रसनाका रूप धारण करके चरपरे और रंसीले भोजनके लिए और नासिकाका रूप धारण करके मोहक गन्धके लिए क्रमशः हरिण, हाथी, पतङ्ग, मीन और भौंरेके समान अपने हित-अनहितको भूल गया और जान बूझकर बन्धनका वरण किया। तेरी वासना ही तो तेरे बन्धनका हेतु है। मन ! तू वासनाओंका आवरण छिन्न-भिन्न कर दे। यदि ऐसा नहीं करेगा तो जन्म और मृत्युके चक्रमें अज्ञात कालतक चूर-चूर होता रहेगा। तू मेरी बात नहीं

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सुन रहा है। तेरा नाश अवश्यम्भावी है। विचारके द्वारा स्वयं ही तेरा उच्छेद हो जायगा। अज्ञानका बन्धन ढीला तो पड़ने दे; फिर देखूँगा कि तेरा अस्तित्व कहाँ है। चित्त ! तू विनाशी है, असत् है, मिथ्या है; तुझे उपदेश करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। जब तू उपदेश ग्रहण करता ही नहीं, तब तुझे उपदेश देना व्यर्थ है। तेरा तो त्याग ही होना चाहिए। मैं निर्विकल्प चित्स्वरूप हूँ। न मुझमें अहङ्कार है और न वासना। रे असन्मयचित्त! तू ही अहङ्कार बीज है। तेरे साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। 'यह देह मैं हूँ' यह तेरी कुदृष्टि कितनी मूर्खता-पूर्ण है ! मैं तो अनन्त, अपरिच्छिन्न, एकरस परमतत्त्व हूँ। मैं चित्त अथवा शरीरके अन्दर सीमित कैसे हो सकता हूँ ? चित्त ! तूने वासनाओंको अपनाया है, परन्तु मैंने तुझे और तेरी वासनाओंको छोड़ दिया है। यह कैसा अज्ञान है कि 'मैं शरीर हूँ' ऐसी कल्पना हो गयी है। मैंने पैरके अँगूठेसे लेकर शिखापर्यन्त ढूँढ-ढूँढके देख लिया—'अहम्' नामका कोई पदार्थ नहीं है। मैं समस्त दिशा-विदिशा, काल-अकाल और वस्तु-अवस्तुका अधिष्ठान, चित्स्वरूप हूँ। न मेरी सीमा है न नाम है, न मैं एक हूँ न दो, न मैं महान् हूँ न अणु। इस शरीरमें यह मांस है, यह खून है, ये हड्डियाँ हैं और यह है प्राणवायु—इसमें 'अहम्' क्या है ? शरीरमें प्राणकी शक्ति है, परमात्माका ज्ञान है, शरीरका घटना-बढ़ना है—इसमें 'अहम्' क्या है ? शरीरके एक-एक अवयव पृथक्-पृथक् प्राण और इन्द्रिय पृथक्-पृथक्; मन, बुद्धि, चित्त और वासनाएँ पृथक्-पृथक् .इनमें 'अहम्' क्या है ? मुझ साक्षी-स्वरूपसे ही तो ये और सारे जगत् प्रकाशित हो रहे हैं। हूँ तो केवल मैं-ही मैं; अन्यथा यह सब कुछ नहीं हैं। देह-परिच्छिन्न अथवा जगत्परिच्छिन्न कोई भी 'अहम्' नामकी वस्तु नहीं है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जो वास्तविक 'अहम्' है, उसमें न देह है न जगत्; वह तो विशुद्ध एकरस चैतन्य है। मैं कल्पनावश परिच्छिन्न 'अहम्' का वेश धारण करके सब कुछ करने और भोगने लगा, उलझ गया। मान लिया कि मैं ऐसा ही हूँ। अब वैसा नहीं होगा। यदि मेरे अतिरिक्त कोई परिच्छिन्न वस्तु है तो वह रहे या जाय, मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं। बालकके लिए जैसे बैताल भयंकर है, वैसे ही अज्ञानीके लिए यह जगत्। मैं मृगतृष्णामें समुद्र देख रहा था। इन्द्रियोंको और उनके विषयोंको, जो हैं ही नहीं, अपना समझ रहा था। वह 'अहम्' क्या था? वह द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता और मन्ता कौन था? अज्ञानने ही तो 'अहम्'का रूप धारण किया था। ज्ञानसे उसका मूल ही उखड़ जाता है, वासनाका बीज शक्ति-हीन हो जाता है, शरीरकी क्रियाएँ फलदानमें समर्थ नहीं रहतीं। बस, यही दुःखका और सांसारिक सुखका भी आत्यन्तिक नाश है। बच्चे जैसे मिट्टीके खिलौने रखते हैं और उनके फूट जानेपर रोते हैं, वैसे ही चित्त वासनाएँ रखता है और उनके प्रतिकूल क्रिया होनेपर रोता है। दुःखका निमित्त ही वासना है। परन्तु तत्त्व-वेत्ताके लिए यह सब कुछ है ही नहीं; जो कुछ है, अपना स्वरूप है। हे इन्द्रियों, हे चित्त, तुम्हें तुम्हारी मूढता और तुम्हारा मिथ्यात्व मालूम हो गया है। अपने व्यक्तित्व और अहंताको छोड़कर मुझ अनन्त सत्तामें मिल जाओ। देखो देखो, एकरस, अनन्त परिपूर्ण, विज्ञानानन्द घनस्वरूप मैं ही स्थित हूँ। अपने मूल और वास्तविक स्वरूप मुझको जानो। बस, इसीमें तुम्हारी कृतकृत्यता है।'

इस प्रकार विचार करते-करते उद्दालककी अवस्था और भी गाढ़ हो गयी। ज्यों-ज्यों प्राक्तन संस्कारोंके अनुसार कल्पित

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सत्यका आवरण दूर होने लगा त्यों-त्यों वे सत्यके निकट पहुँचने लगे, वस्तु-तत्त्व उज्ज्वलरूपमें उनके सामने प्रकट होने लगा। उन्होंने निश्चय किया—'आत्माका स्वरूप अनन्त और असीम है; वह चैत्यरहित चित् है, उसमें न वासना है और न उससे होनेवाले दोष ही। वही तो मैं हूँ। ये जो संसारके भय हैं, ये तो वासनामूलक हैं अतएव निर्मूल हैं; क्योंकि वासनाओंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वासनाओंका दादा अज्ञान भी मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। अज्ञान और उसके बाल-बच्चे (अहंकारसे लेकर विषयपर्यन्त) रहें या न रहें, मैं निर्लिप्त चैतन्य हूँ। क्या जन्म और मृत्यु मेरा स्पर्श कर सकते हैं? नहीं, नहीं, सब कुछ एकमात्र अद्वितीय आत्म-चैतन्य है। जब चित् ही 'सब'से रहित सबका जीवन है, तब छोटे-छोटे प्रतीयमान जीवनाभासोंका क्या प्रयोजन है? और ऐसी स्थितिमें मृत्युका क्या भय है? क्या इसके अतिरिक्त और किसी दिव्य जीवनकी आवश्यकता है? अजी, जीवन और मृत्यु मनोविकल्पमात्र हैं। 'मैं देह हूँ' यह भाव ही जन्म-मृत्युका कारण है। आत्मामें अहंभाव ही नहीं है, तब जन्म-मृत्यु किसके? देह जड़ है, विचार द्वारा मनका नाश हो जाता है; फिर अहंभाव किसमें है? तीनों गुण प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहके रूपमें स्थित हैं। प्रकृति-प्रकृतिमें विद्यमान है, ब्रह्म ब्रह्मस्वरूपमें नित्य स्थित है; इनमें कौन किसको 'अहम्' कहता है? यदि अहङ्कार है तो उसका स्वरूप क्या है? उसका निर्माण किसने किया? उसका रङ्ग-रूप क्या है? किस वस्तुका विकार है? 'अहम्' पदसे किस वस्तुका ग्रहण होता है? और 'अनहम्' पदसे किसका त्याग होता है? इसलिए यह 'अहम्' न भाव है न अभाव। यह कुछ है ही नहीं। ऐसी स्थितिमें किससे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

किस रूपमें कौन-सा सम्बन्ध हो सकता है? जब अपनेसे अतिरिक्त किसी भी वस्तुसे कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता तब दूसरेका बोध, दूसरेका भाव अथवा दूसरेकी क्रिया कैसे हो सकती है? इसलिए द्वैतकी कल्पना सर्वथा अज्ञानजन्य और अलीक है। मेरा अस्तित्व ब्रह्मका अस्तित्व है। मैं ही सत् हूँ। इसमें अहंभाव और शोकके लिए बिल्कुल स्थान नहीं है। जगत् मनकी एक प्रवञ्चना है और मन अज्ञान है। अज्ञान एवं उसका विनाश स्वयं ज्ञान भी मैं ही हूँ।

"अहंकार एक भ्रम है। इसीने अपने स्वरूपको 'मम'के रूपमें ग्रहण किया। स्वरूपमें अन्यत्व और फिर ममत्व और परत्व—यही जगत्की धारणाएँ हैं; परन्तु जब परम वस्तु स्पन्द, परिणाम, वस्त्वन्तर और उसकी कल्पनासे रहित है, तब यह अहंकार कहाँ और उसके अभावमें यह प्रपंच कैसा? मुझे दृढ़ बोध हो रहा है—यह सब मैं ही हूँ। वर्तमान समयमें जिसे घट कहा जाता है, वह अनादि पूर्वकालमें जैसे मिट्टीमें स्थित था; वैसे ही आज भी है और आगे भी रहेगा, जैसे जल-तरङ्ग उठनेके पूर्व जल-रूपमें स्थित था, है और रहेगा, वैसे ही यह शरीर ब्रह्ममें था, है और रहेगा। ब्रह्म-व्यतिरिक्त जगत् और शरीर कोई अस्तित्व नहीं रखते। इसमें अन्तर और बाहरका भेद काल्पनिक है। स्वप्नका बाहर भीतर ही है। उसके बाहर और भीतर दोनों ही एक स्तरमें हैं। मृगतृष्णाके जलकी मछली, अपनी लम्बाई-चौड़ाई, फँसना और छूटना मृगतृष्णासे पृथक् नहीं बना सकती; इसी प्रकार यह जो कुछ प्रतीत हो रहा है, ब्रह्मसे पृथक् नहीं है।

'वासनाओंका अन्यत्व चिराभ्यस्त है। जबतक मनकी पृथक् सत्ताका बाध नहीं होगा, तबतक वासनाओंका पूर्ण क्षय

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नहीं हो सकता। मनोनाश और वासनाक्षय परस्पर सापेक्ष हैं और तत्त्वज्ञान इनकी प्रतिष्ठा है। तत्त्वज्ञान अखण्ड स्वातन्त्र्य है, मनोनाश और वासनाक्षय उसके सहकारी हैं। यदि तत्त्व-ज्ञानका सुख प्राप्त करना है, तो मनोनाश करना ही होगा। ज्ञानकी रक्षा, उसमें स्थिति, तपस्या, दृष्ट दुःखका नाश और जीवन्मुक्ति-सुखकी उपलब्धिके लिए मनोनाश करना उचित है। मनोनाशका स्वरूप क्या है? उसके अस्तित्वका बाध ही उसका नाश है। शरीरकी कोई परवा नहीं है, मनकी कोई परवा नहीं है, न अपना कर्तृत्व है और न भोक्तृत्व। परन्तु प्रतीयमान मन यदि सहज भावसे ही निर्वाण चाहता है तो चाहे और उसके लिए साधना करे। इसमें तो अपनी निरपेक्षता ही है। मनके लिए जब कोई प्राप्तव्य वस्तु नहीं रही, तब वह मूलहीन और शाखाहीन होकर निर्वाणको प्राप्त हो जाय—यह स्वभावसिद्ध ही है। मन! यह एक भ्रम है कि तू निर्वाण नहीं है। वास्तवमें तू निर्वाणस्वरूप है। परन्तु यदि तू अपनेको ऐसा नहीं समझता है तो आ, तू मुझ निर्वाणमें स्थित हो जा; मैं स्वयं निर्वाण हूँ।"

उद्दालककी विशुद्ध बुद्धिने यही निर्णय किया कि मनको निर्वाणमें स्थित हो जाना चाहिए। पद्मासन बँधा हुआ था, आँखें अधखुली थीं। उन्होंने ॐकारका उच्चारण प्रारम्भ किया। ॐकारके दीर्घ घण्टानादके समान तानस्वरसे उच्चारण करते-करते वह ध्वनि उनके मूर्द्धाका स्पर्श करने लगी और उनकी सुप्त चेतना जागरित होकर आकाशके समान निर्मलरूपसे विस्तृत हो गयी। ॐकारकी साढ़े तीन मात्राओंमें-से जब उन्होंने प्रथम मात्राका चिन्तन किया और उसकी अन्तर्ध्वनिके साथ ही रेचक प्राणायाम किया, तब सारा शरीर प्राणवायुसे रहित

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हो गया और उनके प्राणवायु चिद्रसपूर्ण आकाशमें स्थित हो गये। अन्तःस्थित अग्निने प्रज्वलित होकर उनके पाप-पुण्यमय शरीरको जला दिया और उन्होंने भावनासे ही प्रणवकी दूसरी मात्राका चिन्तन करते हुए निष्कम्प कुम्भक प्राणायामसे प्राणोंको स्तम्भित कर दिया। बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर, दिशा-विदिशा-कहीं भी उनके प्राण उस समय क्षुब्ध नहीं थे। पाप-पुण्यमय शरीरको भस्म करनेवाली अग्नि शान्त हो गयी, बरफके समान श्वेतवर्ण उनके शरीरकी राख बच रही। उस समय उनकी भावनासे ऐसा दीखता था कि उनके शरीरकी हड्डियाँ कर्पूर-चूर्णकी शय्यापर शयन कर रही हैं। धीरे-धीरे वह भस्म और अवशिष्ट हड्डियाँ भी विलीन हो गयीं और उन्होंने प्रणवकी तीसरी मात्राका चिन्तन करते हुए पूरक प्राणायाम किया। ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके प्राण चेतनाकी सुधा-धारामें डूब गये हों। अत्यन्त शीतलताका अनुभव हुआ। उनके प्राणवायुने चन्द्रमण्डलका स्वरूप धारण किया; वह चन्द्रमण्डल अमृतका समुद्र है। जैसे धर्ममेघ-समाधि ही लग गयी हो! उनकी उस आनन्दमेघ अवस्थासे अमृतकी अनेकों धाराएँ प्रवाहित होने लगीं और वे उनके शरीरकी अवशिष्ट भस्मपर पड़ने लगीं। अमृतधाराके संयोगसे वह भस्म चन्द्रमाके समान सुन्दर दीखती हुई चतुर्बाहुके रूपमें प्रकट हो गयी। सुन्दर शरीर, खिले हुए कमल-सी आँखें—मानो साक्षात् नारायण ही मूर्तिमान् हो गये हों। मधुधारासे आप्लावित प्राणोंने उनके शरीरमें प्रवेश किया और चक्रोंमें विस्तृत कुण्डलिनीको परिपूर्ण कर दिया। उद्दालकका यह भावनामय दिव्य शरीर समाधि लगानेकी योग्यतासे युक्त होकर अत्यन्त दृढ़ भावसे स्थित हो गया।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

पद्मासन बँधा हुआ था और आँखें अधखुली थीं। उन्होंने इन्द्रियोंको खींचकर उनके गोलकमें स्थापित किया। भूत, भविष्य और निकट-दूरकी वस्तुओंमें दौड़नेवाले चित्तको हृदयमें स्थिर किया, प्राण और अपानको सम करके सुषुम्नाको सञ्चालित किया। इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके विषयसे पृथक् करके बाह्य और आन्तर संस्पर्शोंको विलीन कर दिया। कुछ समय तक विकल्प उठते रहे। परन्तु उन्होंने धीरे-धीरे सबको नष्ट कर दिया। विकल्पोंके क्षीण होनेपर उनके हृदयाकाशमें घने अन्धकारका उदय हुआ और उनकी विवेकशक्ति लुप्त-सी होने लगी, परन्तु वे जागरित और सावधान रहे। उस अन्धकारके भी अन्दर रहनेवाले सूर्यने उसको छिन्न-भिन्न कर दिया और जैसे प्रातःकाल धीरे-धीरे अन्धकारका नाश होकर सूर्यका उदय होता है, वैसे ही एक अत्यन्त रमणीय तेज-पुञ्ज उनके सामने प्रकट हुआ। यद्यपि यह तेज-पुञ्ज अपार था, तथापि उनके अनन्त स्वरूपमें—जिसका कि उन्हें बोध था—इसकी कोई महत्ता नहीं थी। इसलिए उसका स्मरण होते ही यह तेज-पुञ्ज सत्त्व-हीन हो गया और उनका मन निर्विषय होकर लयको प्राप्त हो गया। परन्तु यह लय कोई वाञ्छनीय अवस्था नहीं है। उन्होंने मनको इससे जगाया और जागते ही मनके सामने बृहत् आकाश उपस्थित हुआ। 'उस शून्यमें ही तो यह सब कुछ फैला हुआ है। इस आकाशका बाध करते ही पुनः निद्रा-सी जड़-समाधि और तत्पश्चात् कुछ अनवधान-सी दशा प्राप्त हुई। परन्तु उद्दालक इस प्राकृतिक जड़ताकी घन और शिथिल दोनों ही अवस्थाओंको पार करके एक क्षणके लिए चित्स्वरूपमें स्थित हुए और दूसरे ही क्षण उस स्थितिसे च्युत हो गये। बार-बार उसपर आरूढ़ होते रहनेसे उसका रस मिला और आस्वादन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करनेवाला रसमय हो गया। यह चिन्मयता ही अथवा रसमयता ही सविकल्प समाधि है। यह विशुद्ध रसस्वरूप नहीं है, किन्तु रसप्रचुर है; इसलिए सूक्ष्मरूपसे इसमें त्रिपुटी विद्यमान रहती है। इसके परिपाकसे चित्त चित्तत्वसे रहित होकर चित्-तत्त्व हो जाता है। उसमें न चैत्य है और न चित्त, केवल चित्-ही-चित् है। जैसे तरङ्ग, फेन आदिसे रहित अनन्त शान्त महासागर हो, जिसमें बाहर-भीतर, स्थूल-सूक्ष्म, आदि-अनादिका भेद नहीं किया जा सकता, वैसे ही वह परम वस्तु है और चित्तत्वहीन होकर चित्तका वही हो जाना, जिसमें त्रिपुटीका लेश भी नहीं रहे, निर्विकल्प समाधि है। स्वरूपबोध और स्वरूपस्थितिका यही एकत्व है। इस शुद्ध विज्ञान-स्वरूप चिदाकाशमें स्थित होकर उद्दालक आनन्दस्वरूप हो गये और भेदवर्जित सत्ता-सामान्यके रूपमें स्थित हो गये। यही योगकी पराकाष्ठा है।

उद्दालकको इस पदपर स्थित होनेमें किसी विघ्न-बाधा अथवा प्रलोभनोंका सामना नहीं करना पड़ा हो, ऐसी बात नहीं। ऐसी-ऐसी सिद्धियाँ उनके सामने आयीं, जो इन्द्र, सूर्य और ब्रह्माका पद देनेके लिए बहुत ही आग्रह करती थीं। अप्सराएँ उन्हें घेरकर खड़ी हो जातीं। परन्तु गम्भीर एवं विचारशील पुरुष जैसे बालकोचित खिलौनेके लिए क्षुब्ध नहीं हुआ करते, वैसे ही उन सिद्धियोंसे उनका चित्त तनिक भी प्रभावित नहीं हुआ। जिस आनन्दमन्दिरमें वे निवास कर रहे थे, जिस आनन्दसरोवरमें वे क्रीड़ा कर रहे थे, उसके सामने ब्रह्मलोकके आनन्द भी वैसे ही थे, जैसे महान् समुद्रमें एक तुच्छ तिनका। वे आनन्दके आस्वादक नहीं थे, बल्कि उस आनन्द, आनन्दसे अतीत पदमें थे, जिसमें एक क्षणके लिए स्थिति हो जानेपर और

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

किसी वस्तुकी महत्ता अथवा सत्ता उसके अतिरिक्त नहीं रह जाती। फिर दृश्य आये कहाँसे? और उनमें कोई प्रलोभित हो कैसे? उनकी यह समाधि छः महीनेतक लगी रही। जब उन्होंने आँखें खोलीं; तब देखा कि वसिष्ठ आदि बड़े-बड़े मुनिगण, इन्द्रादि देवता हाथ जोड़े उनके सामने खड़े हैं और बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रणाम करके प्रार्थना कर रहे हैं कि—भगवन्! आप कृपादृष्टिसे हम लोगोंको कृतार्थ कीजिये। दूसरी तरफ जो अप्सराएँ थीं, उन्होंने अपनी सेवा स्वींकार करनेके लिए विशेष आग्रह किया। उद्दालक सबका आतिथ्य-सत्कार करके, 'अब आप लोग जा सकते हैं'—ऐसा कहकर अपने काममें लग गये। न तो उनका अभिनन्दन ही किया और न त्यागका ही आग्रह किया। वे लोग कुछ दिनों-तक उनकी सेवा करके अपने-अपने स्थानको लौट गये।

जीवन्मुक्त उद्दालक यथाप्रारब्ध कभी जंगलोंमें और कभी ऋषियोंके आश्रमोंमें निवास करते। कभी-कभी वे हिमाचल, कैलास, विन्ध्याचल आदि पर्वतोंपर घूमते; तो कभी सुन्दर उद्यानों और समुद्रपरिवेष्टित द्वीपोंमें भी। उनके लिए नगर और जंगल, संपत्ति और विपत्ति—दोनों ही एक-से थे? उनकी समाधि कभी महीनोंमें टूटती तो कभी वर्षोंमें, कभी वे समाधिस्थ देखे जाते थे; तो कभी व्यवहारमें संलग्न। उन्हें समत्व प्राप्त हो गया था। संसारकी विभिन्नताएँ और विषमताएँ उनके लिए मिट चुकी थीं। उनकी एक-एक क्रिया संसारके लिए वैसे ही थी, जैसे शिशुके लिए माताकी। उनकी समाधि संसारके लिए थी और व्यवहार भी। उनके मातृत्व और समत्व अबाधित सत्ताके ही अभिव्यक्त रूप थे। उनकी सत्ता ही जगत्की दृष्टिसे एक महत्ता थी। वे स्वयं महान् चित् थे। वे स्वयं एक सामान्य सत्ता थे।

● ● ●

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यह सत्तासामान्य क्या है ? यह परिपूर्ण ब्रह्म ही है। पहले चेत्यसे चित्का विवेक कर लिया जाय। चित्त कभी चेत्यमय न हो, चिन्मय हो। उसका यह जागरण साक्ष्यसे पृथक् साक्षित्वकी अनुभूति है। परन्तु यह अनुभूति साक्ष्यको अपनेसे पृथक् नहीं रहने देती। एक दूसरेको देख ही नहीं सकता। स्वप्नके द्रष्टा और दृश्य एक ही तत्त्व हैं। उनमें सूक्ष्म-स्थूल और बाह्य-आन्तरका भाव कल्पित है। तत्त्वदृष्टिसे कार्य-कारण-भाव बन नहीं सकता। अवश्य ही वहिर्मुखताकी निवृत्तिके लिए अन्त-र्मुखता आवश्यक है। परन्तु जिसमें अन्तर और वहिःका भेद ही नहीं, उसमें अन्तर्मुखता क्या और वहिर्मुखता क्या ? सब एकरस, अनन्त और अद्वितीय है। समुद्रका बाहर-भीतर हो सकता है, परन्तु आकाशका भीतर-बाहर क्या ? आकाशके स्थूल-सूक्ष्म स्तर सम्भव हैं; परन्तु परिणामके लिए देश, काल और निमित्त न रखनेवाले निर्विकार तत्त्वमें सूक्ष्मता और स्थूलता क्या ? सब आत्मस्वरूप ही है, चाहे प्रतीत हो या अप्रतीत। यही सामान्य सत्ता है, जो कि निर्विशेष है। इसे केवल बोधवान् पुरुष ही जानते हैं और यही उनका स्वरूप है। यही सत्तासामान्य निर्विशेष सम है। योग और भोग, समाधि और विक्षेप एक हैं, क्योंकि वे ज्ञानीकी दृष्टिमें निर्विशेष हैं। यह दृष्टि अन्तःशीतलताकी जननी है। दूसरोंकी दृष्टिमें जो वहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है, अथवा बहुत निम्न कोटिका है—दोनों ही उसके लिए अपने स्वरूप हैं। कोई भी उसे आश्चर्यचकित अथवा क्षुब्ध नहीं कर सकता। इसी सत्तासामान्यमें उद्दालककी स्थिति थी, यही उनका स्वरूप था और यही वास्तवमें स्वरूप है। अबतक जितने भी महापुरुष हुए हैं; वे इसमें स्थित हुए हैं और जो हैं, वे स्थित हैं और जो आगे होंगे, उन्हें स्थित होना होगा।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आगे चलकर उनकी स्थिति ऐसी हो गयी कि दूसरोंकी प्रेरणासे वे कुछ करते थे। उनका उठना, बैठना, सोना, चलना दूसरोंकी इच्छाके अनुसार ही होता था। थोड़े ही दिनोंमें ऐसी स्थिति हो गयी कि—परप्रेरणाका भी उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। एक बार उनका आसन बँधा, प्राण सम हुए, मन शून्य हुआ और वे सर्वांशतः विदेहमुक्तिमें स्थित हो गये। लोगोंकी दृष्टिमें जो उनका शरीर था, वह गिर गया और थोड़े ही दिनोंके बाद केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ शेष रह गयीं। बहुत दिनोंके बाद महामाया श्रीचामुण्डादेवीने आकर उनकी हड्डीको अपने मुकुटमें लगा लिया और अपनेको कृतकृत्य माना। महापुरुषके सम्बन्धकी वस्तुओंका ऐसा ही महत्त्व है।

जिस शरीरको संसार उद्दालक समझता था, अब वह अवश्य ही नहीं है; यथापि उद्दालकका जो वास्तविक स्वरूप है, वह आगे भी रहेगा। उन्होंने जिस विचार, त्याग, वैराग्य, साधना आदिके द्वारा जिस क्रमसे अपने स्वरूपकी उपलब्धि की थी वह हमारे सामने है और हमारा वास्तविक स्वरूप भी वही है। यदि उनके इस साधनक्रमको आदर्श मानकर हम भी उस स्वरूपबोध और स्थितिको प्राप्त कर सकें; तो हम भी वैसे ही और वही हो सकते हैं, जो परम सत्य है और कल्पना जिसे छू नहीं सकती। महापुरुषकी वृत्तियोंका यह जीवन हमारे लिए मार्गदर्शक हो और हम सत्यका साक्षात्कार करके कृतकृत्य हों—यही प्रभुके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपौरुषेयताका अभिप्राय

वेद शब्दका अर्थ ज्ञान है। वेद-पुरुषके शिरोभागको उपनिषद् कहते हैं। उप (व्यवधानरहित) नि (सम्पूर्ण) षद्[1] (ज्ञान) ही उसके अवयवार्थ हैं। अर्थात् वह सर्वोत्तम ज्ञान जो ज्ञेयसे अभिन्न एवं देश, काल, वस्तुके परिच्छेदसे रहित परिपूर्ण ब्रह्म है, 'उपनिषद्' पदका अभिप्रेत अर्थ है। इसलिए जबतक ज्ञानके स्वरूपका ठीक-ठीक विचार न कर लिया जायगा, तबतक उपनिषद् क्या हैं, यह बात स्पष्ट नहीं हो सकेगी।

पहली बात—ज्ञान स्वतःप्रमाण है, परतःप्रमाण नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी पदार्थका यथार्थ निश्चय करनेमें ज्ञान ही अन्तिम निर्णायक होगा। सम्पूर्ण व्यवहार अपने ज्ञानके आधारपर ही चलता है। किसी भी विषयके होने एवं न होनेका निर्णय करनेका ज्ञान ही अन्तिम कारण होगा। उदाहरणार्थ—विषयकी सत्ता इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंकी मनसे, मनकी बुद्धिसे और बुद्धिकी ज्ञानस्वरूप आत्मासे निश्चित होती है। अज्ञानका अनुभव भी ज्ञान ही है; परन्तु ज्ञानको प्रमाणित करनेके लिए क्या ज्ञानसे भिन्न पदार्थकी आवश्यकता होगी? कदापि नहीं।

प्रमाता, प्रमाण प्रमेयकी त्रिपुटी ज्ञानके द्वारा ही प्रकाशित होती है। इसलिए ज्ञानकी सिद्धिके लिए उनकी कोई अपेक्षा

१. गत्यर्थक षद् धातु।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नहीं है। यों भी कह सकते हैं कि इस त्रिपुटीके भाव और अभावका प्रकाशक ज्ञान ही है। वें रहें तब भी ज्ञान है और न रहें तब भी ज्ञान है। ज्ञानके बिना उन्हें अनुभव ही कौन करेगा। त्रिपुटीमें ज्ञानका अन्वय है और ज्ञान त्रिपुटीसे व्यतिरिक्त है। इसलिए ज्ञानकी सत्ता अखण्ड है। प्रमाणोंके द्वारा ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती। ज्ञानसे ही समस्त प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह कि ज्ञानका प्रामाण्य स्वतः है, परतः नहीं।

दूसरी बात—ज्ञान स्वयं प्रकाशित है। यह कर्ता, करण, क्रिया एवं फलके अधीन नहीं है। कर्ता करोड़ प्रयत्न करके भी स्थाणु-ज्ञानको पुरुष-ज्ञान नहीं बना सकता। मान्यता कर्ताके अधीन होती है। वह अपनी बनायी हुई वस्तुको गणेश माने, सूर्य माने, बादमें फेरफार कर दे या बिल्कुल ही छोड़ दे—इन सब बातोंमें स्वतन्त्र होता है। परन्तु यह ज्ञान नहीं है, यह तो कर्ताकी कृति है, जिसको वह स्वयं गढ़ता है और बादमें स्वतन्त्र मान लेता है। ये मान्यताएँ प्रत्येक कर्त्ताकी, सम्प्रदायकी, जातिकी और राष्ट्रकी अलग-अलग हो सकती हैं और होती हैं, परन्तु ज्ञान सबका एक होता है। स्थाणुको भिन्न-भिन्न मनुष्य चोर, सिपाही अथवा भूतके रूपमें मान सकते हैं। परन्तु ज्ञान सबका एक ही होगा कि यह स्थाणु है। पुरुष-भेदसे ज्ञानमें भेद नहीं हो सकता। क्योंकि किसी भी पुरुषके द्वारा अथवा पुरुषविशेष द्वारा ज्ञानका निर्माण अथवा रचना नहीं होती। यहाँतक कि ईश्वर भी ज्ञानका कर्ता नहीं होता। वह तो स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। यदि ईश्वर ज्ञानका कर्ता हो तो ज्ञानरूप कर्मके पूर्व ईश्वरमें ज्ञानका अभाव स्वीकार करना पड़ेगा। परन्तु ज्ञानका अभाव किसी भी प्रमाण अथवा अनुभवसे सिद्ध

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नहीं हो सकता। वह प्रमाण या अनुभव भी तो ज्ञानरूप ही होगा। अभिप्राय यह है कि ज्ञान साधना-साध्य नहीं है, सिद्ध है। उसके कारणके रूपमें अज्ञानकी अथवा ज्ञानान्तरकी कल्पना नितान्त असंगत है। इसलिए ज्ञान स्वयंप्रकाश है।

तीसरी बात—ज्ञानकाल परिच्छिन्न नहीं है। जब हम यह सोचने लगते हैं कि यह ज्ञान भूत है और यह ज्ञान भविष्य है, तब हम मानो यह स्वीकार कर लेते हैं कि कालकी धारामें ज्ञानका उदय एवं विलय हुआ करता है अर्थात् ज्ञान क्षणिक है। परन्तु यह क्षण ही क्या है; जिसकी पृथक्ताका आरोप ज्ञानपर किया जाता है। प्रश्न यह है कि काल सावयव है अथवा निरवयव ? यदि निरवयव है तो उसमें भूत, भविष्य एवं कला-काष्ठा आदिके भेद ही सम्भव नहीं हैं, वह ब्रह्म ही है। यदि सावयव है; तो ज्ञान उसके भिन्न-भिन्न अवयवोंका प्रकाशकमात्र होगा और प्रकाश्यगत भेद प्रकाशकपर आरोपित नहीं किया जा सकेगा। जैसे घट-पटादिके भिन्न-भिन्न होनेपर भी उनको प्रकाशित करनेवाले प्रकाशमें भेद-कल्पनाका कोई प्रसंग नहीं है। ऐसे ही कला-काष्ठा आदि रूप कालके अवयवोंमें भेद होनेपर भी उनके प्रकाशक ज्ञानमें भेद-कल्पनाका अवसर नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि कालभेदकी कल्पना ही निर्मूल है। कल्पना करें कि—क्या कभी कालका अभाव था या कालका अभाव होगा; जिस कालमें हम कालके अभावकी कल्पना करेंगे, वह भी काल ही होगा और कालके अभावकी कल्पनाको निवृत्त कर देगा। अभावरहित वस्तु निरंश होती है। गुणन अथवा विभाजन केवल सांशवस्तुमें हो सकता है, निरंशमें नहीं। इसलिए अभावरहित कालमें कला-काष्ठादिरूप अवयवके आधारपर भूत-भविष्यकी कल्पना करना निःसार है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

तब ये जो भूत-भविष्य मालूम पड़ते हैं, वे हैं क्या ? संविन्मात्र हैं ! कोई भी संविन्मात्र वस्तु संवित्को परिच्छिन्न नहीं बना सकती। इसलिए ज्ञान काल-परिच्छिन्न नहीं है।

चौथी बात—ज्ञानमें देश-परिच्छेद भी नहीं है। ज्ञानमें कालपरिच्छेदका निषेध करते समय यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि यह जो धारा अथवा क्रमकी संवित् है, यह कालनिष्ठ नहीं है, संविन्मात्र ही हैं, जैसे स्वप्नके पचासों वर्ष कालके अवयव नहीं हैं, संविद्रूप ही हैं। उनमें भूतकी स्मृति, भविष्यत्की कल्पना और ज्ञानके द्वितीयत्व-सद्वितीयत्वकी प्रतीति संविन्मात्र ही है, वैसे ही यह जो दैर्घ्य-विस्तारकी कल्पना हो रही है, सो भी संवित्से भिन्न नहीं है।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर आदिके रूपमें प्रतीयमान देशभेद देश-निष्ठ हैं अथवा पृथिवी, सूर्य, ध्रुव, आदि ग्रहनक्षत्रनिष्ठ हैं ? यह स्पष्ट है कि इस भेद-कल्पनाका कारण ध्रुवादि ग्रहनक्षत्र हैं, देश नहीं। तब क्या अन्यगत भेदका अन्यपर आरोपित करना न्यायोचित है ? कदापि नहीं। कालके समान ही कहीं भी देशका अभाव नहीं है। जिस देशमें देशके अभावकी कल्पना की जायगी, वह भी देश ही होगा। अभावरहित देश ब्रह्म है। पूर्व, पश्चिम आदि एवं दैर्घ्य-विस्तार आदिकी कल्पना वस्तुनिष्ठ नहीं; संविन्मात्र है, ठीक वैसी ही जैसी स्वप्नदेशकी लम्बाई-चौड़ाई। स्वयंप्रकाश ज्ञानके द्वारा प्रकाशित देशभेद ज्ञानका भेदक नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान देश-परिच्छेदसे रहित है।

पाँचवीं बात—विषयपरिच्छेद भी ज्ञानका परिच्छेदक नहीं है, सबसे पहले तो विचार करने योग्य यह है कि विषय देश-काल-परिच्छेदके आश्रित हैं या नहीं ? जब भी कोई विषय प्रकाशित होगा, अपनेको किसी न किसी काल और देशमें

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकाशित करेगा। देश और कालभेदकी कल्पनाके बिना विषयकी प्रतीति नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार विषयभेदके बिना देश और कालकी भी प्रतीति नहीं हो सकती। जब देश और कालके भेद-ही कल्पित हैं, तब उनके आश्रयसे प्रतीत होनेवाले विषय अकल्पित कैसे हो सकते हैं?

ये पृथक्-पृथक् प्रतीयमान विषय सन्मात्र ही हैं या और कुछ? यदि सन्मात्र ही हैं, तो इनमें भेदकी कल्पनाका क्या आधार है. फिर तो इन्हें त्रिकालाबाध्य सत्तासे भिन्न समझा ही नहीं जा सकता। और यदि ये सन्मात्रसे भिन्न हैं तो इन्हें नितान्त असत् कहनेमें क्या आपत्ति है? सत् और असत्, भाव और अभावका मिश्रण तो कभी हो ही नहीं सकता। अब यह कल्पना करें कि ये भिन्न-भिन्न विषय सत्ताके विशेष-विशेष रूप हैं; परन्तु यह बात भी निराधार है। बिना देश-कालका भेद सिद्ध हुए सत्तामें भेद सिद्ध करनेकी कोई युक्ति नहीं है। सत्ताका परिणाम स्वीकार करनेपर भी परिणामकी पूर्वावस्था, उत्तरावस्था, क्रम आदि अपेक्षित होंगे। इस प्रकार तो सत्ताका त्रिकालाबाध्यत्व ही कट जायगा और शून्यवाद, क्षणिक विज्ञानवाद अथवा सर्वोच्छेदवादका प्रसङ्ग होगा। यदि यह कल्पना करें कि सत्ताका एक अंश तो स्थिर है और दूसरे अंशमें वह विषयोंका आरम्भ कर रही है या उनके रूपमें परिणत हो रही है। तो यह अंशभेदकी कल्पना सर्वथा उपहासास्पद होगी। जो वस्तु एक अंशमें विदीर्ण हो रही है, वह दूसरे अंशमें नित्य नहीं हो सकती। अंश-भेद तो असिद्ध है ही। इसलिए सत्तामें विशेष भी उपपन्न नहीं होता। विषयोंकी उत्पत्ति सत्से, सदसत्से अथवा उनसे भिन्नसे किसी भी प्रकार संगत नहीं है। जिनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रयत्न ही असिद्ध

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

है, जिनका स्वयं अपने अधिष्ठानमें ही अत्यन्ताभाव है, ज्ञानके बिना जिनकी कल्पना ही नहीं हो सकती, ऐसे विषयोंके द्वारा भी ज्ञान परिच्छिन्न नहीं हो सकता।

छठी बात—ज्ञानमें ज्ञातृत्व और ज्ञेयत्वका भेद भी औपाधिक ही है। देश-काल और वस्तु भेदका निषेध हो जानेपर ज्ञानसे पृथक् ज्ञेयकी उपस्थिति अपने आप ही कट जाती है। ज्ञेयके बिना ज्ञातृत्वके व्यवहारकी सिद्धि नहीं हो सकती। ज्ञेय और ज्ञाता दोनों ही एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं; परन्तु ज्ञान दोनोंकी, दोनोंमें-से किसी एककी अथवा और किसी अन्यकी अपेक्षा रक्खे बिना स्वतःसिद्ध है। यदि ज्ञेयरूप विषय भी ज्ञानके पूर्व सिद्ध है, ऐसा माना जाय तो अनुभूत होनेके कारण वह केवल कल्पना होगी। अनुभवके बिना पदार्थकी सिद्धि नहीं हो सकती। यह जो भिन्न-भिन्न विषय और इनकी समष्टि ज्ञेय रूपसे पृथक् प्रतीत होती है, वह क्या ज्ञानसे बहिर्देशमें है अथवा ज्ञानके अन्तर्देशमें ? पहली बात तो यह है कि ज्ञानमें बहिर्देश और अन्तर्देशकी कल्पना नितान्त असंगत है। दूसरी यह कि ज्ञेय विषयको बहिर्देशमें माननेपर उसके साथ ज्ञानका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि अन्तर्देशमें ही मानें तो ज्ञानके साथ व्यापक-व्याप्य-भाव सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ेगा। यह सम्बन्ध भी ज्ञानको विषयका उपादान कारण माने बिना सम्भव नहीं है। तब क्या ज्ञान परिणामको प्राप्त होकर विषयका रूप ग्रहण करता है ? ऐसी स्थितिमें परिणामकी एक धारा अथवा क्रम स्वीकार करना पड़ेगा। यह बात तभी स्वीकार की जा सकती है, जब कालकी क्षणिकताका आरोप उसके प्रकाशक ज्ञानपर किया जाय; परन्तु अध्यस्तके गुण-दोष अधिष्ठानका स्पर्श भी नहीं क[रते]

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सकते। आदिरहित, अन्तरहित ज्ञानमें विषयकी उपस्थितिके लिए एक क्षण अथवा भिन्न-भिन्न क्षण हैं ही नहीं। यह भी एक प्रश्न है कि विषय सम्पूर्ण ज्ञानमें हैं अथवा ज्ञानके एक अंशमें। ज्ञानमें अंशता, पूर्णता आदि तो कल्पित हैं। फिर यदि ज्ञानका परिणाम मानें भी तो क्या उसका कोई आकार है; जो दूधसे दहीके समान रूपान्तरित होगा और क्या वह रूपान्तर भी ज्ञानस्वरूप नहीं होगा? ऐसी स्थितिमें प्रथमरूप, द्वितीयरूपका भेद विचारहीनोंके द्वारा कल्पित एवं केवल विवर्तमात्र होगा। ज्ञेय विषयका निराकरण हो जानेपर ज्ञातृत्वकी कल्पनाका कोई कारण ही नहीं है।

सातवीं बात—ज्ञान हेतुफलात्मक नहीं है। ज्ञानकी उत्पत्ति स्वीकार करनेपर उसके प्रागभावकी अर्थात् उसकी उत्पत्तिके पहलेकी स्थिति बतानी पड़ेगी। परन्तु ज्ञानके बिना उसकी भी स्थिति नहीं बतलायी जा सकती। अभिप्राय यह है कि ज्ञानका जन्म नहीं होता। अन्तःकरणकी शुद्ध स्थिति अथवा निर्विषयता भी ज्ञानकी जननी नहीं है, विचारकी जननी है। विचारके द्वारा वृत्त्यात्मक ज्ञान परिपुष्ट होता है और दृढ़ होनेपर वह अज्ञानका नहीं, अज्ञान-भ्रान्तिका निवर्तक होता है। प्रक्रिया ग्रन्थोंके अनुसार यह वृत्त्यात्मक ज्ञान भी दूसरे क्षणमें नहीं रहता है। यह क्षणसहित वृत्तिको और अपने व्यक्तित्वको भी बाधित कर देता है। जब यह स्वयं बाधित होता है; तब कोई अपना कार्य या फल छोड़कर बाधित हो और वह ज्ञान-वृत्तिकी निवृत्तिके अनन्तर रहे, तब तो द्वैत बना ही रहा। इसलिए हेतुता और फलताकी कल्पना ही मिटती है। हेतु और फल तो कुछ है ही नहीं, जिनकी ज्ञानसे निवृत्ति होती हो। अज्ञात घटके उपादानकारण मृत्तिकाके समान

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जगत्का उपादान नहीं है। वह तो जगत्की व्यवस्थाकी सिद्धिके लिए कल्पित है। अज्ञान है—यह कल्पना भी ज्ञानका विवर्त ही है। इसलिए ज्ञानवृत्तिसे अज्ञानका ध्वंस नहीं होता, प्रत्युत कल्पना ही बाधित होती है। यह निवर्त्य-निवर्तक भावकी कल्पना अविचार-दशामें ही है। ज्ञानदृष्टिसे हेतुफलात्मक भेद सर्वथा ही असिद्ध है।

आठवीं बात—ज्ञानमें यथार्थ-अयथार्थ और परोक्ष-अपरोक्षका भेद नहीं है। व्यवहारमें जो ज्ञानमें यथार्थता आदि भेद किये जाते हैं, यदि वास्तवमें विचार करके देखें तो कल्पित विषयगत भेद ही ज्ञानपर आरोपित होते हैं। स्वप्नका हाथी झूठा है। परन्तु स्वप्नमें हाथीका देखना झूठा नहीं है। 'हाथी नहीं था' हमारी जाग्रत्कालीन स्मृतिका यही स्वरूप है। हाथी देखा ही नहीं था, यह नहीं। हाथीकी असत्ता ज्ञानकी असत्ताकी प्रयोजक नहीं हो सकती। अविचार-दशामें हाथीकी अयथार्थताका आरोप ज्ञानपर कर दिया जाता है। इसी प्रकार ज्ञानकी परोक्षता भी विचारणीय है। परोक्ष-अपरोक्षका भेद घटादि पदार्थोंमें होता है या उनके ज्ञानमें? क्या ज्ञान भी कभी अपनेसे दूर होता है? यदि ऐसा मान लें—'पृथ्वीपर घट है और अन्तःकरणमें ज्ञान'; तब भी तो घट-ज्ञान अपने अन्तःकरणमें ही रहा। उसकी परोक्षता कहाँ हुई?। घटगत परोक्षताका ही आरोप ज्ञानपर हुआ। यह तो छोटी बात है। आश्रयत्व, विषयत्व आदि विभागसे रहित अद्वितीय चित्स्वरूप ज्ञानमें अयथार्थता और परोक्षताकी कथाका कोई प्रसंग ही नहीं है।

नवीं बात—ज्ञान सर्वथा अबाध्य है। ज्ञानका कोई भी प्रतियोगी या विरोधी नहीं है। स्वयं अज्ञान भी ज्ञानके द्वारा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही प्रकाशित होता है। 'मैं अज्ञ हूँ' यह भाव भी एक प्रकारका ज्ञान ही है। ज्ञानमें यह प्रकारभेद भी विचार न करनेसे जान पड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि सन्धिहीन होनेके कारण ज्ञान और अज्ञानका भेद कल्पित है। इसलिए अज्ञान ज्ञानका बाध नहीं कर सकता। ज्ञानके बाधकी कल्पना करनेपर यह प्रश्न होता है कि ज्ञानका बाध ज्ञात होगा या अज्ञात, वह ससाक्षिक होगा अथवा निःसाक्षिक। अज्ञात और असाक्षिक होनेपर ज्ञानका बाध होनेमें कोई प्रमाण नहीं है। ज्ञात और ससाक्षिक स्वीकार करनेपर ज्ञानकी सत्ता—ज्ञानस्वरूप सत्, अक्षुण्ण एवं अखण्ड सिद्ध हो जाता है।

दसवीं बात—ज्ञानका स्वरूप अनिर्वचनीय है। जब हम किसी पदार्थका निर्वचन करने लगते हैं, तब उसमें दृश्यता, अन्यता आदिका अपरोक्ष अवश्य करते हैं। कोई भी निर्वचनार्ह वस्तु इदन्तासे आक्रान्त ही होगी। इसीलिए मन-वाणीका विषय भी अवश्य होगी। ऐसी स्थितिमें विषय-विषयीभाव भी अनिवार्य होगा। यही कारण है कि ज्ञानको उत्पाद्य अथवा आत्माका समवायी माननेवालोंने उसके जो-जो निर्वचन किये हैं, उन्हींकी रीतिसे वेदान्ती लोग उनका निषेध करते हैं। अनिर्वचनीयता भी परमत रीतिसे है अनिर्वचनीयताका अभिप्राय केवल इतना ही है कि यह ज्ञानस्वरूपसे भिन्न नहीं है। अबाध्यता, स्वयंप्रकाशता, अपरिच्छिन्नता आदि जो लक्षण हैं, वे अन्य पदार्थमें, चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न रक्खें, पूरे नहीं उतर सकते। एक पर-रूप अपरिच्छिन्न स्वप्रकाश एवं अबाध्य हो तथा दूसरा स्वरूप, वह भी हो और मैं भी होऊँ, यह बात अनुभूतिका विश्लेषण करनेपर सिद्ध नहीं होती। अज्ञेय और अनिर्वचनीय शब्द पर्यायवाची नहीं हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

विदित और अविदितसे विलक्षण अन्य नहीं हो सकता। इसलिए अनिर्वचनीय पद समस्त निर्वचनोंका निषेध करके अनिरुक्त स्वात्मामें विश्रान्ति लाभ करता है।

ग्यारहवीं बात—सत्य, अहिंसा, ध्यान, उपासना, परत्व, कारणत्व आदि ज्ञानके ही उपलक्षण हैं। मुमुक्षु और मुक्तके व्यावहारिक भेदको सामने रखकर यदि सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणोंके स्वरूपपर विचार किया जाय तो किसी भी गुणमें सत् होनेका निर्देश सच्चित्स्वरूप आत्माके सामीप्यके कारण ही करते हैं। जितना-जितना आत्म-सामीप्य जिस-जिस वृत्तिमें है, वह-वह वृत्ति उतना ही उतना अधिक शोधन द्वारा आत्म-साक्षात्कारका अथवा अज्ञान-निवृत्तिका उपाय है। उदाहरणार्थ—सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणरूप वृत्तियोंको ही ले लीजिये। असत्य रूप दुर्गुण अनेक रूप होगा। उसके आचरण-भाषण आदिकी वृत्तियाँ भिन्न-भिन्न विषयोंके एवं चिन्ताके भारसे ग्रस्त होंगीं। इसके विपरीत सत्य वृत्तिके लिए किसी चिन्ता—बनावट या विषय-चिन्तनकी आवश्यकता नहीं होगी। मुमुक्षु पुरुष सरल स्वभावसे विषय-रहित सत्य-वृत्तिमें स्थित रह सकेगा और वास्तवमें वह आत्मस्थिति ही होगी। अज्ञान-निवृत्ति होनेपर स्थितिके लिए उसे किसी प्रयासकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणकी वृत्तियाँ भी सगर्भ एवं सविषय ही होती हैं। किसके प्रति काम है, किसपर क्रोध है, क्या चाहिए—यह निश्चय करके तदाकार हुए विना इन दुर्गुणोंकी स्थिति नहीं हो सकती। इसके विपरीत निष्कामता, अक्रोध एवं निर्लोभता आदि वृत्तियाँ यह अपेक्षा नहीं रखतीं कि हम किसके प्रति हैं। विषय हीन वृत्ति अपने आश्रयभूत प्रत्यगात्मासे अपनेको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पृथक् नहीं दिखाती है—इसलिए आत्मविषयक अज्ञान-निवृत्तिकी प्रतिबन्धकतासे रहित होती है। सविषय स्थिति ही मुमुक्षुको सत्से भिन्न प्रतीत होती है। निर्विषय वृत्ति तो सद्रूप ही प्रतीत होती है—यही आत्म-सामीप्य ज्ञानस्वरूप आत्माका उपलक्षण है। अभिप्राय यह है कि ये वृत्तियाँ भी असत्य- हिंसा आदिके अभावरूप होनेके कारण स्वतः भावरूप नहीं, ज्ञानरूप हैं; अनेक नहीं, अद्वितीय हैं। ध्यान, उपासना आदि भी अनेक विषयक वृत्तियोंको व्यावृत्त करनेके लिए ही है; क्योंकि एक वस्तुमें एकतानता ही उनका स्वरूप है।

ज्ञानस्वरूप परमात्मामें कार्य-कारणकी कल्पना अथवा भोक्तृ-भोग्य भेदभावकी कल्पना असंगत है श्रुतिने—

'न तस्य कश्चिज्जनिता', 'न तस्य कार्यम्', 'न तदश्नाति कश्चन', 'न तदश्नाति किञ्चन'।

—आदि वाक्योंके द्वारा इसी अर्थका प्रतिपादन किया है। इस बातको ध्यानमें रखकर जब कार्य-कारण-भाव वर्णन करनेवाली श्रुतियोंको पढ़ते हैं, तब स्पष्टरूपसे उनका अन्य अभिप्राय ज्ञात होता है। यथा—

१—दृश्य-प्रपञ्चमें नित्यताकी भ्रान्ति निवारण करनेके लिए इसकी उत्पत्ति-प्रलयका वर्णन है।

२—परमाणु, प्रकृति आदि अन्यकारणताका निषेध करनेके लिए ज्ञानस्वरूप परमात्मामें कारणत्वका अध्यारोप किया गया है।

३—निमित्तकारण और उपादानकारणका भेद मिटानेके लिए ऊर्णनाभि, विस्फुलिङ्ग आदिके दृष्टान्त हैं एवं एक विज्ञानसे सर्व विज्ञानकी उपपत्ति दिखायी गयी है। 'वही सब हो गया', 'मैं एकसे बहुत होऊँ' इत्यादि वचनोंका अभिप्राय उपादान और निमित्त कारणके भेदकी निवृत्तिमात्र ही है, परिणाम नहीं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

४—परिणामका निषेध करनेके लिए ही परमात्माके अद्वितीय अज-स्वरूपका वर्णन करते हुए 'स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः' अर्थात् जो कुछ बाह्यत्वेन अथवा आभ्यन्तरत्वेन प्रतीत हो रहा है वह अज ही है, ऐसा कहा गया है और दृश्य-प्रपञ्चकी उपपत्तिके लिए परमात्मामें मायाका अध्यारोप किया गया है।

५—'न तु तद् द्वितीयमस्ति', 'विकल्पो नहि वस्तु' इन श्रुतियोंसे अध्यारोपित मायाका भी अपवाद कर देते हैं। 'सद्धीदं सर्वम्', 'चिद्धीदं सर्वम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियाँ परमात्मासे भिन्न और कुछ नहीं है—यह प्रतिपादन करती हैं।

यह सब कारणत्व आदिका आरोप मुमुक्षुओंके हितार्थ अज्ञान-निवृत्तिके लिए ही किया गया है। इसलिए इन सबका अन्तिम पर्यवसान ज्ञानमें ही है।

परत्व, आन्तरतमत्व आदिका अभिप्राय भी ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही पर्यवसित होता है। इन्द्रियोंसे परे पञ्चतन्मात्रा, तन्मात्रासे परे मन, मनसे परे बुद्धि—इस प्रकार एककी अपेक्षा दूसरा आन्तर है। बाह्य-बाह्यका परित्याग करते-करते आन्तर-आन्तरके ज्ञानकी ओर अग्रसर होना ही इसका लक्ष्य है। बुद्धिसे परे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त और अव्यक्तसे परे पुरुष—यही परत्व अथवा आन्तरतमत्वकी विश्रान्ति है, यही पराकाष्ठा और परागति है। इस पुरुषसे परे कुछ भी नहीं है। यह [आ]त्माके एकत्वका एक उज्ज्वल उदाहरण है। उपनिषद्गत लयप्रक्रिया भी शांत आत्माको ही लयकी अवधि बतलाती है।

बारहवीं बात—अपरिच्छेद रूप लक्षणके एकरूप होनेके 'ज्ञान', 'आत्मा', 'ब्रह्म' और 'विश्व' आदि शब्द पर्यायवाची हैं और एक ही अर्थके बोधक हैं। यथा—

१—'प्रज्ञानं ब्रह्म' प्रज्ञान अपरिच्छिन्न ब्रह्म है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

२—'अयमात्मा ब्रह्म' यह आत्मा अपरिच्छिन्न ब्रह्म है।

३—'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' यह सम्पूर्ण विश्व अपरिच्छिन्न ब्रह्म ही है।

४—'सर्वं यदयमात्मा' यह सब जो कुछ है, आत्मा ही है।

५—'अहमेवेदं सर्वम्' मैं ही यह सब हूँ।

६—'प्रतिबोधविदितं मतम्' प्रत्येक ज्ञान ही उसका ज्ञान है।

७—'कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव' सम्पूर्ण प्रज्ञान घन ही है।

८—'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' विज्ञान और आनन्द ब्रह्म ही है।

गीतामें 'ज्ञानं ज्ञेयम्' श्रीमद्भागवतमें 'विज्ञानमेकमुरुधेव-विभाति', विष्णु पुराणमें ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतत्' इत्यादि वचनोंसे उपर्युक्त अर्थकी पुष्टि होती है।

इस प्रकार उपनिषद्का प्रतिपाद्य अर्थ 'अहम्', 'इदम्' 'प्रत्यगात्मा' एवं 'विश्वम्'की ब्रह्मरूपता है। अब यह ब्रह्म क्या है, इसको उपनिषद्के मुखसे ही सुन लीजिये—

'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्। अयमात्मा ब्रह्म। सर्वानुभूरित्यनुशासनम्।'

इसका अभिप्राय है कि जो देश, काल, वस्तु-परिच्छेदसे रहित सर्वानुभवस्वरूप अपना आत्मा है वही ब्रह्म है।

'यत् साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म', 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' —इत्यादि अवान्तर वाक्य एवं महावाक्य दृश्य-द्रष्टा, तुम, मैं, वह आदिके रूपसे प्रतीयमान समस्त पद-पदार्थ एवं पदार्थ-ज्ञानको अपरिच्छिन्न ब्रह्म ही निरूपण करते हैं। परिच्छेद सामान्याभावोपलक्षित ब्रह्मतत्त्वमें दृश्यता, अनेकता, परिणामिता, अन्यता आदिका कथा-प्रसङ्ग स्वयं ही अनुत्थान पराहत है। यह तत्त्वका ज्ञान नहीं है, तत्त्वरूप ज्ञान है। इसका वेत्ता ब्रह्मका वेत्ता नहीं, ब्रह्मरूप वेत्ता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ज्ञानके इस स्वरूपके निरूपणसे वेद अथवा उपनिषद्‌की अपौरुषेयताका अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है। ज्ञान ज्ञान ही है, वह किसी पुरुषकी अनुभूति, भावना, स्मृति अथवा कल्पना नहीं है। ज्ञान स्वयंप्रकाश, सर्वानुभवस्वरूप, सृष्टि-प्रलय, समाधि-विक्षेप आदि समस्त प्रतीयमान व्यवहारोंका प्रकाशक, अखण्ड, अजन्मा एवं स्वतःप्रमाण है। इसका सम्बन्ध भूत, भविष्य, वर्तमान, देश, वस्तु आदि किसीके साथ नहीं है और सब कुछ यही है। यह ज्ञान है यह जानना है। कुछ भी जानना यही है, 'कुछ' भी यही है।

ऐसे ज्ञानका प्रतिपादक, अस्मर्यमाण-कर्तृक, अनादि सम्प्रदायाविच्छेदसे प्राप्त नियतानुपूर्विक जो ग्रन्थविशेष है उसे भी अपौरुषेय कहते हैं। वह एकार्थक है, एकात्मक है, एक वाक्य है, उसके अवान्तर तात्पर्यमें भले ही भेद जान पड़ते हों; परन्तु परम तात्पर्यमें कोई भेद नहीं है। वेद-पुरुषका शिरोभाग अर्थात् मस्तिष्क उपनिषद् है। वह शाखा-भेदसे पृथक्-पृथक् प्रतीयमान होनेपर भी एक ही है। ज्ञान अद्वितीय है—यही अपौरुषेयताका अभिप्राय है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हमारे प्रकाशन

१. माण्डूक्यप्रवचन		६.००
२. गोपीगीत		३.५०
३. श्रीमद्भागवतरहस्य		२.५०
४. सुगम भक्तिमार्ग		२.००
५. भगवान्‌के पाँच अवतार		२.००
६. ईशावास्यप्रवचन		१.२५
७. सांख्ययोग		५.००
८. भक्तियोग		४.५०
९. पुरुषोत्तमयोग		२.५०
१०. मुण्डकसुधा		२.५०
११. माण्डूक्यकारिकाप्रवचन	[वैतथ्य-प्रकरण]	५.००
१२. भागवत-विचार-दोहन		१.००
१३. नारद भक्ति-दर्शन		३.५०
१४. भक्तिरहस्य		२.००
१५. महाराजश्रीका एक परिचय	[सिन्धी]	०.२५
१६. ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना		६.५०
१७-१८. आनन्दवाणी भाग १-२		०.५० प्रति
१९-२६. आनन्दवाणी भाग ३-१०		१.०० प्रति
२७. महाराज श्रीका एक परिचय		०.५०
२८. मोहन नी मोहनी	[गुजराती]	०.५०
२९. चरित्र निर्माण आणि ब्रह्मज्ञान	[मराठी]	१.००
३०. श्रीमद्भागवतरहस्य	[सिन्धी]	२.००
३१. भक्ति-सर्वस्व (प्रेस में)		

सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्ट

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

• प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञानकी प्रतिनिधि
• पुरुषार्थ प्रतिपादक
• प्रसन्न-गम्भीर पत्रिका

चिन्तामणि

संस्थापक: अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

वार्षिक मूल्य चार रुपये

उद्देश्य: प्राचीन वेद-शास्त्रोक्त पद्धति एवं नवीन वैज्ञानिक रीतिसे जन मानसमें सच्चारित्र्य सद्भावना एवं सत् ज्ञानका प्रकाश करके उसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पुरुषार्थका भाजन बनाना और भक्ति-शक्तिसे भरपूर करके आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक, सामाजिक, आर्थिक समृद्धियोंसे परिपूर्ण बनाना तथा मानव-जीवनके अवान्तर एवं चरम लक्ष्यकी प्राप्तिमें सहायक होना।

• देशके प्रत्येक प्रदेशमें जिसका प्रवेश हो चुका है।
• प्रत्येक जिज्ञासु पाठकके लिए जो उत्कृष्ट सामग्रीसे सुसज्जित है।
• जो विश्वके उच्चतम सन्तों और विद्वानों द्वारा प्रशंसित है।
ऐसी पत्रिका के विकास-विस्तारमें सहयोगके लिए,
हम आपसे सादर अनुरोध करते हैं।

सम्पादक:
आनन्द-कानन
सीके. ३६/२०, वाराणसी-१

व्यवस्थापक:
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल' २८/१६ रिजरोड, बम्बई-६

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-C

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jal

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

aGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon